# ''वेश्या जीवन पर केन्द्रित स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास :एक आलोचनात्मक अध्ययन''

## (VAISHYAA JEEVAN PAR KENDRIT SWATANTRAYOTTAR HINDI UPANYAS: EK AALOCHNATMAK ADHYAYAN)

## (A CRITICAL STUDY OF POST INDEPENDENCE HINDI NOVEL BASED ON PROSTITUTE'S LIFE)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

में पीएच• डी• (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रारूप


शोध–निर्देशक

**प्रो0 राम चन्द्र**

शोधार्थी

**अंशिता शुक्ला**

**भारतीय भाषा केन्द्र**
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067


2017

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली- 110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 26 /05/2017

## DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this Ph.D. Thesis entitle **"VAISHYAA JEEVAN PAR KENDRIT SWATANTRAYOTTAR HINDI UPANYAS: EK AALOCHNATMAK ADHYAYAN" (A CRITICAL STUDY OF POST INDEPENDENCE HINDI NOVEL BASED ON PROSTITUTE'S LIFE)"** by me is the original research work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Anshita Shukla

**ANSHITA SHUKLA**
(Research Scholar)

**PROF. RAM CHANDRA**
(SUPERVISOR)
CIL/SLL&CS/JNU

**PROF. GOBIND PRASAD**
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, TEL: (91-011)26717676, 26717557 Extn: 4217, (D) 26704217 Telefax: (91011)26717603,26704217 Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

# अनुक्रमणिका


- **भूमिका** **i-vi**

- **पहला अध्याय– वेश्या जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि** **1–50**

  **(क)** वेश्या तथा वेश्यावृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा
  **(ख)** वेश्यावृत्ति के कारण
  **(ग)** वेश्यावृत्ति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
  **(घ)** वेश्याओं के प्रकार
  **(ड.)** वेश्यावृत्ति का कुप्रभाव।

- **दूसरा अध्याय– स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी उपन्यास एवं वेश्या जीवनः एक संक्षिप्त अवलोकन'** **51–103**

  **(क)** प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यास
  **(ख)** प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास
  **(ग)** प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास।

- **तीसरा अध्याय– 'विवेच्य सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास और वेश्या जीवन'** **104–156**

  **(क)** महानगरों में वेश्या जीवनः स्वरूप एवं समस्याएँ
  **(ख)** विस्थापन की समस्या एवं वेश्या जीवन का यथार्थ
  **(ग)** देवदासी प्रथा और वेश्या जीवन
  **(घ)** वेश्या माँ तथा वेश्या जीवन
  **(ड.)** दाम्पत्य जीवन एवं वेश्यावृत्ति।

- **चौथा अध्याय–विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यास और वेश्या जीवन** **157–186**

  **(क)** इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ
  **(ख)** ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा
  **(ग)** ऐतिहासिक उपन्यासों में अभिव्यक्त वेश्या जीवन का यथार्थ।

- **पाँचवां अध्याय– विवेच्य उपन्यासों का शिल्प** **187–210**

  **(क)** भाषिक संरचना
  **(ख)** शब्द योजना
  **(ग)** शैली
  **(घ)** वाक्य विन्यास

- **छठा अध्याय– 'वेश्यावृत्ति की समस्या, समाधान एवं साहित्य की भूमिका** **211–254**

  **(क)** वेश्यावृत्ति के समाधान हेतु किए गए सरकारी प्रयास
  **(ख)** वेश्यावृत्ति की समस्या को दूर करने हेतु उपाय
  **(ग)** हिन्दी साहित्य में वेश्याओं के प्रति दृष्टिकोण एवं हिन्दी साहित्य की भूमिका
  **(घ)** क्या वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दी जानी चाहिए

- **उपसंहार** **255–259**

- **संदर्भ ग्रंथ सूची** **260–271**

# भूमिका

हमारे जीवन में नारी सदैव अलग–अलग भूमिका में आती है। कभी वह माँ के रूप में कभी पत्नी, कभी बेटी तो कभी बहन। हिन्दू पुराणों में तो नारी के कई रूपों की प्रतिष्ठा की गई है। भारतीय नारियों में 'गार्गी', 'अपाला', 'घोषा', 'लक्ष्मीबाई', 'सीता', 'सावित्री' आदि के नाम अत्यन्त आदर के साथ लिए जाते हैं। किन्तु नारी के इन रूपों के अतिरिक्त कुछ ऐसे रूप हैं जिनसे समाज तथा व्यक्ति दोनों बचना चाहते हैं। यहाँ तक कि वे उनके विषय में बात भी नहीं करना चाहते हैं, जबकि वह इसी समाज का हिस्सा हैं, नारी का यह रूप वेश्या के रूप में हमारे समक्ष आता है। हमारे यहाँ 'रोजी', 'डेजी', 'शहाना', 'बद्रेमुनीर', 'चंद्री', 'लैलाबाई', 'मैनाबाई', 'बशीरन', 'पार्वती' जैसे छद्म नाम की अनेक स्त्रियाँ मिल जाएगीं जिनकी असल जिंदगी और नाम से कोई परिचित नहीं है। यहाँ तक कि वे कैसे रहती हैं, किस प्रकार अपनी आजीविका चलाती हैं और किन यातनाओं से होकर गुजरती हैं.....कोई नहीं जानता। 'अमृतलाल नागर' ने अपने संस्मरण 'ये कोठेवालियाँ' में कहा है कि तवायफ चाहे अच्छी हो या खराब, होती तो वह औरत ही है और यह सच भी है कि कोई भी औरत अपनी इच्छा से इस व्यवसाय में नहीं आना चाहती है, उसके यहाँ आने के पीछे कुछ और ही कारण होता है। आखिर वह क्या कारण है? 'मोहनदास नैमिशराय' भी यही प्रश्न उठाते हैं कि–''ये सब तो परिवार की मां, बहिन और बेटियां हैं। आखिर कोठेवालियों कैसे बन गयीं?'' ('आज बाजार बंद है', मन की बात)

वेश्यावृत्ति का सामान्य अर्थ है– 'धन लाभ के लिए स्थापित संकर यौन संबंध'। विश्व के कई देशों जैसे 'केन्या', 'अल्जीरिया', 'सूडान', 'घाना', 'अफगानिस्तान', 'ईरान', 'इराक', 'जॉर्जिया', 'नार्वे', 'सर्बिया', 'गुआना', 'फिजी' आदि में वेश्यावृत्ति को पूरी तरह से गैरकानूनी माना गया है, जबकि कुछ देशों जैसे 'इथोपिया', 'मकाऊ', 'बेल्जियम'

'साइप्रस' आदि देशों में सार्वजनिक जगहों को छोड़कर वेश्यावृत्ति को अवैध नहीं माना गया है। कुछ लोगों का यह मानना है कि 'एशिया' में वेश्याओं की संख्या सबसे ज्यादा है और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है क्योंकि बालिका भ्रूणहत्या, दहेज प्रथा और स्त्री पुरूष के बीच भेदभाव जैसी समस्याएँ हमारे समाज में आज भी विद्यमान हैं। भारत में भी देह व्यापार को पूर्ण रूप से कानूनी मान्यता नहीं मिली है। यहाँ वैवाहिक यौन संबंधों से इतर यौन संबंधों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है। कई बार देह व्यवसाय को कानूनी मान्यता देने के लिए प्रयास हुए हैं किन्तु अभी तक यह सफल नहीं हुए हैं। वेश्यावृत्ति के उन्मूलन हेतु 'भारतीय दंडविधान '1860' एवं 'वेश्यावृत्ति उन्मूलन विधेयक 1956' पारित किए गए हैं किन्तु इन कानूनों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। एक आंकड़ों के मुताबिक देश में कुल ग्यारह सौ सत्तर रेड लाइट एरिया हैं। 'भारत' के 'कलकत्ता', 'मुम्बई', 'दिल्ली', 'उत्तर प्रदेश', 'राजस्थान' आदि राज्यों के कई शहरों में देहव्यापार खुलकर हो रहा है। यहाँ तक कि 'पश्चिम बंगाल' की राजधानी 'कोलकाता' के 'चौबीस परगना' जिले के 'मधुसूदन गांव' में वेश्यावृत्ति को जीवन का हिस्सा माना जाता है। यहाँ की अर्थव्यवस्था देह व्यवसाय पर ही टिकी हुई है। देह व्यवसाय के बढ़ते व्यापार के कारण लड़कियों के अपहरण एवं उनकी तस्करी की घटना आम बात हो गई है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। वेश्या जीवन की त्रासदी को पूरे यथार्थ के साथ हिन्दी उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि वेश्या जीवन पर अधिक से अधिक शोध हो जिससे उनकी समस्याओं के जाना जा सके और उन्हें दूर किया जा सके। बजाए इस प्रश्न में उलझने के कि वेश्यावृत्ति वैध हो या गैर कानूनी। वेश्याएँ भी मनुष्य हैं और साथ ही इसी समाज का अंग भी, इसलिए उन्हें भी गरिमापूर्ण जीवन जीने का उतना ही अधिकार है जितना अन्य व्यक्तियों को। प्रस्तुत शोध प्रबंध में वेश्या जीवन पर केन्द्रित स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। विवेच्य ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासों के माध्यम से वेश्या जीवन एवं उनकी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय 'वेश्या जीवन पर केन्द्रित स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासः एक आलोचनात्मक अध्ययन' है, जिसके अन्तर्गत हिन्दी उपन्यास में वेश्या जीवन एवं उनकी स्थिति तथा कारणों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। वेश्या जीवन की समस्या को लेकर अनेक लेखकों एवं समाजशास्त्रियों ने काम किया है। साहित्य का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। हिन्दी साहित्य में 'प्रेमचंद' ने वेश्या जीवन की समस्या को मुखर रूप में प्रस्तुत किया है। इसके पश्चात् आगे चलकर हिन्दी के अनेक उपन्यासकारों ने वेश्या जीवन पर अपनी लेखनी चलाई। हिन्दी साहित्य में अभी तक इस विषय पर कम शोध कार्य हुए हैं। मेरी रूचि प्रारंभ से ही उपन्यास विधा में अधिक रही है क्योंकि इस विधा के माध्यम से लेखक एवं उसकी विचारधारा के साथ–साथ सामाजिक यथार्थ को अधिक निकटता से जानने तथा समझने का अवसर प्राप्त होता है। पी0 एच0 डी0 में प्रवेश लेने के पश्चात् मैंने वेश्या जीवन पर लिखे गए अनेक उपन्यासों का अध्ययन किया। वेश्या जीवन पर लिखे गए इन उपन्यासों को पढ़कर मेरी इस विषय के प्रति रूचि उत्पन्न हुई। साथ ही उन स्त्रियों के लिए काम करने की इच्छा हुई जो अपनी पहचान छुपाकर यातनापूर्ण जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। कोई भी स्त्री इस पेशे को अपनी इच्छा से अपनाना नहीं चाहती है। अगर कुछ स्त्रियाँ इस पेशे को अपनाती भी हैं तो उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के अन्तर्गत जिन उपन्यासों का अध्ययन किया गया है उसके माध्यम से यह देखने का प्रयास किया है कि कोई भी स्त्री इस पेशे को क्यों अपनाती है। आखिर क्या कारण है? इसके अतिरिक्त लेखकों ने किस प्रकार से इस समस्या पर विचार किया है व क्या समाधान प्रस्तुत किया है, इन सभी पहलुओं को इस शोध प्रबंध में देखने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त उपन्यास की भाषा तथा शिल्प पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है जिसमें प्रथम अध्याय 'वेश्या जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' के अन्तर्गत पाँच उपअध्याय हैं। (क) वेश्या तथा वेश्यावृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा, (ख) वेश्यावृत्ति के कारण, (ग) वेश्यावृत्ति का ऐतिहासिक

परिप्रेक्ष्य, (घ) वेश्याओं के प्रकार, (ड.) वेश्यावृत्ति का कुप्रभाव। प्रथम अध्याय–'वेश्या जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' के अन्तर्गत वेश्यावृत्ति को परिभाषित करते हुए एवं वेश्याओं के प्रकार बताते हुए उनके वेश्यावृत्ति अपनाने के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। वेश्यावृत्ति अपनाने के अलग–अलग कारण होते हैं कुछ वेश्याएँ व्यक्तिगत एवं पारिवारिक कारणों से यह पेशा अपनाती हैं तथा कुछ को जबरदस्ती इस पेशे में ढकेला जाता है। अतः इस अध्याय में उन कारणों की पड़ताल की गई है जो वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देते हैं। साथ ही वेश्यावृत्ति के इतिहास पर प्रकाश डालते उसके कुप्रभावों का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय– 'स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी उपन्यास एवं वेश्या जीवनः एक संक्षिप्त अवलोकन' है। यह अध्याय तीन उपअध्यायों में विभक्त है। (क) प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यास, (ख) प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास, (ग) प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास। इस अध्याय के अन्तर्गत हिन्दी के आरंभिक उन्यासों, प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यासों तथा प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन को किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, इसका अध्ययन किया गया है। प्रेमचन्दपूर्व के हिन्दी उपन्यासकारों का वेश्याओं के प्रति दृष्टिकोण भिन्न रहा है। उनके अनुसार वह लोगों के घरों को तोड़ने का कार्य करती हैं जिसका समाज पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ता है, जबकि प्रेमचन्द व उनके बाद के उपन्यासकारों ने वेश्या जीवन की समस्या को सामने रखते हुए इस समस्या के समाधान हेतु कुछ हल भी प्रस्तुत किए हैं। अतः इस अध्याय में स्वतंत्रतापूर्व के उपन्यासकारों का वेश्याओं के प्रति जो दृष्टिकोण एवं विचार रहा है, उसका भी संक्षिप्त रूप में वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक 'विवेच्य सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास और वेश्या जीवन' है। इसमें पाँच उपअध्याय हैं। (क) महानगरों में वेश्या जीवनः स्वरूप एवं समस्याएँ, (ख) विस्थापन की समस्या एवं वेश्या जीवन का यथार्थ, (ग) देवदासी प्रथा और वेश्या जीवन, (घ) वेश्या माँ तथा वेश्या जीवन, (ड.) दाम्पत्य जीवन एवं वेश्यावृत्ति।

इस अध्याय के अन्तर्गत स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का अध्ययन किया गया है। साथ ही स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन के बदलते स्वरूप एवं महानगरों में वेश्याओं की स्थिति कैसी है, इस पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त दलित वर्ग से आने वाली वेश्याओं की समस्याओं तथा उन पर होने वाले अत्याचारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। विवेच्य उपन्यासों में अलग–अलग वेश्या पात्र हैं जिनकी मनःस्थिति और पुरूषों पात्रों के साथ उनके संबंधों का वर्णन भी किया गया है।

चतुर्थ अध्याय–'विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यास और वेश्या जीवन' है और इसमें तीन उपअध्याय हैं। (क) इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ, (ख) ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा, (ग) ऐतिहासिक उपन्यासों में अभिव्यक्त वेश्या जीवन का यथार्थ। इस अध्याय के अन्तर्गत ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासों में वेश्या जीवन का स्वरूप कैसा रहा है और उनकी समस्याएँ क्या है, इसका भी अध्ययन किया गया है। साथ ही उपन्यास के प्रमुख वेश्या चरित्रों एवं पुरूष पात्रों के साथ उनके संबंधों की व्याख्या की गई है।

पाँचवा अध्याय–'विवेच्य उपन्यासों का शिल्प' है। इस अध्याय में चार उपअध्याय हैं। (क) भाषिक संरचना, (ख) शब्द योजना, (ग) शैली, (घ) वाक्य विन्यास है। इस अध्याय में चुने गए उपन्यासों की भाषिक संरचना, अभिव्यक्ति की शैली, शब्द–योजना, मुहावरों आदि का अध्ययन किया गया है। छठा अध्याय 'वेश्यावृत्ति की समस्या, समाधान एवं साहित्य की भूमिका' है। यह चार उपअध्यायों में विभक्त हैं। (क) वेश्यावृत्ति के समाधान हेतु किए गए सरकारी प्रयास, (ख) वेश्यावृत्ति की समस्या को दूर करने हेतु उपाय, (ग) हिन्दी साहित्य में वेश्याओं के प्रति दृष्टिकोण एवं हिन्दी साहित्य की भूमिका, (घ) क्या वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दी जानी चाहिए। इस अध्याय में वेश्यावृत्ति की समस्या, उसके उन्मूलन हेतु किए गए सरकारी प्रयास तथा प्रावधानों का अध्ययन किया गया है। साथ ही वेश्याओं के अध्ययन में साहित्य की भूमिका किस प्रकार की रही है व

इसका क्या प्रभाव रहा है तथा इस समस्या के उन्मूलन हेतु क्या समाधान किया जा सकता है, इस पर भी विचार किया गया है। सातवें अध्याय 'उपसंहार' के अन्तर्गत संपूर्ण अध्यायों का सार प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के लेखन में अनेक व्यक्तियों ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है। सबसे पहले इस शोध प्रबंध के प्रेरणास्त्रोत आदरणीय गुरू व निर्देशक प्रो0 राम चन्द्र जी, मेरी माता जी श्रीमती रेखा शुक्ला एवं पिता जी डॉ0 कमला कान्त शुक्ला हैं। उनके उदात्त एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की छाया में शोधकार्य करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने इस शोध कार्य की समाप्ति तक अपने मूल्यवान परामर्श मुझे दिए जिसके फलस्वरूप यह शोध कार्य पूर्ण हो सका। आपके दृढ़इच्छा शक्ति एवं प्रेरणादायी शब्दों ने मुझे शोध कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के लिए सदा प्रेरित किया। इसके साथ 'जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय', 'दिल्ली विश्वविद्यालय', 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' और 'साहित्य अकादमी, दिल्ली' के पुस्तकालय एवं पुस्तकालयाध्यक्षों की मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

इसके साथ–साथ आत्मीयजनों एवं मित्रगणों में डॉ0 ईशा त्रिपाठी एवं देवेन्द्र त्रिपाठी, गौरव ओझा, निधि सिंह, बबिता, कविता यादव, अनिरूद्ध सिंह, नवलदेय भारती एवं जीतकुमार यादव ने समय–समय पर मानसिक संबल एवं आवश्यक परामर्श प्रदान करते हुए मेरा उत्साहवर्धन किया। इन सभी को मैं धन्यवाद देती हूँ।

**दिनांकः / /2017** **अंशिता शुक्ला**

# वेश्या जीवन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही देह व्यापार और वेश्यावृत्ति का विकास हुआ। निश्चित रूप से यह कहना कि वेश्यावृत्ति का विकास कब हुआ, अत्यन्त कठिन है। विभिन्न विद्वानों के अनुसार सिन्धु सभ्यता में जब तक विवाह संस्था एवं रीति रिवाजों का पूर्ण रूप से विकास नहीं हुआ उस समय भी वेश्यावृत्ति विद्यमान थी क्योंकि पुरूषों के अनेक स्त्रियों के साथ संबंधों का वर्णन इतिहास एवं भित्तिचित्रों से प्राप्त होता है। यौन संतुष्टि हेतु स्त्रियों को कुछ उपहार प्रदान किया जाता था। सभ्यता के विकास एवं विवाह संस्था के कठोर होने के साथ–साथ वेश्यावृत्ति का स्वरूप भी बदलने लगा और इसी क्रम में गणिका, वारांगना एवं नगरवधू आदि नामों से वेश्याओं को संबोधित किया जाने लगा। वैदिक काल में इनके संबंध में अनेक साक्ष्य मिलते हैं। उस समय इनके अनेक वर्ग भी समाज में विद्यमान थे। समय के परिवर्तन के साथ ही वेश्याओं के संबोधन हेतु प्रयुक्त होने वाले शब्द परिवर्तित होते गए और उनमें भी अनेक वर्गों का विकास होता गया। आज स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि मात्र दस–दस रूपये के लिए उनको अपना शरीर बेचना पड़ रहा है। इस अध्याय के अन्तर्गत वेश्या जीवन एवं वेश्यावृत्ति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया जाएगा जिससे उसके स्वरूप में होने वाले परिवर्तन एवं उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का समग्रता के साथ अध्ययन किया जा सके।

## (क) वेश्या तथा वेश्यावृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा–

वेश्या शब्द संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ है ''नाचगान तथा करतब से जीविका चलाने वाली स्त्री।''[1] संस्कृत में वेश्या को परिभाषित करते हुए कहा गया है– वेशम् अर्हति या सा वेश्या अर्थात् जो वेश को प्रतिक्षण बदलती रहे वह वेश्या कहलाती है। वैदिक भाषा में वेश्या के लिए 'विश' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है सामान्य

जनता अर्थात् जो सामान्य जनता के द्वारा भोगी जाए वह वेश्या है।[2] वेश्या के अतिरिक्त गणिका शब्द का उल्लेख संस्कृत साहित्य में मिलता है जो गण+ठन्+टाप् से मिलकर बना है।[3] अंग्रेजी में वेश्यावृत्ति के लिए 'Prostitution' शब्द मिलता है जो दो लैटिन शब्द 'प्रो' और 'स्टैट्यूएट' की संधि से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'उधाड़ना' या 'आगे रखना'।[4] इस प्रकार अंग्रेजी में 'प्रॉस्ट्टियूट' का अर्थ हुआ 'जो उधाड़े हुए' या 'खुद को आगे रखे हुए' है। 'जापान' में वेश्या के लिए 'गेश्या' शब्द मिलता है जहाँ की स्त्रियाँ स्वयं को 'गेश्या' कहकर रहती हैं।[5] वेश्या के अतिरिक्त वारवनिता, वारांगना, रूपजीवा, रंडी, कोठेवाली, कॉल गर्ल तथा एस्कॉर्ट आदि अनेक शब्द वर्तमान समय में प्रचलित हैं। जातकों में गणिका के लिए 'नगर मण्डना' एवं 'नगर शोभिनी' जैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। जिसका अर्थ है 'नगर को सुशोभित करने वाली'। इसके अतिरिक्त जातकों में वेशि, वन्नदासी, जनपद कल्याणी एवं वन्नदासी जैसे शब्दों का प्रयोग वेश्या के अर्थ में किया जाता था।[6] 'दामोदरगुप्त' रचित संस्कृत ग्रंथ 'कुट्टनीमतम्' में वेश्या के लिए वेश्या, चेतिका, जीविका, अनियपुमसा, झुला आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[7] वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में वेश्या के लिए परिचारिका, रूपजीवा, गणिका, कुम्भदासी, नटी एवं स्वैरिणी आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[8]

यद्यपि वेश्यावृत्ति एवं वेश्या को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि इसके कई स्वरूप एवं वर्ग समाज में देखने को मिलते हैं। किन्तु इतना होते हुए भी विभिन्न विद्वानों ने अपनी रचनाओं में वेश्या को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। वेश्या जीवन को परिभाषित करने से पहले वेश्या वास्तव में होती क्या है, यह जानना आवश्यक है। वेश्या को निम्नलिखित प्रकार से अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया जा सकता है–

'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश' के अनुसार– ''फायदे के लिए शरीर विक्रय करने वाली स्त्रियों को वेश्या कहते हैं।''[9]

'हिन्दी शब्दसागर' में गणिका को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि ''वह नायिका या स्त्री जो द्रव्य के लोभ से नायक से प्रीति रखे उसे गणिका कहते हैं।''[10]

'डॉ सुधा काळदाते' के अनुसार– ''वेश्या व्यवसाय केवल पैसे पाने के लिए ही किया जाता है। 'वेश्या' अपना शरीर दूसरों को भोग के लिए देती हैं, उसके बदले में उन्हें पैसे कपड़ा, इत्र या अन्य चीजें मिलती हैं।''[11]

*'Suppression of Immoral Traffic in Women and Girl's act,* 1956' में वेश्यावृत्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया है–'वेश्या का अर्थ उस स्त्री से है जो आर्थिक लाभ या अन्य उद्देश्य हेतु यौन संबंध स्थापित करती है।'[12]

*'A History of Prostitute'* में वेश्या को 'स्कॉट' ने परिभाषित करते हुए कहा है कि–'एक व्यक्ति (पुरूष अथवा स्त्री) जो किसी प्रकार की (आर्थिक अथवा किसी अन्य प्रकार की) आय के लिए अथवा और किसी प्रकार के व्यक्तिगत संतोष के लिए, पूर्ण समय अथवा अर्द्ध–समय के व्यवसाय के रूप में, बहुत से व्यक्तियों के साथ, जो उसी लिंग के हों, सामान्य अथवा असामान्य यौन–संबंध स्थापित करने में व्यस्त हों, उसे वेश्या कहते हैं।'[13]

*'Sex in Relation to Society'* में वेश्या को 'एलिस' ने परिभाषित करते हुए कहा है कि–'वेश्या वह है जो अपने शरीर को बिना किसी विकल्प के धन के लिए कई लोगों को मुक्त रूप से उपलब्ध कराती है।'[14]

*'Criminality and Economic Conditions'* में वेश्या को 'बोंगर' ने परिभाषित करते हुए कहा है कि–'वे स्त्रियाँ वेश्याएँ हैं जो अपने शरीर को यौन–क्रियाओं के लिए बेचती हैं और इसे एक व्यवसाय बना लेती हैं।'[15]

'एलेक्जर' ने वेश्यावृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि– 'वेश्यावृत्ति वह यौन–संबंध है जो खरीद, संकरता और संवेगात्मक उदासीनता के अर्थ में समझाया जा सकता है।'[16]

'डॉ0 बी0 आर0 जयकर' ने अपनी पुस्तक '*Social Welfare in India'* में वेश्यावृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि- "Sexual union, for a consideration in cash or kind, with a women who is not one's wife, is the plain definition of prostitution."[17]

'क्लीनार्ड' ने अपनी पुस्तक '*Sociology of Deviant Behaviour'* में वेश्यावृत्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है–''वेश्यावृत्ति एक भेदरहित और धन के लिए किया गया यौन–संबंध है, जिसमें उद्वेगात्मक उदासीनता होती है।''[18]

'*Report of the Advisory Committee on Social and Moral Hygeine* 1954' में वेश्यावृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि–''वेश्यावृत्ति के प्रमुख तीन आधार हैंः धन से सम्भोग का विनिमय, यौन–स्वच्छन्दता तथा भावात्मक उदासीनता।''[19]

'इलियट एवं मैरिल' ने अपनी पुस्तक *'Social Disorganization'* में वेश्यावृत्ति के संबंध में कहा है कि– ''वेश्यावृत्ति एक भेदरहित तथा धन की प्राप्ति के लिए स्थापित किया गया अवैध यौन–संबंध है जिसमें भावात्मक उदासीनता पाई जाती है।''[20]

'ज्योफ्रे' ने *'Encyclopaedia of the Social Sciences'* में वेश्यावृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि–'वेश्यावृत्ति आदतन या कभी–कभी बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति के साथ धन के लिए किया गया यौन–संबंध है।'[21]

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वेश्यावृत्ति एक गंभीर सामाजिक समस्या होने के साथ–साथ एक अनैतिक यौन व्यापार है। इसको निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. वेश्यावृत्ति का संबंध अवैध यौन संबंधों से है जो पूर्णतया व्यावसायिक होता है।
2. यह धन लाभ हेतु स्थपित संकर यौन संबंध है अर्थात् इसका उद्देश्य महज धन की प्राप्ति करना है।

3. इसमें किसी भी प्रकार के प्रेम एवं भावात्मक संबंधों का अभाव होता है क्योंकि यह संबंध ले और दे *(Give and Take)* के सिद्धान्त एवं काम वासना पर आधारित होते हैं न कि किसी भावनात्मक लगाव के कारण।

4. अर्थ पर केन्द्रित होने के कारण यह संबंध पूर्णतया भेदभावरहित होते हैं क्योंकि वेश्या का संबंध केवल धन से होता है न कि ग्राहक की आर्थिक स्थिति एवं व्यक्तित्व से।

## (ख) वेश्यावृत्ति के कारण–

कोई भी स्त्री अपनी इच्छा से इस व्यवसाय में नहीं आती है। उसके इस व्यवसाय में प्रवेश के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है चाहे वह व्यक्तिगत हो, आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक। वर्तमान समय में जल्दी धन कमाने की इच्छा के कारण भी यह व्यवसाय खूब फल–फूल रहा है। कुछ लड़कियाँ अपने शौक को पूरा करने के लिए अपनी इच्छा से स्वयं इस पेशे में आती है। इस कारण आज वेश्यावृत्ति केवल रेड लाइट एरिया के चकलाघरों तक सीमित नहीं रह गई हैं बल्कि 'एस्कार्टस' एवं 'कॉल गर्ल' के रूप में होटल एवं घर तक पहुँच गई हैं। 'प्रोमिला कपूर' ने ऐसी वेश्याओं के संदर्भ में कहा है कि–

''स्वतंत्र रूप से वेश्या व्यवसाय करने वाली स्त्री अथवा पुरूष ग्राहक टेलीफोन के द्वारा जिसे बुलाते हैं वह कॉलगर्ल है।''[22]

इस प्रकार की वेश्याओं में शिक्षित एवं उच्च घरानों की स्त्रियाँ भी शामिल होती हैं। इनको प्राप्त होने वाली आय में होटल मालिकों से लेकर दलाल तक के हिस्से निश्चित होते हैं। इस प्रकार प्राचीन काल में जहाँ वेश्याएँ चौसठ कलाओं से युक्त होती थी और केवल नृत्य–संगीत तक सीमित रहती थी आज पूरी तरह से शरीर के विक्रय के लिए बाजार में उतर आई हैं। आज देह व्यवसाय केवल वासना की मंडी तक सीमित नहीं रह गया है बल्कि उसका भी डिजिटलाइजेशन हो गया है। आखिर इनके बदलते स्वरूप का

क्या कारण है? ऐसी कौन सी मजबूरी है कि कुछ रूपए के खातिर ये अपनी देह का सौदा करने के लिए तैयार हैं? ऐसे ही कुछ प्रश्न है जो हमें देह व्यवसाय के विषय में बार–बार सोचने के लिए मजबूर करते हैं। एक स्त्री द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाए जाने के पीछे जो कारण दिए जाते हैं उनका वर्णन इस प्रकार है–

## 1.1 आर्थिक कारण–

वेश्यावृत्ति के अपनाने का सबसे महत्वपूर्ण कारण गरीबी है। आर्थिक तंगी एवं परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण कभी–कभी माँ, पिता, भाई और यहाँ तक कि पति भी स्त्री को वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर करते हैं और कभी लड़की स्वयं मजबूरीवश इस व्यवसाय को अपनाती है। 'आर0 ई0 एल0' ने इस बात का समर्थन करते हुए अपनी पुस्तक '*Social Disorganization*' में कहा है कि अधिकांश विद्वानों ने यह माना है कि स्त्रियों के द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाए जाने का प्रमुख कारण आर्थिक ही रहा है।[23] इसके अतिरिक्त सदैव गरीबी में जीवन जीने के कारण कभी–कभी स्वयं स्त्री एक अच्छे जीवन की चाह में स्वयं  इस दलदल में घुसने के लिए मजबूर हो जाती है। हाल ही में गरीबी के कारण 'श्वेता प्रसाद' नामक अभिनेत्री को देह व्यवसाय अपनाना पड़ा। जबकि वह नेशनल अवार्ड की विजेता रह चुकी हैं और नौ साल की उम्र से फिल्मों एवं धारावाहिकों में अभिनय करती आ रही हैं। किन्तु आगे चलकर कई दिनों तक फिल्मों एवं धारावाहिकों में काम न मिल पाने के कारण मजबूरीवश उनको इस व्यवसास को अपनाना पड़ा। उन्होंने स्वयं यह माना कि आर्थिक कारणों एवं अपने परिवार के पालन पोषण के लिए उन्हें वेश्यावृत्ति को अपनाना पड़ा। इसके अतिरिक्त और भी कई अभिनेत्रियाँ हैं जिनको आर्थिक कारणों के चलते वेश्यावृत्ति अपनाना पड़ा या सेक्स रेकेट चलाने पड़े। ऋण या उधारी भी वेश्यावृत्ति को बढ़ाने का अहम कारक है। कभी–कभी कर्ज को अदा करने के लिए औरतों को बेच दिया जाता है और उनका खरीददार मुनाफा कमाने के उद्देश्य से वेश्यावृत्ति हेतु मजबूर करता है। इस तरह दलाल के चंगुल में फँसने के बाद उससे निकलने का कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त विलासिता की वस्तुओं की ओर बढ़ता आकर्षण भी इसका महत्वपूर्ण कारण है।

आर्थिक कारणों में गरीबी के पश्चात् भूख वेश्यावृत्ति अपनाने का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। 'मद्रास निगरानी आयोग' का भी यह मानना है कि 'अधिकांश रूप से वेश्यावृत्ति का व्यवसाय जीविकोपार्जन के लिए किया जाता है।'[24] 'लोंड्रस' ने भी इस बात का समर्थन करते हुए कहा है कि भूख वेश्यावृत्ति का आधार है।[25] भूख व्यक्ति को कुछ भी करने के लिए मजबूर कर देती है। संस्कृत में 'विभूक्षितः किम् न करोति पापम्' कहकर यह बताया गया है कि भूखा व्यक्ति कोई भी पाप करने के लिए तैयार हो जाता है। यही वजह है कि जब कमाई का कोई और जरिया इनके लिए शेष नहीं रह जाता है तब स्त्रियाँ अपनी व अपने परिवार की क्षुधा को शान्त करने के लिए यह व्यवसाय अपनाने के लिए मजबूर होती हैं। 'गीताश्री' ने अपनी पुस्तक 'औरत की बोली' में बांग्लादेश की एक ऐसी बाल वेश्या का वर्णन किया है जो कुछ पैसों के कारण दलाल के माध्यम से शरीर बेचने के लिए मजबूर है क्योंकि वह दलाल उसे दिन में दो बार भरपेट भोजन देता है। इस उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि किस प्रकार भूख एक व्यक्ति को देह से समझौता करने के लिए मजबूर कर देती है। 'गीताश्री' का भी यह भी मानना है कि केवल आर्थिक तंगी के आधार पर यह समझौता सिर्फ कुछ ही घंटों में किया जा सकता है। जैसा कि–

''भूख से उठने वाली पीड़ा इतनी असह्य होती है कि कोई भी व्यक्ति गांव में जाकर किसी गरीब परिवार की शिनाख्त करके आधे घंटे से भी कम वक्त में कुछ एक हजार रूपए में किसी लड़की को खरीद सकता है। हो सकता है, यह कथन भारत में बहुतों को अतिश्योक्ति लगे, लेकिन हकीकत यह है कि देश के कुछ हिस्सों के गांवों में ऐसा हो रहा है।''[26]

भूख के कारण ही अधिकांश माता–पिता अपने लड़कियों को स्वयं यह पेशा अपनाने के लिए मजबूर कर देते हैं। माता–पिता के अतिरिक्त पति भी कभी–कभी बेकारी और गरीबी की हालत में अपनी पत्नी को वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर करते हैं। 'अमृतलाल नागर' ने अपने रिपोर्ताज 'ये कोठेवालियाँ' में ऐसे ही एक स्त्री 'लूलू

की माँ', जो अपने पति के कहने पर वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर होती है, की दयनीय स्थिति पर दुख प्रकट करते हुए कहा है कि–

''यह सब होते हुए भी हम दो भद्र जन आर्थिक कारणों से एक भद्र महिला को भद्र कुल के पुरूष पति के आदेश से वेश्या बनते देखकर मन–ही–मन गूँगे–बावले हो गए थे। आस्था के जिस शैल–शिखर पर आम तौर पर भद्र कुलीन समाज के पाँव टिके रहते हैं मेरे लिए वह बालू का ढूह हो गया।''[27]

इस प्रकार आर्थिक तंगी एवं भूख किसी स्त्री को देह के व्यवसाय में ढकेलने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी, बड़ा परिवार, विलासी प्रवृत्ति एवं नौकरी की दशाएँ आदि कारक भी औरतों को वेश्या बनने के लिए मजबूर करते हैं।

## 1.2 धार्मिक कारण–

वेश्यावृत्ति के विकास में धार्मिक कारणों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। धार्मिक परंपराएँ एवं अंधविश्वास ने इसको बनाए रखने के सर्वप्रमुख कारण हैं। देवदासी प्रथा इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है। देवदासी का सीधा अभिप्राय है 'सर्वेंट ऑफ गॉड' अर्थात् देव की दासी या पत्नी। कर्नाटक में इनके लिए 'सुले' और 'सानी' शब्द प्रयुक्त होते हैं जबकि आन्ध्र प्रदेश में उन्हें 'जोगिनी' के नाम से जाना जाता है। मंदिरों में प्राण–प्रतिष्ठित देवी–देवताओं की आजीवन सेवा करना उनका प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता है।[28] प्रत्येक वर्ष हजारों की संख्या में युवतियाँ विशेषकर दलित युवतियाँ इस प्रथा का शिकार होती हैं। दक्षिण की 'येलम्मा देवी' को प्रतिवर्ष एक विशेष पर्व पर सैकड़ों की संख्या में आज भी लड़कियाँ अर्पित की जाती हैं। इस प्रथा के अन्तर्गत यदि किसी स्त्री के बच्चे नहीं हो रहे हो या किसी प्राकृतिक आपदा का निवारण करना हो तो लोग मंदिर में मानता मानते थे और इसके लिए अपनी कन्या को मंदिर में दान कर देते थे। इस कन्या का विवाह पूर्णतया निषिद्ध था और इसका भोग मंदिर के पुजारी, जमींदार और

अमीरों द्वारा किया जाता था। इस प्रथा को धार्मिक मान्यता भी प्राप्त है। साथ इसके साथ यह मान्यता भी प्रचलित है कि अगर कोई कन्या देवदासी बनने के लिए तैयार नहीं होती है तब उस गांव में विपदाओं का पहाड़ टूट पड़ेगा।

'उत्तर प्रदेश', 'मध्य प्रदेश', 'कर्नाटक', 'महाराष्ट्र', 'तमिलनाडु', 'गोवा', 'राजस्थान' और 'गुजरात' आदि राज्यों में इसका प्रचलन है। भारत के बाहर 'बेबीलोन' में भी प्राचीन काल में देवदासी प्रथा के प्रचलन की जानकारी प्राप्त होती है। यहाँ के 'मिलिटा देवी मंदिर' को वेश्याओं के बाजार के रूप में जाना जाता था। इस मंदिर के संदर्भ में यह धारणा प्रचलित है कि यहाँ आने वाला कोई भी व्यक्ति जिस लड़की का उपभोग करना चाहेगा उसके साथ यौन संबंध स्थापित कर सकता था। प्रायः इसे देवी की आज्ञा मानी जाती थी। इसके बदले वह उस स्त्री को धन देता था जिसको मंदिर के कोष में डाल दिया जाता था।[29] इसी तरह 'सीरिया' के 'हेलियोपोलिस' नामक शहर में ऐसी एक प्रथा विद्यमान है जिसके अनुसार प्रत्येक कुंवारी लड़की का किसी एक व्यक्ति के साथ एक बार मंदिर में शयन करना आवश्यक माना जाता है।[30] 'आर्मेनिया' में भी सभ्य परिवारों द्वारा अपने बेटियों को मंदिर में देवी की सेवा के लिए दान दिए जाने का प्रमाण मिलता है।[31]

इस प्रकार महज आस्था एवं धर्म के नाम पर लड़कियों को मंदिरों में समर्पित कर दिया जाता है। जहाँ से इनके शोषण का चक्र प्रारंभ हो जाता है। यद्यपि सरकार द्वारा देवदासी प्रथा के उन्मूलन के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं किन्तु आज भी बहुत सारी देवदासियाँ अपना एवं अपने परिवार का पेट पालने के लिए वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर हैं। 'मुम्बई' शहर में वेश्याओं पर किए गए एक अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया है कि वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों में देवदासियों की संख्या बड़ी मात्रा में मौजूद है। 'एस0 डी0 पुणेकर' और 'कमलराव' के अनुसार–

''यह देखा गया कि पिछड़े वर्गों विशेषतया ग्रामीण क्षेत्र में हरिजनों में आज भी कन्याओं को मन्दिर में अर्पण करने की प्रथा प्रचलित है–यह भी देखा गया कि वेश्यावृत्ति देवदासी

के जीवन में इतनी अधिक स्वीकृत है कि वे न केवल पृष्ठभूमि के कारकों के होते हुए भी उसमें शामिल होती हैं, बल्कि यह भी दावा करती हैं कि उन्हें वेश्यावृत्ति का अधिकार है।''[32]

देवदासी प्रथा के अतिरिक्त 'नित्यमंगली' नामक प्रथा भी वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस प्रथा के अन्तर्गत 'नित्यमंगली' नामक स्त्रियाँ त्योहारों एवं विशेष अवसरों पर श्रोता समूह का मनोरंजन करती हैं और सरदारों की प्रेमिका बनती हैं। इनके विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है कि अच्छे परिवार के पुरूष अपनी यौन शिक्षा का प्रथम अनुभव इन्हीं से प्राप्त करते हैं। धीरे–धीरे यह वर्ग विलुप्ति के कगार पर है किन्तु आज भी इनके वंशज मौजूद हैं।[33]

## 1.3 सामाजिक कारण–

वेश्यावृत्ति के सामाजिक कारणों में दहेज, अशिक्षा, लड़के एवं लड़कियों में भेद, और पुरूष प्रधान मानसिकता है। सर्वेक्षण में भी यह सिद्ध हो चुका है कि देह व्यापार में संलग्न अधिकांश लड़कियाँ अशिक्षित हैं। अशिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा के अभाव के कारण अधिकांश स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति को अपनाने के लिए मजबूर होती है। इसके साथ–साथ दहेज प्रथा भी वेश्यावृत्ति का प्रमुख कारण है। अधिक दहेज की मांग के कारण लड़कियों की शादी में काफी समय लग जाता है। यहाँ तक कि कभी–कभी दहेज की वजह से लड़कियों की शादी नहीं हो पाती है। इस कारण वे अपनी आर्थिक समस्याओं को दूर करने और असंतुष्ट कामवासना के लिए वह किसी अन्य की ओर अग्रसर होती हैं और धीरे–धीरे वह दलाल के चंगुल में फँस जाती हैं, जिससे निकलना उनके लिए असंभव हो जाता है। इक्कीसवीं सदी में पहुँचने के बाद भी आज भी भारतीय समाज में लड़कियों को लड़को की तुलना में कम महत्व दिया जाता है। आज भी हमारे समाज में कन्या भ्रूण हत्या जैसी समस्याएँ विद्यमान है। इसी कारण भारत के कुछ राज्यों में लिंगानुपात में अत्यन्त गिरावट आई है। परिवार में लड़िकयों के साथ जन्म से ही भेदभाव किया जाता

है। जिसके फलस्वरूप जन्म से ही उनमें हीनता की ग्रंथि उत्पन्न हो जाती है। जिससे वे किसी अन्य के प्रति आकर्षित होने लगती है और गलत हाथों में पड़कर देह व्यवसाय में फँस जाती हैं। पुरूष प्रधान मानसिकता भी वेश्यावृत्ति को बनाए रखने के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है। भारतीय समाज भी पुरूष प्रधान है। पुरूषों में स्त्रियों की अपेक्षा कामवासना अधिक पाई जाती है। इस कारण वह अपनी स्त्री के साथ–साथ वेश्या का उपयोग भी कामवासना के लिए करता है जो वेश्यावृत्ति को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त 'बहुपत्नी विवाह' भी वेश्यावृत्ति को अपनाने का प्रमुख कारण है। भारत के कुछ राज्यों में आज भी बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है जिसमें एक पुरूष एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है। इस प्रथा के कारण यदि कभी पुरूष की असमय मृत्यु हो जाती है तो इस दशा में स्त्रियों को अपना जीवन यापन करने के लिए अन्य व्यवसाय अपनाना पड़ता है और अशिक्षित होने के कारण देह व्यवसाय अपनाने के अतिरिक्त इनके पास कोई उपाय नहीं बचता है।[34] 'बहुपत्नी विवाह' के अतिरिक्त 'अनमेल विवाह' भी वेश्यावृत्ति को अपनाने के प्रमुख कारणों में से एक है। प्रायः भारतीय समाज में लड़की के विवाह हेतु कुलीन एवं सजातीय वर की खोज की जाती है जिसके कारण योग्य वर की मांग समाज में बहुत बढ़ जाती है। समाज में वर की मांग बढ़ने के साथ ही दहेज के भाव भी अत्यन्त तेजी से बढ़ने लगते हैं। जिससे लड़की के माता–पिता या तो दहेज देने के लिए मजबूर हो जाते हैं या पैसे के अभाव में वे अनमेल विवाह के लिए मजबूर हो जाते हैं। लड़की को भी मजबूरीवश ऐसे लड़के को अपनाना पड़ता है जो बूढ़ा, नपुंसक या कुरूप या शारीरिक रूप से विकृत होता है। लड़कियाँ मन से ऐसे पुरूषों को अपना नहीं पाती और यौन सुख की प्राप्ति हेतु अवैध उपायों को अपनाती हैं। यहाँ तक कि वे घर छोडक़र भागने के लिए भी मजबूर हो जाती हैं। इस तरह एक बार घर से बाहर निकलने पर उनका पतन आरंभ हो जाता है जो उन्हें वेश्यालय पहुँचने के लिए मजबूर कर देता है।

हमारे समाज में विधवाओं की दशा भी अत्यन्त शोचनीय है। पति की मृत्यु के पश्चात् न तो मायके में इनकी कोई जगह होती है और न ही ससुराल में। राजस्थान में

इनको 'पति को खा जाने वाली' या 'खसमे खानी' के नाम से संबोधित किया जाता है और पुनर्विवाह व अन्य अधिकारों से भी वंचित कर दिया जाता है।[35] परिवारजन इनको अपने घर से निकाल कर तीर्थाटन के लिए प्रेरित करते हैं। हजारों की संख्या में इन्हें 'मथुरा', 'वृन्दावन' और 'बंगाल' में देखा जा सकता है। प्राचीन काल में विधवाओं की समस्या के समाधान हेतु सती प्रथा का प्रचलन समाज में था जिसके तहत पति की चिता के साथ पत्नी भी जलकर प्राण त्याग देती थी। आगे चलकर शिक्षा के प्रसार एवं समाज सुधारकों के प्रयास के माध्यम से इस प्रथा पर पूर्णतया रोक लगा दी गई। किन्तु इसके बाद भी विधवाओं की स्थिति में ज्यादा सुधार नहीं हुआ है। आज भी पति की मृत्यु के बाद समाज में उनको घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। साथ ही आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण उनकी स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। इसलिए धनाभाव, सामाजिक घृणा एवं यौन इच्छा की पूर्ति के लिए ये अपना शरीर बेचने के लिए मजबूर होती हैं।

शहरीकरण के बढ़ने से आज शहरों की ओर पलायन लगातार हो रहा है। रोजगार की तलाश में बहुत से शहरों में अपने घर परिवार से दूर आते हैं और अधिक पैसे कमाने की चाह में वे कई महीनों तक अपने घर भी नहीं जा पाते। इसलिए अन्य आवश्यकताओं की तरह कामवासना की तृप्ति के लिए वे वेश्याओं का सहारा लेते हैं। इस वर्ग में शहरों में काम करने वाले मजदूर, बढ़ई, रिक्शाचालक आदि आते हैं जो कम सस्ते दाम पर अपनी यौन इच्छा की पूर्ति करते हैं। देशों में होने वाले कई प्रकार के सम्मेलन या विभिन्न खेलों के आयोजन में भी वेश्यावृत्ति का व्यापार काफी जमकर होता है। ऐसा ही एक उदाहरण जर्मनी है जहाँ 2006 में फुटबाल वर्ल्ड कप के दौरान यहाँ के कई शहर सेक्स बाजार में परिवर्तित हो गए थे। यहाँ तक कि इस दौरान वेश्याओं की पूर्ति करने के लिए जर्मनी के बाहर से भी लड़कियाँ तरस्करी करके लाई गई।[36] जब हर जगह ऐसी स्थिति हो तो वेश्यावृत्ति के उन्मूलन की अपेक्षा कैसे की जा सकती है?

## 1.4 जैविकीय कारण–

जैविकीय कारकों के अन्तर्गत सबसे पहले वंशानुगत कारणों को रखा जा सकता है। प्रायः यह देखने में आता है कि वेश्याओं की बेटियाँ या बेटे अपने वंशानुगत पेशे को ही अपनाते हैं। लड़कियाँ प्रायः वेश्या और लड़के दलाल के व्यवसाय को बड़े होकर अपनाते हैं क्योंकि समाज इन्हें वेश्या पुत्र या पुत्री होने के कारण स्वीकार नहीं करता है। यहाँ तक कि कई विद्यालय इन्हें शिक्षा देने से भी मना कर देते हैं क्योंकि सभ्य परिवार के लोग इनके साथ शिक्षा ग्रहण करना पसन्द नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त गरीबी एवं अशिक्षा के कारण वेश्याएँ भी इनको इसी व्यवसाय को अपनाने के लिए मजबूर करती हैं। 'स्कॉट' ने भी इन विचारों का समर्थन करते हुए कहा है कि–

''बहुत–सी घटनाओं में स्वयं माँ वेश्या होती है, पिता दलाल और संचालक होता है और वे बिना किसी हिचक के अपनी कन्या को सड़कों पर भेज देते हैं, अक्सर यौन–संबंध के लिए स्वयं प्रेरित करते हैं।''[37]

वंशानुगत कारणों के साथ–साथ यौन क्षुधा की अतृप्ति भी वेश्यावृत्ति को बनाए रखने का प्रमुख कारण हैं। कभी–कभी किसी पुरूष की कामवासना अत्यधिक प्रबल होने के कारण वह अपनी स्त्रियों से संतुष्ट नहीं होते जिसके कारण वह वेश्याओं की ओर उन्मुख होते हैं। नपुंसकता भी वेश्यावृत्ति को अपनाने के प्रमुख कारणों में से एक है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कोई पुरूष किसी कमी या नपुंसक होने के कारण अपनी स्त्रियों की यौन इच्छा को तृप्त नहीं कर पाते हैं। इसलिए वह किसी अन्य पुरूष संबंध से बनाने या वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर होती हैं। पति के नपुंसक होने के कारण जब पत्नी की यौन इच्छा की पूर्ति नहीं हो पाती है तब वह वेश्यावृत्ति का आश्रय लेती है। 'डॉ0 मोहिनी शर्मा' के अनुसार–

''मानवीय हितैषणा की दृष्टि से काम का दमन नहीं, उसके उचित मार्ग अथवा उपादानों द्वारा उनका शमन ही अपेक्षित है। उम्र के अनुसार यौन क्षुधा का उत्पन्न होना स्वाभाविक

है, पर उसकी सहज सन्तुष्टि के साधनाभाव में, व्यक्ति काम–अतृप्ति के परिणाम स्वरूप अप्राकृतिक असामाजिक और अस्वास्थ्यकारी विकृत तरीका अपनाने लगता है।''[38]

कामतृप्ति मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है, अगर वह वैध तरीके से पूर्ण न हो तो इसकी पूर्ति अन्य माध्यमों से की जाती है। जिसमें वेश्यावृत्ति सबसे सरल तरीका है। इस प्रकार जैवकीय कारण भी वेश्यावृत्ति के विकास में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

## 1.5 अन्य कारण–

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं जो वेश्यावृत्ति को बनाए रखने के प्रमुख कारक हैं। इनमें सिनेमा, फैशन और वैयक्तिक स्वार्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बहुत से छोटे घरों की लड़कियाँ अभिनेत्री बनने के चक्कर में घर से भागकर मुम्बई जैसे बड़े शहरों में आती हैं और दलालों के चंगुल में फँस जाती हैं और बार बाला के रूप में काम करने लगती हैं या कॉल गर्ल के रूप में। वह घर भी वापस नहीं जा सकती, इस कारण वह जीवनयापन करने हेतु वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर होती हैं। इसके अतिरिक्त आज के बदलते फैशन के कारण साधनविहीन या निम्नमध्यवर्ग की लड़कियाँ अपने शौक और बदलते फैशन के अनुकूल खुद को बनाए रखने के लिए वे अन्य तरीकों का सहारा लेती हैं। पैसों की कमी और कम समय में पैसा कमाने के लिए वेश्यावृत्ति को अपनाती हैं और एक बार फँसने पर वह इससे बाहर नहीं आ पाती हैं। वैयक्तिक स्वार्थ के अन्तर्गत भी व्यक्ति जल्द से जल्द पैसा कमाने के उद्देश्य से वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देते हैं। इनमें दलाल महत्वपूर्ण भमिका निभाते हैं। वह पहले तरह–तरह से लड़कियों को प्रलोभन देकर अपनी ओर आकर्षित करते हैं और जब एक बार लड़की फँस जाती है तो वे उसे इस व्यवसाय में ढकेल देते हैं या देश से बाहर इनको देह व्यवसाय के लिए भेज दिया जाता है। अपनी रोजी–रोटी कमाने के लिए ये लड़कियों को बहकाने और प्रेम में फँसाने के साथ–साथ उनका अपहरण कर इस व्यवसाय में जबरन ढकेलते हैं और मना करने पर ये उनके साथ मार पीट भी करते हैं।

'गीताश्री' ने अपनी पुस्तक 'औरत की बोली' में दलालों की भूमिका एवं उनके बदलते स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि–

''कभी गांव या कस्बों के छोटे–मोटे दलालों या गांव की दाइयों का क्षेत्र समझा जाने वाला धंधा जिस्मफरोशी, आज डिजिटल युग में प्रवेश कर चुका है। अब यह धंधा पूरी तरह ग्लोबल हो चुका है। दलाल, दलाल नहीं रह गए, वो किसी उद्योग के रिप्रजेंटेटिव की तरह खुद को पेश करते हैं।.....आज सब कुछ बदल चुका है।''[39]

इसके अतिरिक्त पुलिस भी वेश्यावृत्ति को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पुलिस में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो होटल के मालिक, दलाल या वेश्यालयों की मालकिनों से मिले होते हैं और उनसे पैसे लेकर वेश्यावृत्ति में रूकावट डालने का प्रयत्न नहीं करते हैं। जिससे दलालों को लड़कियों की खरीदफरोख्त और देह व्यवसाय को बढ़ाने में मदद मिलती है।

वेश्यावृत्ति आज केवल शहरों के रेड लाइट एरिया और कोठों तक सीमित न होकर एक व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आ रही है। मोबाइल फोन, फेसबुक एवं इंटरनेट का प्रचलन बढ़ने के साथ इस व्यवसाय का तेजी से विस्तार हुआ है। आजकल अखबारों में भी अनेक ऐसे विज्ञापन छपे हुए मिल जाएगे जिसमें कुछ मोबाइल नंबर दिए रहते हैं और उन नंबरों पर कॉल करके ग्राहक होटलों या घरों में वेश्याओं या कॉल गर्ल को बुलाते हैं। इस तरह की सेवा को 'आउट डोर सर्विस' कहा जाता है।[40] इसी कारण अब वेश्याएँ खुद को सेक्स वर्कर्स के रूप में घोषित किए जाने की मांग कर रही हैं। कुछ साल पहले कलकत्ता के सोनागाछी रेड लाइट एरिया की वेश्याओं ने ऐसी ही मांग सरकार के सामने रखी थी। उनके अनुसार उन्हें मनोरंजनकर्मी का दर्जा दिया जाए जिसके बदले में वे सरकार को टैक्स अदा करने के लिए तैयार हैं।[41] इस तरह वेश्यावृत्ति के स्वरूप में लगातार परिवर्तन आ रहा है और इसमें बहुत तेजी से वृद्धि हो रही है। 'गीताश्री' के अनुसार–

''दुनिया का सबसे पुराना धंधा, अब नए जमाने के उसी अंदाज में बदल गया है, जैसे कि लोगों की आदतें, खान–पान, और सुख सुविधाओं के सामान। वासना की वैश्विक मंडी से चलकर देह की डिजिटल मंडी तक के इस सफर ने इतने रंग बदले हैं, इतना चोला बदला है कि इसकी पहचान भी मुश्किल हो गई है।.....कॉल गर्ल्स का चलन पिछले तीन दशकों में बेहद बढ़ा है। ये लड़कियाँ महंगे होटलों, आलीशान फ्लैटों में, अमीरों की हवस शांत करती हैं। गरीब तबकों में भी इनका प्रचलन अब धीरे–धीरे बढ़ रहा है। व्यापारियों की खातिर एक्जीक्यूटिव क्लब हैं, जहाँ कारोबारी कामों और यौनरंजन के लिए जाते हैं। बार, नाइटक्लब, मालिश पार्लर, हेल्थ क्लब, रेस्तरां भी है जहाँ मनोरंजन के अन्य साधनों के साथ–साथ सेक्स भी उपलब्ध होता है।''[42]

इस प्रकार उपर्युक्त सभी कारणों के अवलोकन से यह पता चलता है कि वेश्यावृत्ति के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं जो उसको बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कभी यह लड़की के द्वारा सामाजिक, आर्थिक, एवं धार्मिक कारणों से स्वयं मजबूर हो कर अपनाई जाती है और कभी वह जबरदस्ती दूसरों के द्वारा मजबूर की जाती हैं। यह एक ऐसी सामाजिक समस्या है जो दिनोदिन छुआछूत रोग की तरह फैलती जा रही है। इसलिए इस समस्या का निदान अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वेश्यावृत्ति के बने रहने के पीछे केवल स्त्री ही दोषी नहीं है बल्कि वे पुरूष भी दोषी हैं जो वेश्यागामी है। अगर वे स्वयं वेश्याओं के पास जाना छोड़ दे तो शायद कुछ हद तक वेश्यावृत्ति पर रोक लगाई जा सकती है। इस संबंध में 'मोहिली' ने सही कहा है–

''इसके अनेक कारणों के विश्लेषण में हमें ध्यान देना होगा कि केवल नारी ही नहीं अपितु पुरूष भी उसी हद तक समान रूप से इस दोषमयी व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हैं।''[43]

अतः आवश्यकता इस बात की है कि दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ इस समस्या का शीघ्र से शीघ्र समाधान निकाला जाए जिससे इस पेशे में संलग्न स्त्रियों की दशा को सुधारा जा सके और वे गरिमापूर्ण जीवन जी सके।

## (ग) वेश्यावृत्ति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य–

वेश्यावृत्ति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, सम्पूर्ण विश्व के साथ–साथ भारत में भी अत्यन्त प्राचीन काल से विद्यमान रही है। भारत के इतिहास के प्रत्येक युग में इनका वर्णन कहीं न कहीं अवश्य मिलता है। यद्यपि यह सुनिश्चित करना अत्यन्त कठिन है कि वेश्यावृत्ति की शुरूआत कब हुई लेकिन उपलब्ध प्रमाणों एवं साहित्य के आधार पर यह जरूर कहा जा सकता है कि सम्पत्ति के अधिकार, वैवाहिक संस्था के कठोर नियमों एवं युद्धों के फलस्वरूप वेश्यावृत्ति का विकास हुआ। इतिहास में वैदिक काल से वेश्यावृत्ति के साक्ष्य मिलते हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार वैदिक काल के पूर्व सिन्धु सभ्यता में वेश्यावृत्ति के प्रमाण मिलते हैं। 'मेहरगढ़' एवं 'मोहनजोदड़ों' से नर्तकी की मूर्ति मिली है लेकिन इसे पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त जो मूर्तियाँ उपलब्ध है वह अधजली अवस्था में प्राप्त हुई है। अतः प्रामाणिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वेश्यावृत्ति का प्रारंभ सिन्धु सभ्यता से हुआ है। आगे चलकर वैदिक काल में आर्यो के आगमन एवं युद्धों के परिणामस्वरूप वेश्यावृत्ति के प्रमाण देखने को मिलते हैं। किन्तु यहाँ वेश्या की जगह दासियों या रखैल के प्रमाण मिलते हैं जिनका क्रय–विक्रय किया जाता था। जिन्हें अपनी स्वामियों की हर आज्ञा माननी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त यह कई व्यक्तियों के पास रहती थी। जीते गए क्षेत्रों की स्त्रियों का शोषण आर्यों ने करना प्रारंभ किया और यही से वेश्यावृत्ति के प्रमाण देखने को मिलते हैं। जैसा कि–

'भारत में पहुँचने पर आर्यों ने अपने शत्रुओं (दास दासियों) जो अपने लौह–दुर्गों में भली भाँति रक्षित थे–युद्ध किया। भिन्न भाषाई शत्रुओं के प्रति भी इनके मन में घृणा थी।

आर्यों की विजय ने विजेताओं को पराजित लोगों की नारियों को रखैल के रूप में रखने और कभी–कभी गुलाम बनाने का अधिकार दिया।'[44]

चाहे युद्ध हो, विरोध प्रदर्शन हो अथवा साम्प्रदायिक दंगे, स्त्रियों के यौन शोषण की एक सामान्य परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रत्येक आक्रमणकारी स्वयं की स्त्रियों को तो पवित्र मानता था किन्तु शत्रु की स्त्रियों को दासी या रखैल बनाना अपना धर्म समझता था। इसी कारण प्रथम विश्वयुद्ध एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भी वेश्याओं एवं अवैध संतानों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।[45] वैदिक युग में आगे चलकर 'उत्तरवैदिक काल' में आठवीं–सातवीं शताब्दी ई0 पू0 से वेश्यावृत्ति के प्रमाण मिलने लगते हैं। 'महाभारत' और 'रामायण' में वर्णित घटनाओं के आधार पर भी वेश्यावृत्ति का प्रमाण मिलता है। 'महाभारत' के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि गान्धारी जब गर्भवती थी, उस समय उनकी परिचर्या हेतु एवं सेवा हेतु गणिकाओं को लगाया गया था। श्री कृष्ण जब स्थापनार्थ वार्ता हेतु पधारे थे तब वेश्याओं ने उनका स्वागत किया था। कभी–कभी वेश्याएँ सेनाओं के साथ भी चला करती थीं। पाण्डवों की सेनाओं में वेश्याओं के होने का वर्णन भी मिलता है।[46] 'महाभारत' में इस बात का उल्लेख भी मिलता है कि विजय एवं उत्सव पर गणिकाओं द्वारा नृत्य का प्रदर्शन किया जाता था।[47] इसके अतिरिक्त अश्वमेध यज्ञ में युधिष्ठिर द्वारा अतिथियों की को कन्याएँ भेंट स्वरूप दिए जाने का प्रमाण मिलता है।[48] जिस प्रकार यज्ञ में दान के रूप में उसी प्रकार विवाह आदि के अवसर पर उपहारस्वरूप कन्याओं को भेंट किया जाता था।[49] 'महाभारत' में विवाह के समय भेंट स्वरूप दी गई दासियों के प्रमाण मिलते हैं। द्रौपदी के विवाह के समय सौ युवा दासियों को भेंट किए जाने का उल्लेख मिलता है।[50] इसके अतिरिक्त सुभद्रा के विवाह के समय अतिथियों के मनोरंजन के लिए एक हजार कन्याओं के प्रदान किए जाने का वर्णन प्राप्त होता है।[51] 'महाभारत' में युवा और आकर्षक कन्याओं को ब्राह्मणों को दी जाने वाली आदर्श भेंट कहा है।[52] 'रामायण' में 'गान्धर्वी' और 'देवी' नामक वेश्या का उल्लेख मिलता है। 'रामायण' के 91वें सर्ग में यह उल्लेख मिलता है कि भरत जब रामचन्द्र जी को वन से पुनः वापस लाने के लिए लेने गए थे उस समय कुबेर और इन्द्र ने भारद्वाज मुनि के

आश्रम में भरत के आतिथ्य हेतु अप्सराओं को भेजा था।[53] 'रामायण' में वर्णित उल्लेखों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि इस काल में भी वेश्यावृत्ति को राजसंरक्षण प्राप्त था।

बौद्ध साहित्य जिसमें जातकों का प्रमुख स्थान है जिसमें 'आम्रपाली' जैसी गणिकाओं का उल्लेख मिलता है जिसकी इच्छा जाने बगैर गण परिषद ने अपने विधान के अनुसार उसे जनपद कल्याणी अर्थात् गणिका के पद पर अधिष्ठित कर दिया गया था। इस प्रकार नारी का सामाजीकरण कर उसे जनपद की संपत्ति घोषित कर दिया गया। आम्रपाली के प्रसिद्धि के कारण महात्मा बुद्ध ने उसका आतिथ्य स्वीकार किया था और अपने संघ में शरण भी दी थी जो उस समय एक क्रांतिकारी कदम था।[54] किन्तु अपने संघ में शरण देने के बावजूद आम्रपाली का स्थान संघ के पुरूष भिक्षुओं से निम्नतर ही था। बौद्ध काल में गणिकाओं की अच्छी स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही वह कला और संस्कृति की संरक्षक भी थी। इस काल में नगरों की शोभा में वृद्धि गणिकाओं के कारण होती थी। वैशाली नगर का भ्रमण करके लौटा हुआ एक श्रेष्ठि ने सम्राट बिम्बिसार को वहाँ के वैभव की सूचना इस प्रकार दी–

''महाराज वैशाली नगरी समृद्ध और ऐश्वर्य सम्पन्न है.....वहाँ अम्बापाली नाम की गणिका निवास करती है, जो परम सुन्दरी, रमणीया, नयनाभिराम सुन्दरावर्णा, गायन–वादन–नृत्य–विशारदा तथा अभिलषित बहुदर्शनीय है।''[55]

जातकों एवं धर्मशास्त्रों में गणिकाओं के संबंध में अलग–अलग मत देखने को मिलते हैं। जातकों में गणिकाओं को अच्छी दृष्टि से देखा है जबकि धर्मशास्त्रों में इन्हें हीन दृष्टि से देखा गया है। जातकों में गणिकाओं के ऐश्वर्य एवं समाज में उनकी अच्छी स्थिति का उल्लेख इस प्रकार मिलता है–

''राज्य की ओर से किसी गणिका का गणिकाभिषेक किया जाना उसके लिए अत्यन्त सम्मान और गौरव का क्षण होता था तथा यह उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और राजकीय

उच्चता को व्यक्त करता था। उच्च पदाधिकारी तथा अभिजात वर्ग इनकी ओर केवल आकृष्ट ही नहीं था बल्कि इनकी कला का यथोचित सम्मान भी करता था।''[56]

शास्त्रों में यह भी माना गया है कि वेश्यागमन करने वाले को नरक की प्राप्ति होती है। जैन पुराणों में भी वेश्याओं का वर्णन मिलता है। जैन मुनियों को निःसंकोच 'कोशा' नामक वेश्या की शाला में चर्तुमास व्यतीत करने की आज्ञा प्रदान की गई है।[57] प्राचीन काल में वेश्याओं के कई रूप देखने को मिलते हैं। इनमें कुछ राजनर्तकी होती थी जो संगीत एवं नृत्य में निष्णात होती थी। इसके अतिरिक्त कुछ नगरवधू के नाम से संबोधित की जाती थी। जिनका चुनाव गण के लिए होता था। इनके निर्वाचन की मुख्य योग्यता थी– सौन्दर्य, यौवनावस्था एवं विविध कलाओं में प्रवीण होना। इनका प्रमुख कार्य नगर की शोभा बढ़ाना था इसलिए इन्हें नगरशोभिनी या नगर मंडना भी कहा जाता था अर्थात् ऐसी स्त्री जो नगर की शोभा बढ़ाती हो। इनका स्थान समाज में वेश्याओं से ऊपर था। 'कौटिल्य' ने 'अर्थशास्त्र' में वेश्याओं को तीन भागों– कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम में विभक्त किया है। इनमें कनिष्ठ वेश्या को एक हजार पण वेतन मिलता था और उसकी सहायक गणिका को भी उसके कुटुम्ब पालन हेतु उसका आधा वेतन दिया जाना चाहिए। यह छत्र व इत्र से राजाओं की सेवा करती थी। मध्यम वेश्या पालकी के साथ और उत्तम वेश्या रथ और राजसिंहासन के निकट रहकर अपनी सेवाएँ प्रदान करती थी।[58] 'कौटिल्य' के अनुसार गणिकाओं को नगर के दक्षिणतम भाग में रखा जाता था और एक निरीक्षक की नियुक्ति इनकी स्वास्थ्य संबंधी एवं अन्य सुविधाओं की देखरेख के लिए की जाती थी।[59]

'अर्थशास्त्र' में यह भी उल्लेख मिलता है कि इन गणिकाओं या इनके परिवार के लोगों की हत्या और गणिकाओं के साथ बालात्कार करने पर आर्थिक दंड दिया जाता था। यदि कोई कामना रहित किसी गणिका का बलात्कार करे अथवा कुमारी कन्या के साथ व्यभिचार करे तो उस पुरूष पर उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए।[60] जो पुरूष न रहने वाली गणिका को बलपूर्वक रोक रखता है अथवा उसको मुक्त नहीं होने देता तथा नाक–कान आदि काटकर उसको कुरूपा बनाता है तो उस पुरूष पर एक हजार पण

दण्ड होना चाहिए।[61] गणिका के मर्म स्थान विशेष पर आघात करने पर एक हजार पण से लेकर निष्क्रय दण्ड से दोगुने तक (चौबीस हजार से तीन गुना) आर्थिक दंड दिया जा सकता है।[62] जो पुरूष राजकीय अधिकार प्राप्त गणिका का वध कर देता है वह निष्क्रय दण्ड के तीन गुने दण्ड का भागी होता है।[63] गणिकाओं की सुरक्षा के साथ–साथ उन पर नियंत्रण भी स्थापित किए गए थे, जिसका उल्लेख 'अर्थशास्त्र' में मिलता है। राजा की आज्ञा पर यदि कोई वेश्या किसी विशिष्ट व्यक्ति के यहाँ जाने से इनकार कर दे तो उस पर एक हजार कोड़े अथवा पाँच हजार पण का जुर्माना देना पड़ता था।[64] यदि कोई वेश्या संभोग शुल्क लेकर धोखा कर दे तो उस पर संभोग शुल्क से दोगुना जुर्माना रूप में वापस करना पड़ता था।[65] यदि सम्पूर्ण रात्रि का शुल्क लेकर गणिका किस्सा–कहानियों या दूसरे बहानों में पूरी रात्रि बिता दे तो उसे आठ गुणा दण्ड देने का विधान होता था। किन्तु किसी संक्रामक रोग या किसी के कारण से गणिका यदि संभोग कराने को तैयार नहीं हो तो, उसे अपराधिनी न समझा जाय, यह भी विधान था।[66]

वेश्याओं के लिए प्राचीन काल में गणिका के अतिरिक्त रूपजीवा शब्द भी प्रचलित है जिसका अर्थ है रूप के आधार पर धन कमाने वाली। इनका समाज में प्रयोग गुप्तचर, रानी की परिचारिका एवं सैनिक की यौन इच्छाओं की पूर्ति के लिए किया जाता था। अपनी सेवाओं के बदले राज्य द्वारा इन्हें सुरक्षा प्रदान की जाती थी। इसके अतिरिक्त इतिहास में विषकन्या का भी उल्लेख मिलता है जिनको जन्म के समय से क्रय करके सर्प का विष दिया जाता था। साथ ही नृत्य संगीत आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। राज्य द्वारा इनका प्रयोग शत्रु के लिए किया जाता था। 'अर्थशास्त्र' में भी ऐसी गणिकाओं का उल्लेख मिलता है जिनका प्रयोग गुप्तचर के रूप में किया जाता था। ये गणिकाएँ शत्रुओं के गुप्तचर के हाव–भाव को पढ़ने में समर्थ होती थी।[67] लेकिन रूपजीवा या विषकन्या की तुलना में गणिका की स्थिति आर्थिक एवं सामाजिक रूप से अच्छी थी। जबकि रूपजीवा एवं विषकन्या आदि को राज्य का न तो विशेष संरक्षण प्राप्त था और न ही किसी भी प्रकार के कर से छूट प्राप्त थी। पुराणों में भी वेश्यावृत्ति का उल्लेख मिलता है जिसमें वेश्याओं के दर्शन को शुभ माना गया है। सार्वजनिक उत्सवों में इनकी

उपस्थिति अनिवार्य मानी गई है।[68] इसी कारण बंगाल में दुर्गा पूजा के लिए वेश्या के आंगन की मिट्टी का प्रयोग किया जाता है।[69] प्राचीन काल में वेश्या एवं गणिका में अन्तर देखने को मिलता है। गणिका नृत्य एवं संगीत में पारंगत होती थी। वह इसी के माध्यम से अपनी जीविका चलाती थी। किन्तु वेश्या अपने जीविकोपार्जन के लिए अपने शरीर एवं सौन्दर्य का आश्रय लेती थी। आमूलचूल अन्तर होते हुए भी आखिर वह होती तो वेश्या थी। प्राचीन काल में वेश्या को रखना सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में जाना जाता है। संस्कृत साहित्य में ऐसी गणिकाओं का उल्लेख मिलता है। 'आचार्य विश्वनाथ' ने नायिका के तीन भेद स्वकीया, परकीया और सामान्य तीन भेद किए हैं। जिसमें सामान्य को गणिका के अन्तर्गत रखा है जो चौसठ कलाओं में निपुण होती थी और धन के आधार पर अनुराग का प्रदर्शन बिना किसी भेदभाव के करती थी। 'मृच्छकटिकम्' में भी गणिकाओं का उल्लेख मिलता है। 'मृच्छकटिकम्' में गणिका वसन्तसेना के लिए इस प्रकार का उल्लेख मिलता है– 'चारूदत्त के गुणों पर अनुरक्त वसन्त ऋतु की शोभा के समान वसन्तसेना नामक गणिका थी।'[70]

इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है समाज में गणिकाओं का स्थान सम्मानजनक था। शूद्रक ने चारूदत्त के प्रति वसन्तसेना का निःस्वार्थ प्रेम प्रकट कर उसके चरित्र को और अधिक उदात्त बना दिया है।[71] 'दण्डी' की 'दशकुमारचरितम्' में 'काममंजरी' और 'रागमंजरी' का उल्लेख किया है। काममंजरी और रागमंजरी दोनों एक दूसरे के पूर्णतया विपरीत हैं। रागमंजरी धन के लिए अपने स्त्रीत्व को बेचना नहीं चाहती है। वह विवाह के बाद ही अन्य स्त्री के समान जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह नृत्य एवं संगीत के लिए अपने राजदरबार में जानी जाती है। परन्तु वह अन्य गणिकाओं के समान अपना स्त्रीत्व बेचकर धन कमाने की इच्छुक नहीं है। इसके विपरीत काममंजरी है जिसका उद्देश्य धन कमाना है। उसे अपनी माता से नृत्य, संगीत, अभिनय, वाद्य कला एवं वाक् चातुर्य की शिक्षा मिली थी। वह धन कमाने के लिए ही पुरूषों को अपनी तरफ आकृष्ट करती है औ उद्देश्य पूरा हो जाने पर उनको त्याग देती थी।[72] 'वात्स्यायन' के 'कामसूत्र', 'शूद्रक' के 'मृच्छकटिकम्', 'राजशेखर' के 'काव्यमीमांसा' व 'दामोदरगुप्ता' के

'कुट्टनीमतम्' आदि रचनाओं में भी वेश्या के अनेक रूपों का वर्णन किया गया है। 'शूद्रक' के 'मृच्छकटिकम्' में वेश्या की तुलना उस बावड़ी से की गई है, जिसमें द्विजवर तथा मूर्ख दोनों ही स्नान कर सकते हैं। उसे वह लता बताया गया है, जहाँ पर मयूर तथा कौवे समान रूप से बैठते हैं। उसकी तुलना उस नौका से की गई है, जहाँ पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी बैठ सकते हैं।[73] 'राजशेखर' ने 'काव्यमीमांसा' में शास्त्रप्रहितबुद्धि वाली गणिकाओं का उल्लेख किया है।[74] 'दामोदरगुप्ता' की 'कुट्टनीमतम्' में गणिका एवं कुट्टनी के संवाद द्वारा गणिका जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन किया है। इस रचना में कई तीर्थस्थानों का उल्लेख एवं वहाँ पर गणिकाओं की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए 'दामोदरगुप्ता' ने स्वयं बताया है कि–

''यहाँ अक्सर मोक्ष की इच्छा वाले लोग बसते है, परन्तु देह सुख की कामना से आने वालों की भी यहाँ कोई कमी नहीं है। मुक्ति और भुक्ति दोनों के लिए वाराणसी से बढ़कर कोई स्थान नहीं।''[75]

हर्षवर्धन के साम्राज्य के पतन के पश्चात् देश में अनेक छोटे बड़े राजाओं का उदय हुआ जिन्होंने वेश्यावृत्ति को बढ़ावा दिया। 'कल्हण' की 'राजतरंगिणी', 'क्षेमेन्द्र' की 'समयमातृका' एवं 'नीलमत्तपुराण', 'चन्दबरदाई' के 'पृथ्वीराज रासो', 'नरपति नाल्ह' की 'बीसलदेव रासो', 'गणपति' की 'माधवानलकामकंदला' तथा अरब यात्री 'अलबरूनी' की 'तहकीक–ए–हिन्द' में भी वेश्याओं का उल्लेख मिलता है। ये रचनाएँ 980–1200 ई0 के बीच गणिकाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक दशा का विवरण प्रस्तुत करती हैं। 'कल्हण' की 'राजतरंगिणी' में यह उल्लेख मिलता है कि समाज में निम्न स्तर पर होने के बावजूद कई गणिकाएँ रानी के पद को प्राप्त करने में सफल हुई थी।[76] 'क्षेमेन्द्र' की 'समयमातृका' लिखे जाने का उद्देश्य वेश्याओं को उनके व्यापार में पारंगत करना था।[77] इसी प्रकार 'नीलमत्तपुराण' में गणिकाओं की स्थिति का विवरण मिलता है जिसमें यह बताया गया है कि पर्व त्यौहारों के अतिरिक्त राजा के राज्याभिषेक स्नान के समय गणिकाओं की उपस्थिति अनिवार्य थी। स्नान के पश्चात् शूद्र प्रमुख, वैश्य वर्ग के सदस्य, धनी वणिक और गणिका राजा का पवित्र जल से अभिषेक करते थे।[78]

इस प्रकार के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि समाज में गणिका का प्रमुख स्थान था। इन्हें अत्यधिक मात्रा में धन तथा उपहार उपलब्ध कराए जाते थे। नीलमत्तपुराण नामक रचना से वेश्याओं के शिव पर्व में शमिल होने का प्रमाण भी मिलता है।[79] युद्ध में विजय प्राप्त करने तथा विवाह आदि के अवसर पर वेश्याओं द्वारा नृत्य कराए जाने का प्रचलन था। 'माधवानल कामकंदला' जो कि 'गणपति' कायस्थ की रचना है, में 'माधवानल' नामक ब्राह्मण एवं 'कामकंदला' नामक वेश्यापुत्री के प्रेम का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। आगे चलकर 'आलम' नामक मुसलमान कवि के द्वारा इसका ब्रजभाषा में अनुवाद भी किया गया है। पूर्व मध्ययुगीन धर्म साधना में यौन पूजा को लेकर जो विकृतियाँ आ गई थीं, उसके कारण भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिला। बौद्ध धर्म की वज्रयान, हिन्दू धर्म के कापालिक, कालमुख एवं शाक्त सम्प्रदायों में ही नहीं बल्कि जैन धर्म की कुछ शाखाओं में भी यौन साधना को मान्यता दे दी गई।[80] मत्स्य, मदिरा, मांस, मधु एवं मैथुन की पंच मकार उपासना ने देवालयों की वेश्यावृत्ति को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।[81]

दक्षिण भारत में वेश्यावृत्ति का एक स्वरूप 'देवदासी प्रथा' के रूप में देखने को मिलता है। मंदिर में स्त्री के अर्पण का प्रचलन प्राचीन काल से ही समाज में विद्यमान है। वास्तव में एक संस्था के रूप में इस प्रथा का कब विकास हुआ इस पर विद्वानों में मतभेद है किन्तु पश्चिम के अधिकांश विद्वान 10वीं शताब्दी से इसकी शुरूआत मानते हैं। भारत में साहित्य एवं पुरालेखीय प्रमाणों में देवदासियों के लिए बासवी[82], जोगिनी[83], सुले[84] तथा सानी[85] जैसे शब्द मिलते हैं। कन्नड़ तथा तेलुगू में इन शब्दों का अर्थ वेश्या है। 'उड़ीसा', 'आन्ध्र प्रदेश', 'तमिलनाडु' और 'कर्नाटक' इस प्रथा के प्रमुख केन्द्र थे। इस प्रथा के अन्तर्गत किसी मान्यता के फलस्वरूप माता–पिता अपनी बेटियों को मंदिरों में दान कर देते थे। इन कन्याओं का दान मंदिरों में देवताओं की सेवा एवं पूजा अर्चना के लिए किया जाता था किन्तु इनका भोग मंदिर के पुजारी के द्वारा किया जाने लगा और धर्म की आड़ में वेश्यावृत्ति को बढ़ावा दिया गया। 'कर्नाटक' के 'बेलगांव' जिले के 'सौंदत्ती' और 'कोकटनूर' तथा 'शिमोगा' जिले के 'चंद्रगुत्ती' नामक स्थान पर 'येलम्मा

देवी' का मंदिर है।[86] 'येलम्मा देवी' के बारे में अनेक कथाएँ चर्चित हैं। देवी की महत्ता 'रेणुकामहात्म्य' के रूप में भी प्रतिपादित की गई है। 'येलम्मा देवी' 'मांग' और 'महार' जाति की आराध्या हैं। इस कारण 'महार', 'मांग', 'तलवार', 'दासर', 'नाईक', 'कुणबी' एवं 'भंडारी' आदि जातियों में बालिकाओं एवं बालकों को देवार्पित करने की प्रथा अधिक प्रचलित है।[87] यद्यपि सवर्ण जाति के लोग भी देवी की भक्ति करते हैं और मनोकामनाएँ रखते हैं किन्तु वे देवी को अपने बालक–बालिकाएँ अर्पित करने के बजाय गाय, बकरी एवं बैल जैसे पशु अर्पित करते हैं। जबकि दलित वर्ण में बालिकाओं के अर्पण पर बल दिया जाता है जिसके पीछे आर्थिक कारण प्रमुख होने के साथ–साथ अंधविश्वास भी प्रमुख कारणों में से एक है।

'कर्नाटक' के 'सौंदत्ती' गाँव में प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा के दिन 'देवी येलम्मा' के साथ हजारों लड़कियों का विवाह सम्पन्न कराया जाता है। इस विवाह का खर्च गाँव का कोई सम्पन्न व्यक्ति या मंदिर प्रदान करता है। कन्या का दुल्हन की तरह श्रृंगार किया जाता है और गाँव के ग्राम, मुखिया, जमींदार और पुजारी आदि की उपस्थिति में उसका विवाह देवी के साथ सम्पन्न कराया जाता है। विवाह के पश्चात् परिवार के लोग लड़की को मंदिर को सौंपकर चले जाते हैं। उसके पश्चात् लड़की का भोग उस मंदिर के पुजारी या उस व्यक्ति के द्वारा किया जाता है जो उसके विवाह का खर्च वहन करता है। कभी–कभी तो अन्य व्यक्तियों को जो इनके ऊपर पैसे खर्च कर सकते हैं उनको भी देवदासियों के भोग का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है। देवदासियों के उपभोग से जो धन की प्राप्ति होती है उसको पुजारी अपने पास रखता है न कि देवदासियों को दिया जाता है। यहाँ तक कि जब मंदिर द्वारा उनका भरण–पोषण असंभव हो जाता है तब उन्हें वेश्यालयों में बेच दिया जाता है।[88] इस कारण उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय है। 'बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर' जी ने देवदासी प्रथा के सुधार हेतु 16 जून 1936 को मुम्बई में देवदासियों के जलसे को संबोधित किया। साथ ही देवदासियों से इस अनैतिक जीवन शैली को छोडने का आह्वान किया।[89] सरकार द्वारा अनेक कानून बनाए जाने के बावजूद आज भी इस प्रथा के अंश भारत के कुछ क्षेत्रों में विद्यमान हैं। उत्तर भारत में

भी 'वाराणसी', 'छत्तीसगढ़' एवं 'जयपुर' में देवदासी प्रथा के प्रमाण मिलता है जिसके अनुसार ये स्त्रियाँ मन्दिर के व्यवस्थापकों द्वारा मुहैया किये गए आवासों में रहती थीं और धार्मिक आयोजनों एवं उत्सवों में अपनी सेवाएँ प्रदान करती थीं। यह प्रथा सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि 'मिश्र', 'बेबीलोन', 'यूनान', 'रोम' तथा 'सीरिया' में देवदासी के समान प्रथाएँ देखने को मिलती हैं। 'यूनान', 'मिस्त्र', 'पश्चिमी अफ्रीका' एवं 'बेबीलोनिया' में मंदिरों में स्त्रियाँ कई तरह के कार्य किया करती थीं। इन स्त्रियों के बीच विद्यमान पदानुक्रमता से यह स्पष्ट होता है कि अर्पण की रीति ने संस्था का रूप ले लिया था। बेबीलोन का मिलिटा मंदिर इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। यह मंदिर वेश्याओं के बाजार के रूप में प्रसिद्ध है। इस देवी के सन्दर्भ में यह धारणा थी कि मंदिर में आने वाला कोई भी पुरूष जिस लड़की को उसका शरीर उपभोग के लिए माँगेगा उसके साथ उस लड़की को यौन संबंध स्थापित करने पड़ते थे। यह देवी की आज्ञा मानी जाती थी। इसके बदले में पुरूष से लड़की को जो पैसे मिलते थे वे मन्दिर के कोप में डाले जाते थे।[90]

धर्म संबंधी मामलों में लोग कुछ भी कहने से कतराते हैं। इस कारण इन प्रथाओं के गलत एवं अमानवीय होने के बावजूद इसके खिलाफ कड़े कदम नहीं उठाए गए। यह हमारे लिए अत्यन्त शर्म की बात है जहाँ किसी स्त्री से धर्म एवं भगवान के नाम पर यौन संबंध स्थापित किए जाते हैं या उन्हें मजबूर किया जाता है।

''प्रायः यह देखा जाता है कि ये पवित्रपूत कहलाने वाले देवस्थल ही भ्रष्टाचार के अड्डे होते हैं और इन मन्दिरों के पुजारी व्यभिचारियों के सिरताज। बात भी सत्य है मनुष्य को लोक लज्जा और भय की आशंका नहीं रहती, तभी वह निशंक होकर मनमाना आचरण कर सकता है। फिर इन पाखंडियों के सिर पर रहने वाली धर्म की छाया तो उन्हें मनमाने आचरण करने में सहायक होती है।''[91]

आगे चलकर बारहवीं शताब्दी में मुगलों के आक्रमण के फलस्वरूप वेश्यावृत्ति का विकास हुआ। भारत में प्रवेश के समय ये अकेले थे और अपनी कामवासना की पूर्ति के

लिए इन्होंने पराजित राजाओं की स्त्रियों को अपनी यौन इच्छाओं की तृप्ति हेतु शिकार बनाया। इसके साथ–साथ इन्होंने अपने महल में हरम भी बनवाए थे जिसमें सुन्दर स्त्रियाँ राजा का मन बहलाने के लिए रखी जाती थी। जब हरम से इन्हें निकाल दिया जाता था तब ये वेश्यावृत्ति को अपना लेती थी। 'मिनहाज–उस–सिराज' की 'तबकात–ए–नासिरी' में सुल्तान 'कैकूबाद' की और 'मौलाना जियाउद्दीन बर्नी' की 'तारीख–ए–फिरोजशाही' में 'अलाउद्दीन खिलजी' एवं 'मुबारक शाह खिलजी' की समलैंगिक रंगरेलियों के प्रमाण मिलते हैं। मुगल काल में आकर वेश्याओं के लिए तवायफ और रंडी जैसे शब्द प्रयुक्त होने लगे थे। इसके अतिरिक्त कोठा, चकला एवं परी बाजार जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा था।[92] बादशाह अकबर नृत्य एवं संगीत के प्रमुख संरक्षकों में से एक थे। आगे चलकर मुगल सम्राट 'शाहजहाँ' के काल में 'गुलारा' नाम की वेश्या अत्यन्त प्रसिद्ध थी। 'शाहजहाँ' की 'गुलारा' से भेंट 'बुरहानपुर' नामक स्थान पर हुई थी। वह 'गुलारा' से अत्यन्त प्रभावित था। इस कारण उसने 'करारा' नामक गांव का नाम तवायफ 'गुलारा' के नाम पर 'महलगुलारा' रखा था।[93] शाहजहाँ के समान ही 'औरंगजेब' के 'हीराबाई' नामक तवायफ से संबंधों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है जिसे 'औरंगजेब' ने 'बेगम जैनाबादी' का खिताब प्रदान किया था।[94] आगे चलकर मुगल सम्राट 'मुहम्मद शाह रंगीले' ने मुगल शासन की बागडोर 'लालबाई' नामक तवायफ को सौंप दी थी। मुगल दरबारों के साथ–साथ अमीरों के घर पर भी महफिलें सजाई जाती थी। इस काल में आकर राजा एवं अमीरों के साथ वेश्याओं के संबंधों में अंतर भी आने लगा। कुछ प्रणय कथा इनमें काफी सफल भी हुई। 'पेशवा बाजीराव' एवं 'मस्तानी' की प्रणयकथा इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'मस्तानी' के विरह में 'पेशवा बाजीराव' ने अपने प्राण त्याग दिए थे।[95] पेशवाओं के अतिरिक्त 'होल्कर', 'सिंधिया' और 'गायकवाड़ों' ने वेश्यावृत्ति को बढ़ावा दिया। आगे चलकर नावबों के काल में भी वेश्यावृत्ति बनी रही। 'अवध' के नवाब 'वाजिद अली शाह' ने वेश्याओं को विशेष रूप से आश्रय दिया। उनके काल को 'वेश्याओं का स्वर्ण युग' कहा जाता है। बंगाल के 'नवाब मीरजाफर' के 'मुन्नीजान' नामक वेश्या के साथ संबंधों का विवरण प्राप्त होता है।

जिसके साथ आगे चलकर 'मीरजाफर' ने विवाह भी किया था। उसका प्रभाव अंग्रेजों पर भी व्यापक रूप में रहा। उसकी मृत्यु के पर 'ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स' में उसे श्रद्धांजलि भी दी गई थी।[96] आगे चलकर अंग्रेजों ने भी वेश्याओं को प्रश्रय दिया जिसके कारण 'कलकत्ता' में 'सोनागाछी', 'बम्बई' में 'कामाठीपुरा' जैसे रेड लाइट एरिया का विकास हुआ। यह रेड लाइट एरिया आज भी बहुत प्रसिद्ध हैं। अधिकतर विदेशी व्यापारी भारत में बिना परिवार के आए थे। इस कारण अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति हेतु उन्होंने हिन्दुस्तानी स्त्रियों को अपना निशाना बनाया और अपनी रखैल के रूप में उनका उपभोग किया। इस कारण आगे चलकर यह व्यवसाय बंदरगाहों से होता हुआ प्रमुख शहरों में अपनी जड़े जमाने लगा। जिससे इस पेशे में स्त्रियों की मांग लगातार बढ़ने लगी और अनेक चकलाघर भी खुलने लगे। अनेक ब्रिटिश गवर्नर जनरल जैसे 'राबर्ट क्लाइव', 'वारेन हेस्टिंग्ज', और 'वाटसन' आदि तवायफों को अपने आवास पर आमंत्रित करते थे।[97]

वर्तमान में पाकिस्तान के लहौर में स्थित 'अनारकली बाजार' अंग्रजों के द्वारा ही बसाया गया था। आगे चलकर 19वीं सदी के शुरूआत में वेश्यावृत्ति को संस्थागत करने का भी प्रयास किया गया। इस समय वेश्यावृत्ति कानूनी रूप से वैध थी। इस कारण तवायफों को सरकार के पास रजिस्ट्रेशन कराना अनिवार्य कर दिया गया और सोलह साल से कम उम्र की लड़कियों, विवाहित एवं गर्भवती स्त्रियाँ जो कि तलाकशुदा नहीं थी, उनका रजिस्ट्रेशन नहीं किया जाता था। इसके अतिरिक्त समय–समय पर उनका चिकित्सकीय परीक्षण भी किया जाता था और दवाएँ भी उपलब्ध कराई जाती थीं। अंग्रेजों के काल में सरकारी जनगणना के अन्तर्गत वेश्याओं को भी स्थान प्रदान किया गया। 1921 की जनगणना के अनुसार तवायफों की संख्या उस समय 10,814 थीं जिनका स्थान घरों में काम करने वाली घरेलू नौकरानियों के बाद दूसरे स्थान पर था।[98]

19वीं सदी में आकर 'महात्मा गांधी' ने भी वेश्यावृत्ति के विरूद्ध आवाज उठाई थी और उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाते हुए स्वयं उनसे आत्मसुधार की मांग की थी। गांधी जी की प्रेरणा से काशी में एक 'तवायफ समाज' की स्थापना भी की गई थी

जिसकी प्रतिष्ठित गायिका 'हुस्नाबाई' को चुना गया था। गांधी जी ने उनके पेशे का विरोध करने के बजाय उन्हें स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने तथा गायन के द्वारा आन्दोलन के प्रचार कार्य की जिम्मेदारी भी प्रदान की।[99]

इस प्रकार इतिहास के हर पन्नों में वेश्यावृत्ति एवं उसके अलग–अलग स्वरूप देखने को मिलते हैं। कुछ वेश्याएँ एवं वेश्यावृत्ति की कहानियाँ ऐसी हैं जो इतिहास में दर्ज नहीं हैं बल्कि इनका एक अलग इतिहास है। यह इतिहास जरायमपेशा, पेरना, कबूतरा, बेड़िया, बांछड़ा आदि उन जातियों का है जो सिर्फ देह व्यवसाय के लिए ही जानी जाती हैं। इन जातियों की लड़कियाँ इस व्यवसाय को सहर्ष स्वीकार करती हैं। इन जातियों में वेश्यावृत्ति विरासत के रूप में अपने आगे की पीढ़ियों को मिलती हैं और यहाँ तक कि कन्या के जन्म को जश्न के रूप में मनाया जाता है। इनमें मध्य प्रदेश के छतरपुर, दमोह, सागर तथा पन्ना में पाई जाने वाली चंदा बेड़िनी की कथा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त कंजर एवं मिरासी जनजाति समूह भी वेश्यावृत्ति में सदियों से लगा रहा है। यद्यपि अब धीरे–धीरे शिक्षा के विस्तार के साथ–साथ इस जनजाति के लोग अब शिक्षा में रूचि ले रहे है और अपने बच्चों को इस पेशे में ढकेलकर उन्हें शिक्षित करने पर अधिक बल दे रह हैं लेकिन भारतीय समाज में यह अभी भी विद्यमान हैं।

चाहे वह देवदासी हो या राजनर्तकी या नगरवधू या तवायफ प्रत्येक ने शास्त्रीय गायन से संबंधित राग–रागिनियों एवं नृत्यकला को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया है। इसके साथ कविता, कजरी, शेरो–शायरी एवं लोकगीतों को भी नवोन्मेष प्रदान किया है। यहाँ तक कि अनेक तवायफें कवियों एवं लेखकों की प्रेरणा भी बनी जिसके फलरूवरूप अनेक उत्कृष्ट रचनाएँ संभव हो सकी। इस प्रकार प्राचीन काल की गणिकाओं एवं तवायफों ने समाज को बहुत कुछ प्रदान किया किन्तु वर्तमान समय में बदली हुई परिस्थितियों ने वेश्या एवं वेश्यावृत्ति के स्वरूप को अत्यधिक प्रभावित किया है। आज की वेश्याएँ मुजरा एवं शास्त्रीय नृत्य की जगह बॉलीवुड गानों पर ठुमका लगाती हुई हमारे समक्ष आती हैं जिन्हें बार बाला के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त आज वेश्याओं की कला

नहीं अपितु देह महत्वपूर्ण हो गई है जो अत्यन्त निम्न दाम पर कहीं भी उपलब्ध हो जाती हैं। अंततः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक वेश्याओं की उपस्थिति समाज में पाई गई है किन्तु प्राचीन काल में जहाँ इन वेश्याओं ने समाज को एक अलग कला एवं संस्कृति से युक्त किया वहीं आज वह सिर्फ वासनापूर्ति का यंत्र मात्र बनकर रह गई है। समय की माँग के अनुसार वेश्याओं ने अपना पुराना प्रतिष्ठित रूप त्यागकर केवल अपनी देह को वासना के बाजार में विक्रय की वस्तु के रूप में उपलब्ध करा दिया है जो किसी भी देश तथा समाज के लिए अत्यन्त भयावह है।

## (घ) वेश्याओं के प्रकार–

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक वेश्याओं के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं। पहले की तुलना में आज वेश्याओं के स्वरूप एवं दशा में काफी अन्तर आ गया है। यह स्वरूप इतना परिवर्तित हो चुका है कि अब वे सरकार से स्वयं को सेक्स वर्कर्स घोषित किए जाने की मांग कर रही हैं। आज वेश्याएँ केवल वेश्यालयों तक सीमित न रहकर घर, ब्यूटी पार्लर एवं होटलों तक पहुँच गई है। बढ़ती जनसंख्या एवं समय के अनुसार इनके स्वरूप में बहुत अन्तर आ चुका है। प्राचीन काल में वेश्याओं को रूपजीवा, विषकन्या गणिका एवं वेश्या आदि में वर्गीकृत किया गया है। सामान्यतः यह एक दूसरे के समानार्थी प्रतीत होते हैं किन्तु सभी में कुछ न कुछ भेद अवश्य हैं। प्राचीन काल में गणिका से अभिप्राय सामान्यतः नर्तकी के अर्थ में लिया जाता था जो चौसठ कलाओं से सम्पन्न होती थी। जबकि रूपजीवा एवं वेश्या की स्थिति इनसे भिन्न थी। रूपजीवा अपने रूप एवं वेश्या अपना शरीर बेचकर धन कमाती थी। रूपजीवा का प्रयोग युद्ध एवं सैनिकों की काम इच्छाओं की पूर्ति में किया जाता था। भारतीय समाज में वेश्याओं के कई प्रकार देखने को मिलते हैं जिसका वर्णन इस प्रकार है–

## 1.1 धार्मिक वेश्या–

धार्मिक वेश्याओं के अन्तर्गत देवदासियों को रखा जाता है। इस प्रकार की वेश्याओं को धर्म के नाम पर माता पिता द्वारा मंदिर में देवता की सेवा के लिए अर्पित कर दिया जाता था। जहाँ मंदिर के देवताओं द्वारा अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति इन देवदासियों के माध्यम से की जाती थी। विविध राज्यों में इनके अलग अलग नाम मिलते हैं। 'केरल' में इनके लिए 'देवदासी' या 'देवर तिलय' और 'कैदीकर', 'महाराष्ट्र' में 'मुरळी', 'तेलंगाना' में 'बासवी', 'भाविन', 'देवली' और 'नैकिन' और 'कर्नाटक' में 'जोगाती' आदि शब्द प्रचलित हैं।[100] धार्मिक मान्यता के चलते इन लड़कियों को वेश्या बनने के लिए मजबूर किया जाता है और धार्मिक मान्यता प्राप्त होने के कारण इसे हमेशा बढ़ावा दिया गया। देवदासी प्रथा के समान ही मारवाड़ में वेश्याओं का एक अन्य वर्ग मिलता है जिसे भक्तिन कहा जाता है। वेश्या बनने से पूर्व इनका झूठमूठ का या नाममात्र का विवाह होता है और बाद में साधु एवं महन्त के द्वारा इनसे अनैतिक संबंध बनाए जाते हैं और धार्मिक वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर किया जाता है।[101]

## 1.2 सामान्य वेश्याएँ–

सामान्य वेश्याओं के अन्तर्गत उन वेश्याओं को रखा जाता है जिनकी आयु चौदह से बीस वर्ष की होती है और दलालों के द्वारा इनसे वेश्यावृत्ति कराई जाती है। वेश्यालयों में रहते हुए इनसे वेश्यावृत्ति कराई जाती है और इनके द्वारा की जाने वाली कमाई को या तो दलाल ले लेते हैं या वेश्यालयों को चलाने वाली वेश्या। अपना शारीरिक और मानसिक शोषण के बावजूद इन्हें सिर्फ खाने, पहनने और रहने की सिर्फ जगह दी जाती हैं। इस प्रकार की वेश्याओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है क्योंकि ये ऐसी वेश्याएँ होती है जो जबरन वेश्यावृत्ति में ढकेल दी जाती हैं। इन वेश्याओं को सिर्फ देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी भेजा जाता है। इस कारण मानव तरस्करी लगातार बढ़ रही है। तरस्करी की गई या अपहृत करके लाई गई लड़कियों का प्रयोग

दलाल सिर्फ धन कमाने के उद्देश्य से करते हैं। इन बच्चियों की खरीदफरोख्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होती है। 'शिवनारायण टण्डन' ने अपनी पुस्तक 'स्त्रियों और बच्चियों का व्यापार' में एक वेश्या के वक्तव्य को बताते हुए उनकी दयनीय दशा पर प्रकाश डाला है–

''मैं पहले पेरिस में थी। मेरी मालकिन के आफिस कई जगह हैं। वे तीन चार महीने के बाद हम लोगों का तबादला किसी नई जगह को कर देती हैं। क्योंकि ग्राहक नई चीज माँगने आते हैं और नई चीज के लिए अच्छे पैसे देते हैं। जो चीज पेरिस के लिए पुरानी है, वह ट्यूनिश के लिए नई है और जो चीज ट्यूनिश के लिए पुरानी हो चुकी वह पेरिस के लिए नवीन है। इस तरह हमारी अदला बदली होती है।''[102]

इस प्रकार वेश्यालयों में आकर स्त्री मात्र एक वस्तु बनकर रह जाती है जिसका प्रयोग सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए किया जाता है। कितनी शर्मनाक स्थिति है यह एक सभ्य समाज के लिए जिसके लिए स्त्री सिर्फ एक उपभोग की वस्तु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हर जगह एवं हर वेश्यालयों में वेश्याओं की स्थिति लगभग ऐसी ही है। यहाँ तक कि उन्हें एक एक दिन में तीस या चालीस ग्राहकों को संतुष्ट करना पड़ता है। बावजूद इसके समाज में इनका कोई महत्व नहीं होता।

सामान्य वेश्याओं का एक रूप बार बाला के रूप में हमारे सामने आता है जो पूर्णरूप से देह व्यापार में लिप्त नहीं होती लेकिन बार या बड़े–बड़े होटलों में नृत्य करके अपना जीवन व्यतीत करती हैं। प्राचीन काल की गणिकाओं के समान इनको समाज में आदर नहीं प्राप्त हैं और न ही इनका जीवन ऐश्वर्य से युक्त है। 2005 से बार डांसर पर पूर्णतया प्रतिबंध लगा दिया गया था लेकिन अभी न्यायालय द्वारा पुनः इस पर प्रतिबंध हटा लिया गया है।

## 1.3 स्वतन्त्र वेश्या–

वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति के स्वरूप में परिवर्तन आया है। आज वेश्याएँ सिर्फ चकलाघरों, रेड लाइट, रेलवे या बस स्टेशनों तक सीमित नहीं है।

आज वे मसाज पार्लर, ब्यूटी पार्लर एवं होटलों आदि तक पहुँच गई हैं। आज वे सामान्य वेश्या की जगह कॉल गर्ल एवं एस्कार्ट के रूप में हमारे सामने आ रही हैं। ये वेश्याएँ ऐसी हैं जो चकलाघरों या घरों के बाहर अपने ग्राहकों का इंतजार करने के बजाय फोन द्वारा या किसी अन्य माध्यम से ग्राहकों द्वारा होटलों या अन्य जगहों पर चुपचाप बुलाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त कहीं–कहीं इस तरह के वेश्याओं की आपूर्ति एजेंसियों द्वारा भी होती हैं। जैसा कि–

''आज ये धंधा पूरी तरह बदल गया है। देह के कारोबार में अब ठेकेदारों की पहचान बदल गई है। वे हाई प्रोफाइल हो गए हैं, सेक्स कारोबारी बन गए हैं। ये सुसज्जित कार्यालयों में बैठते हैं और इनकी रिशेप्सनिस्ट ई–मेल और मोबाइल पर ही ग्राहक की डिलीवरी का स्थान बता दिया जाता है और फिर निश्चित स्थान पर पूरी रकम एडवांस लेने के बाद कॉलगर्ल की डिलीवरी कर दी जाती है। जिस तरह व्यापारी अपने व्यापार में माल की क्वालिटी, ग्राहकों की पसंद, दुकान की ख्याति, स्टेंडर्ड आदि का ध्यान रखता है, उसी तरह सेक्स के ये ठेकेदार भी अपने व्यापार को लेकर बहुत सजग हैं।''[103]

सामान्य वेश्या की अपेक्षा ये अपने ग्राहकों से मोटी रकम वसूल करती हैं। स्वतंत्र रूप से वेश्यावृत्ति अपनाने वाली कुछ ही स्त्रियाँ इस व्यापार को अपनाती हैं जबकि कॉल गर्ल या एस्कॉर्ट के अन्तर्गत ऐसी वेश्याएँ आती है जो या तो जल्द से जल्द धन कमाना चाहती हैं या अपने विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। सर्वे या अन्य प्रमाणों के आधार पर यह भी पता चला है कि कॉल गर्ल या एस्कॉर्ट पढ़े लिखे या अच्छे घरों से होती हैं और यह चुपचाप इस व्यवसाय को करती हैं। बंगाल में स्वतन्त्र वेश्याओं के अन्तर्गत कुछ वेश्याएँ ऐसी होती हैं जो गरीबी के कारण वेश्यावृत्ति को स्वीकार करती हैं।

ये या तो अशिक्षित होती हैं या कम पढ़ी लिखी। इसी कारण यह अन्य व्यवसाय को अपना नहीं सकती और वेश्यावृत्ति को अपना पेशा बना लेती हैं। यहाँ तक की इनके पति की भी सहमति इसमें होती है। सबसे ज्यादा खराब स्थिति इन्हीं वेश्याओं की हाती हैं क्योंकि ये अपनी खराब स्थिति के कारण कम पैसे में भी अपना शरीर बेचने के लिए तैयार हो जाती हैं।

## 1.4 वंशानुगत वेश्या–

कुछ वेश्या ऐसी होती है जो किसी शौक या आर्थिक कारण से वेश्यावृत्ति नहीं अपनाती बल्कि यह उनके लिए वंशानुगत व्यवसाय होता है। ये वेशानुगत रूप में इस पेशा को अपनाए रहती हैं। जैसा कि–

''अपने वंश का व्यवसाय चलाने वाली ये स्त्रियाँ अपनी परम्पराओं को चलाती हैं। घर में माँ का वेश्यावृत्ति होने के कारण लड़कियों का व्यवसाय अन्य होगा यह सम्भव नहीं है। उसमें परम्परागत व्यवसाय न करने का निर्णय कर भी लिया तो भी समाज उसका जीवन असह्य बना देता है यह याद रखना आवश्यक है।''[104]

कुछ वेश्याएँ बचपन से अपनी लड़कियों को वेश्यावृत्ति के लिए तैयार करती हैं। साथ ही उन्हें बचपन से नृत्य संगीत की शिक्षा दी जाती थी। इन वेश्याओं में तमाशा और मुजरा करने वाली वेश्याएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्राचीन काल में भी गणिकावृत्ति अपनाने वाली स्त्रियों के दो प्रकार देखने को मिलते हैं। प्रथम प्रकार के अन्तर्गत वह स्त्रियाँ आती हैं जो गणिका वंश में उत्पन्न होने के कारण गणिका वृत्ति को अपनाती थी। जबकि दूसरे प्रकार के अन्तर्गत वह स्त्रियाँ आती थी जो किसी कारणवश इस व्यवसाय को अपनाती थी।

## 1.5 परंपरागत वेश्या–

वेश्याओं में कुछ ऐसी वेश्याओं का समूह मिलता है जो परंपरागत रूप से पाई जाती हैं। इस प्रकार की वेश्याएँ कलावन्ती प्रथा तथा नित्यमंगली प्रथा के द्वारा तैयार की जाती हैं।[105] इसके अन्तर्गत विशेष पर्व या त्योहारों पर नृत्य के लिए इनको बुलाया जाता हैं। साथ ही राजकुमारों को प्रसन्न करने के लिए इनका प्रयोग होता था। आज यद्यपि राजा महाराजा मौजूद नहीं है किन्तु इन वेश्याओं के वंशज आज भी विद्यमान हैं। इस संबंध में 'सामाजिक और नैतिक समिति' ने लिखा है कि–

''कथित धार्मिक आश्रय, पण्डों और महन्तों के केन्द्र अनैतिक व्यापार–उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त होते हैं; धर्म की आड़ में अर्पित औरतों का शोषण किया जाता है और आश्रम के साधु तथा आगन्तुक दोनों इसका लाभ उठाते हैं।''[106]

इसके अतिरिक्त परंपरागत वेश्याओं के अन्तर्गत ऐसी वेश्याओं को भी रखा जा सकता है जो किसी जाति विशेष से आती हैं। इस तरह की वेश्याएँ बेड़िनी, कंजर, नर, बांछड़ा एवं सासीज आदि जातियों से आती हैं।

## (ड.) वेश्यावृत्ति के कुप्रभाव–

आज वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता देने की बात की जा रही है और सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस विषय पर विचार भी किया जा रहा है। किन्तु इसको कानूनी मान्यता प्रदान करने से पहले इस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है कि वेश्यावृत्ति के सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन पर क्या कुप्रभाव पड़ता है। यह समस्या सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में मौजूद है। यद्यपि यह सत्य है कि वेश्यावृत्ति प्राचीन काल से चली आ रही है। किन्तु प्राचीन की तुलना में आज वेश्यावृत्ति का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। प्राचीन काल में यह नृत्य कला में प्रवीण होती थी और इनका प्रयोग गुप्तचर के रूप में भी किया जाता था। किन्तु वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति सिर्फ देह व्यवसाय तक

सीमित रह गई हैं। इसके अतिरिक्त वेश्याओं द्वारा बार या होटल में जो नृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं वह अत्यन्त अश्लील होते हैं। अतः वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता देने से पहले इससे पड़ने वाले कुप्रभावों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है–

वेश्यावृत्ति का कुप्रभाव सर्वप्रथम स्वास्थ्य पर पड़ता है। असुरक्षित यौन संबंधों के कारण अनेक प्रकार के रोग होने की संभावना होती हैं जिनमें एड्स, इनोरकिया, सिफलिस आदि बीमारिया सर्वप्रमुख हैं। इन बीमारियों से वेश्या एवं उनके सम्पर्क में आने वाले ग्राहक दोनों प्रभावित होते हैं। इनके साथ–साथ ग्राहकों की पत्नियाँ एवं इनके बच्चे भी इस रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में 'इलियट और मेरिल' ने अपनी पुस्तक '*Social Disorganization'* में कहा है कि–

''ये यौन बीमारियाँ उपदंश, रजित प्रणाभ तथा सुजाक बहुत ही अधिक सामाजिक महत्व के हैं क्योंकि ये न केवल समाज में बड़े पैमाने पर महामारी तथा घातक बीमारी फैलाती हैं वरन् ये बहुत सी राजनीतिक समस्याओं की जनक भी हैं। इस प्रकार की बीमारियाँ पागलपन, अन्धेपन और पोलियो जैसे भयानक रोगों की जननी होती हैं। जिन लोगों को ये बीमारियाँ होती हैं वे और उनकी संतानें बहुत ही घातक अपराध कराने में भी नहीं हिचकते। उपदंश से पीड़ित लोगों के बच्चे अधिकांशतः अंधे होते हैं। जनेन्द्रियों की ये बीमारियाँ पश्चिमी देशों में जनस्वास्थ्य के लिए बहुत बड़ी समस्या बन रही हैं।''[107]

यौन संसर्गो के कारण होने वाली बीमारियों में एड्स ऐसी बीमारी है जो व्यक्ति को सबसे ज्यादा प्रभावित करती है। इस रोग के विषाणु यौन संसर्गो के माध्यम से एक से दूसरे में फैलते हैं। इस रोग के कारण आने वाली पीढ़ी भी प्रभावित होती है। इस प्रकार वेश्यावृत्ति के कारण व्यक्ति को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। 'इलियट एवं मेरिल' के अनुसार–

''वेश्यावृत्ति का पूरा फल उन लेगों को नहीं मिलता है जो वास्तव में वेश्यावृत्ति अथवा वेश्यागमन करते हैं। इसका आधा नतीजा तो उन लोगों को नहीं मिलता है जिनको इससे सम्बन्धित कोई रोग हो जाता है और आधा परिणाम वे निर्दोष उठाते हैं जिनका

वेश्याओं से सीधा कोई संबंध नहीं होता। ये व्यक्ति होते हैं पति अथवा पत्नी और बच्चे जिन पर उन बीमारियों का बड़ा भयानक प्रभाव पड़ता है।''[108]

स्वास्थ्य के पश्चात् वेश्यावृत्ति का सबसे ज्यादा प्रभाव पारिवारिक जीवन पर पड़ता है। वेश्यावृत्ति अपनाने के पश्चात् वेश्याओं का अपना कोई पारिवारिक जीवन शेष नहीं रह जाता। क्योंकि कोई भी सभ्य पुरूष वेश्या को अपनी पत्नी नहीं बनाना चाहता है। इसके अतिरिक्त जो पुरूष वेश्यागामी हो जाता है उसके भी अपनी स्त्री के साथ संबंध खराब हो जाते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति के साथ स्त्री रहना नहीं पसंद करती है जिससे तलाक की भी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जिसका बुरा प्रभाव उनके बच्चों व उनके भविष्य पर पड़ता है। साथ ही आगे चलकर उनके बच्चे भी अपने माता–पिता का अनुसरण कर वेश्यागामी हो सकते हैं या देह व्यवसाय में लिप्त हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक दबाव के कारण वे कुंठा के शिकार भी हो जाते हैं।

वेश्यावृत्ति के कारण पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन ही प्रभावित नहीं होता है बल्कि इससे अपराधों की संख्या में भी वृद्धि होती है। वेश्यावृत्ति के कारण मानव तस्करी अत्यन्त तेजी से बढ़ रही है। तस्कर धन कमाने के उद्देश्य से छोटी बच्चियों को अपना निशाना बनाते हैं। बच्चियों का अपहरण कर उन्हें सिर्फ अपने देश में ही नहीं बल्कि देश के बाहर भी बेचा जाता है। तस्करों में बारह से अट्ठारह वर्ष तक की लड़कियों में अधिक होती है। इसके साथ वेश्यालयों का विषाक्त वातावरण भी अपराध को जन्म देने का महत्वपूर्ण कारक है। कई बार भी देखने में आता है कि पैसा कमाने के उद्देश्य से कई दलाल एक–एक दिन में वेश्याओं से तीस चालीस ग्राहकों को संतुष्ट करने के लिए कहत हैं। अगर वेश्या ऐसा करने से मना कर देती है तो उससे मार–पीट की जाती है और यहाँ तक कि उसकी हत्या भी कर दी जाती है।

वेश्यावृत्ति के कारण वेश्यागामी पुरूष आर्थिक रूप से तंगी का शिकार हो जाता है। अधिकतर वेश्याएँ धन कमाने के उद्देश्य से वेश्यावृत्ति को अपनाती हैं। लेकिन वेश्यावृत्ति के कारण जहाँ एक ओर यह आमदनी करती हैं, वहीं दूसरी ओर वेश्यागमन

करने वाला पुरूष यदि आर्थिक रूप से कमजोर है तो वह और गरीब होता चला जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आजकल निम्न दर पर वेश्याएँ अपना शरीर बेचने के लिए मजबूर हैं और इन वेश्याओं के ग्राहक भी अत्यन्त निम्न वर्ग के होते हैं। ऐसे पुरूष अपनी सारी कमाई इन वेश्याओं के ऊपर खर्च कर देते हैं। जिससे इनके पास खाने एवं घर चलाने के पैसे नहीं बचते हैं क्योंकि इनकी स्वयं की दिनभर की कमाई पचास रू0 से कम ही होती है। इसके कारण यह गरीबी के दलदल में स्वयं भी फँसे रहते हैं। साथ ही इनका परिवार भी आर्थिक संकट से जूझने के लिए मजबूर होता है।

आज भले ही वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता प्रदान करने की बात की जा रही हो लेकिन इसके कुप्रभावों को देखते हुए इस पर और विचार किए जाने की आवश्यकता है। इसके कारण जहाँ पारिवारिक विघटन में वृद्धि होगी वहीं दूसरी ओर अपराध व कम उम्र की लड़कियों की तरस्करी में भी वृद्धि होगी। जो किसी भी सभ्य समाज के लिए अत्यन्त घातक है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वेश्यावृत्ति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक भारत एवं अन्य देशों में विद्यमान है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची–


1. कालिका प्रसाद, वृहत हिन्दी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण, संवत् 2009, पृ0 1149।

2. सं0 डॉ0 देवी प्रसाद मिश्र, जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1988, पृ0 123।

3. वमन शिवराव आप्टे, संस्कृत हिन्दीकोश, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, 12वाँ संस्करण, दिल्ली, 2015 पृ0 33।

4. बलभद्र प्रसाद मिश्र, मानक अँग्रेजी हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1971 पृ0 1082।

5. डॉ0 सुधा काळदाते, भारतीय सामाजिक समस्या, पिंपळापुरे एण्ड कं0 पब्लिशर्स, नागपुर, द्वितीय आवृत्ति, जून 1991, पृ0 97।

6. विभूति नारायण राय, संपादक, पत्रिका–वर्तमान साहित्य, मार्च 2013, पृ0 14।

7. दृष्टव्य है, वही, पृ0 सं0 16।

8. दृष्टव्य है, वही, पृ0 सं0 16।

9. श्रीधर व्यंकटेश केतकर, महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश, महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश मंडल लिमिटेड नागपुर, 1926, पृ0 282।

10. हिन्दी शब्दसागर, भाग 3, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, पृ0 122।

11. डॉ0 सुधा काळदाते–मनोहर पिंपळापुरे, भारतीय सामाजिक समस्या, पिंपळापुरे एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स, नागपुर, दूसरी आवृत्ति, जून 1991, पृ0 97।

12. '*Suppression of immoral traffic in women and girl's act, 1956'* के अनुसार–

*"Prostitute means a female who offers her body for promiscuous sexual inter course for hire, whether in money or kind."*

दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 343।

13. G. R. Scott, A History of Prostitution, AMS Press, Newyork, sixth edition, 1976, page no. 8.

*"An individual (Male or Female) who for some kind of new and (monetary or otherwise) or for some other from of personal satisfaction and as a part of full time profession, engages in normal or abnormal sexual intercourse with various persons who may be of the same sex, or of the opposite sex, is a prostitute."*

14. Ellis Hovelock, Sex in Relation to Society, The Classics publication, United State, 2013, page no. 155.

*"Prostitute is one who openly abondens her body to a number of men without choice for money."*

15- William Adrian Bonger, Translated by Henry P Horton, Criminality And Economic Conditions, Kessinger Publishing, United State, 2010, page 152.

*"Those women are prostitutes who sell their bodies for exercise of sexual acts and make this a profession."*

16- According to 'Elexur'-

*"Prostitution is sexual intercourse characterized by barter, promiscuity and emotional indifference."*

दृष्टव्य है, डी0 एस0 बघेल, नगरीय समाजशास्त्र, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1980, पृ0 351।

17. Dr. B.R. Jayakar, social welfare in india.

*"Sexual union, for a consideration in cash or kind, with a women who is not one's wife, is the plain definition of prostitution."*

दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 344।

18. Marshall B. Clinard, Robert F. Meier, Sociology of Deviant Behaviour, Wadsworth Publishing, 13th Edition, 2010, page no. 40.

*"Prostitution is sexual intercourse on a promiscuous and mercenary basis, with emotional indifference."*

19. दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 344।
20. 'Elliot and Merril', 'Social Disorganization'

*"Prostitution is defined as an illicit sex-relation of a promiscuous and mercenary basis accompanying emotional indifference."*

दृष्टव्य है, डी0 एस0 बघेल, नागरीय समाजशास्त्र, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1980, पृ0 सं 349।

21. May, Geoffrey, 'Encyclopaedia of The Social Sciences'

*"Prostitution is the practice of habitual intermittent sexual union, more or less promiscuous for mercenary inducement."*
दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 343।

22. Promilla Kapur, The Life and World of Call Girl in India, Vikas Publishing House, Delhi, 1978, Page 17.

23. Faris, R.E.L., Social Disorganization.

*"Many writers on the subject of prostitution have assumed that economic need was the basic factor in women's bartering sex for a price."*

दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 352।

24. According to 'Londers'-

*"The foundation of prostitution is hunger."*

दृष्टव्य है, वही, पृ0 352।

25. Madras vigilance association, census of india, 1931-

*"The profession of prostitution is carried in most cases for sake of livelihood."*

दृष्टव्य है, वही, पृ0 352।

26. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 70।

27. अमृतलाल नागर, ये कोठेवालियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, इलाहाबाद, 2008, पृ0 सं0 26।

28. उत्तम कांबले, अनुवाद किशोर दिवसे, देवदासी, संवाद प्रकाशन, मुंबई, 2008, पृ0 सं0 5।

29. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 52।

30. वही, पृ0 सं0 52।

31. वही, पृ0 सं0 52।

32. दृष्टव्य है, डॉ0 सोती शिवेन्द्र चन्द्र, भारत में सामाजिक समस्याएँ, कनिष्का प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2002, पृ0 सं0 284।

33. डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 356।

34. वही, पृ0 सं0 354।

35. सरला मुद्गल, आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 सं0 179।

36. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 79।

37. G. R. Scott, The History of prostitution, AMS Press, Newyork, sixth edition, 1976, page 32.

*"In many cases, the mother is the prostitute herself, the father is a pimp and they send their daughter on the streets without the slightest compunction, often themselves intiating her is sexual intercourse."*

38. मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, 1986, पृ0 सं0 88–89।

39. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 29।

40. वही, पृ0 सं0 40।

41. वही, पृ0 सं0 150।

42. वही, पृ0 सं0 38।

43. According to 'Mohili'-

*"It is frequently maintained that no approach can be made to the subject of Prostitution of woman without the man who come forward as the customers."*

दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 359।

44. देवराज चानना, अनुवादक शंभुदत्त शर्मा, प्राचीन भारत में दास प्रथा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं0 1989, पृ0 सं0 309।

45. सरला मुद्गल, आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 सं0 17।

46. विभूति नारायण राय, संपादक, पत्रिका–वर्तमान साहित्य, मार्च 2013, पृ0 16।

47. वही, पृ0 सं 16।

48. वही, पृ0 सं0 16।

49..वही, पृ0 सं0 16।

50. वही, पृ0 सं0 16।

51. वही, पृ0 सं0 16।

52. वही, पृ0 सं0 16।

53. डॉ0 डी0 एस0 बघेल, नगरीय समाजशास्त्र, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1980, पृ0 379।

54. सरला मुद्गल, आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 सं0 286 ।

55. ई0 बी0 कावेल (अनुवादक), महावग्ग, 8'1'2, भाग1–6, क्रैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1907, पृ0 सं0 30 ।

56. वही, महावग्ग, 6'30'2, 6'30'5, पृ0 सं0 50।

57. सं0 डॉ0 देवी प्रसाद मिश्र, जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1988, पृ0 124।

58. ''सौभाग्यालंकारवृद्धया सहस्त्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वा रोपयेत्।''

अर्थशास्त्र, अधिकरण 2/वार्ता 27/अध्याय 27।

''रूपयौवनशिल्पसम्पन्नां सहस्त्रेण गणिकां कारयेत्। कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम्।''

अर्थशास्त्र, अधिकरण 2/वार्ता 1/अध्याय 27।

कौटिल्य, प्रो0 इन्द्र (रूपान्तरकार), राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ0 सं0 164।

59. *''Ganikas were segregated in the southern part of a town. A superintendent should be appointed to keep information about the health and percuniary conditions of Ganikas.''*

वही, अर्थशास्त्र 2, अध्याय 28, पृ0 सं0 169।

60. अकामायाः कुमार्या वा साहसे उत्तमोदण्डः। वार्ता 21 अध्याय 27 अधिकरण 2। वही, पृ0 सं0 178।

61. गणिकामकामां रून्धतो निष्पातयो वा व्रणबिदारणेन वा रूपमुघ्नतः सहस्त्र दण्डः। वार्ता 23, अ0 27 अधि 2, वही, पृ0 सं0 179।

62. स्थानविशेषेण वा दण्डवृद्धिरानिष्क्रयद्विगुणात्पणसहस्त्रं वा दण्डः। वार्ता 24 अ0 27 अधि 2 वही, पृ0 सं0 180।

63. प्राप्ताधिकारां गणिकां घातयतो निष्क्रियत्रिगुणोः दण्डः। वार्ता 25 अ0 27 अधि 2 वही, पृ0 सं0 171।

64. राजाज्ञया पुरूषमनभिगच्छन्ती गणिका शिफा सहस्त्रं लभेत। वार्ता 31 अ0 27 अधि 2

पंचसहस्त्र वा दण्डः। वार्ता 32 अ0 27 अधि 2, वही, पृ0 सं0 172। ।

65. भोगं गृहीत्वा द्विषत्या भोगद्विगुणो दण्डः। वार्ता 33 अ0 27 अधि 2 वही, पृ0 सं0 172।

66. वसतिभोगापहारे भोगमष्टगुणं दद्यादन्यत्र व्याधि पुरूषदोषेभ्यः। वार्ता 34 अ0 27 अधि 2 वही, पृ0 सं0 173।

67. *संज्ञा भाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु। चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहनाः*। श्लोक 43 अध्याय 27 अधिकरण 2, वही, पृ0 सं0 180।

68. दृष्टव्य है, विभूति नारायण राय, संपादक, पत्रिका–वर्तमान साहित्य, मार्च 2013, पृ0 15।

69. विजयनाथ, द पौराणिक वर्ल्ड, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ0 सं0 103।

70. *'गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोमेव वसन्तसेना'*

शूद्रक, डॉ0 विद्यानिवास शास्त्री (टीकाकार), मृच्छकटिकम्, साहित्य भण्डार, मेरठ, चतुर्थ संस्करण, 1980, पृ0 सं0 56।

71. वही, पृ0 सं0 62।

72. दृष्टव्य है, डॉ0 उदयनारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर–जीवन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1965, पृ0 359।

73. ''वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः।

फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता वर्हिणा।।

ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावातयेवेतरे।

त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज।।''

शूद्रक, डॉ0 विद्यानिवास शास्त्री (टीकाकार), मृच्छकटिकम्, साहित्य भण्डार, मेरठ, चतुर्थ संस्करण, 1980, पृ0 सं0 32।

74. ''गणिका.....शास्त्रप्रहितबुद्धयः।''

दृष्टव्य है, डॉ0 उदयनारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर–जीवन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1965, पृ0 359।

75. रमनलाल बसंत लाल देसाई, अप्सरा, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, सं0 1989, पृ0 653।

76. दृष्टव्य है, विजयनाथ, द पौराणिक वर्ल्ड, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ0 सं0 103।

77. दृष्टव्य है, वही, पृ0 सं0 103।

78. दृष्टव्य है, वही, पृ0 सं0 103।

79. दृष्टव्य है, वही, पृ0 सं0 103।

80. सरला मुद्गल, आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 सं0 21।

81. वही, पृ0 सं0 21।

82. *बासवी 'बासव' का स्त्रीलिंग है। बासव यानि बैल (साँड़)। हिन्दू मत में यह जनन क्षमता का सूचक है। बासवी शब्द का सबसे आरंभिक जिक्र नौंवी सदी के शिलालेख (अभिलेख) में मिलता है। प्राचीन काल में देवताओं को बैल अर्पित किए जाते थे। इसी तरह महिला (बसवी) भी देवी को अर्पित की जाने लगी।*

दृष्टव्य है, प्रियदर्शिनी विजयश्री, अनुवाद विजय कुमार झा, देवदासी या धार्मिक वेश्या, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 सं0 95।

83. *जोगती शब्द 'जोगी' का स्त्रीलिंग है, जिसकी व्युत्पत्ति 'योगी' से हुई है। योगी, जो सांसारिक बंधनों से मुक्त हो और जिसे सत्य का ज्ञान हो। योगिनी योगी का स्त्रीलिंग है। निजाम शासित क्षेत्र में ये जोगिनी नाम से लोकप्रिय थीं।*
वही, पृ0 सं0 95।

84. *सुले कन्नड़ शब्द है जिसका अर्थ वेश्या होता है। किन्तु इसकी उत्पत्ति संस्कृत पद सुला से हुई है जिसका प्रयोग वेश्या या रंडी के संदर्भ में किया गया है। आगे चलकर औपनिवेशक काल में इनके लिए देवदासी शब्द का प्रयोग होने लगा था।*

दृष्टव्य है, टी0 एन0 बरॉ और एम0 बी0 मेन्यू, ए द्राविड़ियन इटिमोलोजिकल डिक्शनरी, (ऑक्सफोर्ड, 1984), द्वितीय संस्करण, पृ0 247।

85. *सानी तेलुगू भाषा का शब्द है जिसका प्रयोग वेश्या के संदर्भ में होता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'स्वामिनी' से हुई है। जिसका अर्थ रूतबेदार स्त्री, दाई और नृत्यांगना के अर्थ में हुआ है। औपनिवेशिक काल में सानी का प्रयोग नृत्यांगना और रूतबेदार स्त्री के अर्थ में ही हुआ है।*

दृष्टव्य है, एम0 वेंकटरत्नम, डब्ल्यू एच0 कैम्पबेल और के0 विरसोलिंगम (सम्पादक), चार्ल्स फ्लीप ब्राउन्स तेलुगु इंग्लिश डिक्शनरी, एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, मद्रास, 1999, पृ0 1330।

86. उत्तम कांबले, अनुवाद किशोर दिवसे, देवदासी, संवाद प्रकाशन, मुंबई, 2008, पृ0 सं0 39।

87. वही, पृ0 सं0 41।

88. सरला मुद्गल, आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 सं0 204–205।

89. उत्तम कांबले, अनुवाद किशोर दिवसे, देवदासी, संवाद प्रकाशन, मुंबई, 2008, पृ0 सं0 60।

90. वही, पृ0 सं0 34।

91. श्रीमती शारदा अग्रवाल, द्विवेदीयुगीन हिन्दी उपन्यास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1967, पृ0 सं0 104।

92. सरला मुद्गल, आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 सं0 22।

93. वही, पृ0 सं0 22।

94. वही, पृ0 सं0 22।

95. वही, पृ0 सं0 22।

96. वही, पृ0 सं0 22।

97. वही, पृ0 सं0 22।

98. Promilla Kapur, The Life and World of Call Girl in India, Vikas Publishing House, Delhi, 1978, Page 7.

99. अमृतलाल नागर, ये कोठेवालियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, इलाहाबाद, 2008, पृ0 सं0 193।

100. डी0 एस0 बघेल, नागरीय समाजशास्त्र, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1980, पृ0 सं 349।

101. डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 367।

102. शिवनारायण टण्डन, स्त्रियों और बच्चियों का व्यापार, शारदा सदन, प्रयाग, 1934, पृ0 32।

103. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 45।

104. सुमन पाटे, सामाजिक समस्या, विद्या प्रकाशन, नागपुर, प्रथम आवृत्ति, 1991, पृ0 125।

105. डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 367।

106. *"Even some so-called religious Ashramas, Centres of Pandas and Mahantas are used for immoral traffic purposes; under the guise of religion. Women devotees are exploited and taken advantage of both by the Sadhus and by the Visitors of these Ashramas."* Report of Social and Moral Hygiene

दृष्टव्य है, वही, पृ0 सं0 367।

107. वही, पृ0 सं0 365।

108. वही, पृ0 सं0 364।

# हिन्दी उपन्यास एवं वेश्या जीवनः एक संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा का आगम विदेशी प्रभाव के रूप में देखा गया है। आरंभिक काल में उपन्यासकारों का रूझान तिलस्मी–ऐय्यारी, जासूसीपूर्ण एवं ऐतिहासिकता पर अधिक केन्द्रित था। परन्तु आगे चलकर धीरे–धीरे सामाजिक विषयों पर उपन्यासकारों ने ध्यान केन्द्रित करना शुरू किया। आरंभिक काल के दौरान स्त्री समस्या को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गए। इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि इस काल के लेखकों का प्रमुख बल पाठकों का मनोरंजन करना एवं नीतिगत उपदेश देना था। अतः इस काल में वेश्या जीवन की समस्या को लेकर कम ही उपन्यास लिखे गए। इसके अतिरिक्त जो भी उपन्यास लिखे गए हैं वह वेश्याओं को हेय दृष्टि से देखते हैं। उनके प्रति इन लेखकों का दृष्टिकोण बहुत सम्मानजनक नहीं रहा है। यद्यपि सामंत वर्ग में वेश्याओं का सम्मान था और उनके पास धन भी पर्याप्त मात्रा में था लेकिन समाज में उनको अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। उन्हें समाज में नारी जाति के कलंक एवं पुरूष विलास के साधन के रूप में देखा जाता था। किन्तु आगे चलकर प्रेमचन्द युग में उपन्यास के विषय में परिवर्तन आया और वह सीधे मानव जीवन से जुड़ गया। इस काल में प्रेमचन्दयुगीन लेखकों द्वारा वेश्या जीवन को ध्यान में रखकर जो उपन्यास लिखे गए, इससे उस काल के उपन्यासों में क्रान्तिकारी बदलाव आया। इसके अतिरिक्त उस युग में चल रही सामाजिक परिवर्तन की लहर ने भी इन उपन्यासकारों को प्रेरित किया। जैसा कि–

''इन धार्मिक संस्थाओं एवं सम्प्रदायों के सिद्धान्तों एवं विचारों का प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकारों पर व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, कौशिक, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेनशास्त्री, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', श्रीनाथ सिंह, प्रतापनारायण, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि उल्लेखनीय उपन्यासकारों की कृतियों में ब्रह्म समाज,

प्रार्थना समाज, आर्य समाज तथा थियोसोफिकल सोसाइटी आदि के विचारों की ही प्रभाव छाया विद्यमान है।''[1]

प्रेमचन्दयुगीन लेखकों ने प्रेम विवाह, विधवा विवाह, दहेज, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति आदि की समस्या को आधार बनाकर अनेक उपन्यास लिखे हैं। इस युग के लेखकों ने न केवल वेश्याओं की समस्या पर प्रकाश डाला है बल्कि उनके लिए समाधान भी प्रस्तुत किया है। आगे चलकर प्रेमचन्दोत्तर युग में बहुत से परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस युग में आकर देशभक्ति की भावना का विकास हुआ। साथ ही अनेक सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों ने लोगों में जागरूकता पैदा की जिससे इस युग में आकर वेश्या जीवन के प्रति अलग दृष्टिकोण देखने को मिलता है। इस काल में जहाँ लोग वेश्यावृत्ति का विरोध करने लगे थे वहीं दूसरी ओर वेश्यावृत्ति का स्वरूप भी परिवर्तित होने लगा था। इसके अतिरिक्त वेश्याओं को लेकर कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए हैं जिनमें वेश्याओं का एक अलग स्वरूप देखने को मिलता है। इस प्रकार अलग–अलग काल में वेश्या जीवन एवं उसके स्वरूप में बदलाव के साथ ही उनके प्रति लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन देखने को मिलता है। प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत आरंभिक काल के उपन्यासों से लेकर समकालीन उपन्यासों में वेश्या जीवन का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है–

## (क) प्रेमचन्दपूर्व हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त वेश्या जीवन–

प्रेमचन्दपूर्व हिन्दी उपन्यासों में जिन लेखकों ने वेश्यावृत्ति को आधार बनाया है उनमें 'किशोरी लाल गोस्वामी' का उपन्यास 'स्वर्गीय कुसुम' (1889), 'बाबू देवकीनन्दन खत्री' का 'काजर की कोठरी' (1902), 'पण्डित गिरिजानन्दन तिवारी' का 'विद्याधरी' (1904), 'पण्डित देवीदत्त द्विवेदी' का 'वेश्या चरित्र दर्पण' (1912), 'लज्जाराम शर्मा मेहता' का 'आदर्श हिन्दू' (1914–1915), 'चन्द्रशेखर पाठक' का 'वारांगना रहस्य' (1914–1922) आदि महत्वपूर्ण हिन्दी उपन्यास हैं जो वेश्या जीवन पर केन्द्रित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ

ऐसे उपन्यास भी देखने को मिलते हैं जिनमें थोड़ा बहुत वेश्या जीवन एवं उनकी समस्याओं पर प्रकाश पड़ता है। इन उपन्यासों में 'जयरामदास गुप्त' द्वारा रचित 'जहर का प्याला', 'लाल कृष्णलाल' का 'माधवी' एवं 'लज्जाराम शर्मा मेहता' का 'धूर्तरसिक काल' आदि प्रमुख हैं। हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन के अवलोकन हेतु उपन्यासों का कालक्रमानुसार अध्ययन किया जाएगा। इन उपन्यासों एवं वेश्या जीवन का चित्रण इस प्रकार है।

## स्वर्गीय कुसुम (1889)–

हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन से सम्बन्धित पहला उपन्यास 'किशोरी लाल गोस्वामी' का 'स्वर्गीय कुसुम' है। आरंभिक उपन्यास मूलतः मनोरंजन या शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखे गए थे। किन्तु इस काल में लेखकों ने सामाजिक विषयों की तरफ भी ध्यान केन्द्रित किया। यही कारण है कि गोस्वामी जी ने देवदासी प्रथा को आधार बनाकर 'स्वर्गीय कुसुम' नामक उपन्यास की रचना की। भारत में धार्मिक वेश्यावृत्ति की उत्पत्ति के सूत्र अनार्यों की धार्मिक परंपराओं एवं व्यवहार में देखने को मिलता है। इनमें स्त्रियों को शक्तिसम्पन्न माना जाता था किन्तु आगे चलकर आर्यों के दक्षिण में प्रवेश ने इन्हें प्रभावित करना प्रारंभ किया और जिससे इनमें पित्तृसत्तात्मक धारणा को बढ़ावा देना शुरू किया। 5वीं एवं 6ठी सदी के दौरान समाज में बड़े परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस काल के प्रारंभ में आदिम संस्कृतियों के विश्वास एवं धारणाओं को अपनाया गया किन्तु आगे चलकर उनको अछूत के रूप में तिरस्कृत कर समाज में अलग–थलग कर दिया गया। 5वीं सदी में हिन्दू धर्म में तांत्रिक मतों में प्रजनन से जुड़ी धारणाओं से युक्त पंथ का प्रभाव हिन्दू धर्म में देखने को मिलता है। जिसके फलस्वरूप देवताओं को पत्नियाँ प्रदान की गई और आगे चलकर इनकी दुर्गा एवं काली के समान पूजा की जाने लगी। यही से मंदिरों में स्त्रियों के अर्पण के सूत्र मिलते हैं। भारत में 'उड़ीसा', 'आन्ध्र प्रदेश', 'तमिलनाडु' और 'कर्नाटक' इस प्रथा के प्रमुख केन्द्र थे। उत्तर भारत में भी 'वाराणसी' एवं 'जयपुर' में देवदासी प्रथा के प्रमाण मिलते हैं। भारत के अतिरिक्त विश्व के अन्य

देशों जैसे 'मिस्त्र', 'सीरिया', 'बेबीलोनिया', 'यूनान' एवं 'पश्चिम अफ्रीका' के कई मंदिरों में इस प्रकार का काम करती हुई स्त्रियाँ पाई जाती हैं। 'बेबीलोनिया' का 'मिलिटा मंदिर' इसका प्रमुख उदाहरण है। यह मंदिर वेश्याओं के बाजार के रूप में प्रसिद्ध है। आज भी यह माना जाता है कि वेश्यालयों में जो वेश्याएँ हैं उनमें देवदासियों की संख्या बहुत अधिक है। प्रायः इन देवदासियों को किसी कामना की पूर्ति हेतु मंदिरों में भगवान को प्रसाद के रूप में अर्पित कर दिया जाता था। जहाँ इनका प्रमुख कार्य भगवान की सेवा करना था। किन्तु पित्तृसत्तात्मक व्यवस्था ने इन देवदासियों को अपने भोग का साधन बना लिया और स्वयं की सेवा कराना शुरू किया। 'किशोरी लाल गोस्वामी' ने अपने उपन्यास में 'कुसुम' के माध्यम से देवदासी प्रथा एवं उसकी बुराईयों का वर्णन किया है। राजा कर्णसिंह एवं उनकी पत्नी तीन वर्ष की अवस्था में अपनी पुत्री कुसुम को मंदिर में अर्पित कर देते हैं। इसके बाद किशोरी से युवती होने के दौरान मंदिर के पुजारियों द्वारा उसे जबरन वेश्या बनने के लिए मजबूर किया जाता है। लेखक ने नायिका कुसुम के माध्यम से यह प्रश्न उठाया है कि आखिर समाज कैसे सब कुछ जानते हुए उन्हें देवत्व का स्थान प्रदान कर सकता है? वह इस रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहती है कि–

''क्या, देवताओं की भेंट होने से इन लड़कियों का मनुष्यत्व कहीं चला जाता है और मनुष्यत्व के बदले उनमें देवत्व पशुत्व या जड़त्व आ जाता है, जिसके कारण व्यभिचार या वेश्यावृत्ति करने से बची रहे?''[2]

आगे चलकर पंडित त्र्यंबक कुसुम को वेश्या चुन्नी के हाथों बेच देता है। किन्तु कार्तिक पूर्णिमा के मेले में नाव डूबने की घटना में उसकी मुलाकात वसंत नामक युवक से होती है। वह उसे दुर्घटना में डूबने से बचाता है। इसी घटना से कुसुम को बसंत से प्रेम हो जाता है और दोनों विवाह कर लेते हैं। यद्यपि वसंत कुसुम को अपना लेता है किन्तु वे दोनों सामाजिक परंपराओं का विरोध नहीं कर पाते हैं। पूर्णतया पवित्र होने के बावजूद कुसुम समाज से विद्रोह नहीं कर पाती और समाज में वसंत की इज्जत बचाने के लिए उसका विवाह अपनी बहन गुलाब से करा देती है। 'डॉ शारदा अग्रवाल' के अनुसार–

''उसे भली–भांति विदित था कि एक वेश्यापुत्री को न तो समाज में कोई सम्मानित स्थान ही प्राप्त हो सकता है और न उसकी दृष्टि में उसकी पाक–साफ नियत एवं आदर्श उच्च चरित्र का कुछ भी महत्व हो सकता है, समाज की दृष्टि में उसके बाह्यरूप की ही महत्ता थी। यही कारण था कि बसन्त के साथ स्वतंत्रतापूर्वक विवाह कर उसे समाज में अपमानित करने को तैयार न थी।''[3]

यहाँ लेखक ने कुसुम के माध्यम से देवदासी प्रथा एवं वेश्या जीवन पर प्रश्न उठाया है। किन्तु वे कुसुम द्वारा मुखर रूप से विरोध कराने में सफल नहीं हो पाते क्योंकि अगर बसंत उसे अपना भी लेता तो समाज उसे कभी स्वीकार नहीं करता। साथ ही कुसुम और बसंत के अंदर भी समाज से लड़ने का साहस नहीं है। 'लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय' दोनों की व्यथा एवं सामाजिक सच्चाई को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

''स्वयं कुसुम नहीं चाहती कि उसके पिता उसे प्रकट रूप से ग्रहण करें क्योंकि न तो समाज उन्हें ऐसा करने की आज्ञा देता था और न कुसुम समाज में विप्लव उपस्थित करना चाहती थी। बसन्त के साथ चुपचाप विवाह उसने अपना धर्म बनाने के लिए किया, किन्तु प्रगट रूप में गुलाब से विवाह कराया, ताकि उसके कारण बसन्त समाज में पतित न माना जाय और सन्तान के बिना उसके पुरखों के पिण्ड–पानी का लोप न हो जाय। सब बातें कुसुम की कर्मगति और भाग्य पर छोड़ दी जाती हैं। बसन्त में भी साहस नहीं है कि वह समाज के प्रति विद्रोह करे। वास्तव में लेखक ने सामाजिक विडम्बना का यथातथ्य उल्लेख कर दिया है।''[4]

इस प्रकार लेखक देवदासी प्रथा का विरोध तो करते हैं किन्तु वे विरोध की जगह आदर्शवादी दृष्टिकोण को अपनाते हैं और उसके लिए कुसुम को बलि बनाया जाता है। वह न्याय एवं त्याग की मूर्ति के रूप में हमारे समक्ष आती है। यद्यपि यह सत्य है कि लेखक ने समाज के प्रति कहीं विद्रोही भाव नहीं दिखाया है किन्तु देवदासी प्रथा एवं उसकी बुराईयों का वर्णन अत्यन्त कुशलता के साथ किया है। पुजारियों की स्वार्थपरता

एवं देवदासियों की व्यथा को इस उपन्यास में अत्यन्त कुशलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

## काजर की कोठरी (1902)–

'काजर की कोठरी' देवकीनन्दन खत्री का महत्वपूर्ण उपन्यास है। देवकीनन्दन खत्री ने हिन्दी के पाठकवर्ग के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'काजर की कोठरी' मुख्यतः जासूसी उपन्यास है। इसमें विशेष रूप से वेश्या जीवन को आधार नहीं बनाया गया है किन्तु बाँदी नामक वेश्या इस उपन्यास की प्रमुख पात्र है जिसके माध्यम से वेश्या जीवन का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का प्रारंभ ही वेश्या बाँदी के मुजरे से होता है। लेखक ने कहीं भी बाँदी के वेश्या बनने के कारणों पर प्रकाश नहीं डाला है किन्तु बाँदी की माँ स्वयं भी इस पेशे में थी। इस कारण वह भी इस व्यवसाय को अपनाती है। अधिकाशतः वेश्या पुत्र या पुत्रियों के पास वेश्या जीवन अपनाने या दलाल बनने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं होता हैं। समाज भी उनको अपनाने से इंकार कर देता है। अतः इस उपन्यास में भी बाँदी के वेश्या बनने की प्रमुख वजह यही है। इसमें लेखक ने वेश्या के झूठे प्रेम प्रपंच एवं चालाकी का वर्णन किया है जो छल कपट से धन कमाती हैं। वेश्या बाँदी, हरनन्दन सिंह, कल्याण सिंह एवं पारसनाथ सभी एक दूसरे के प्रति षडयंत्र करते हैं। बाँदी प्रेम का प्रपंच करके हरनन्दन सिंह और पारसनाथ को अपने जाल में फँसाती है और दोनों से धन चूसती है। पारसनाथ से बहाना करती हुई वह कहती है कि–

''यह सब ठीक है, मुझे तुमसे रूपये पैसे की लालच कुछ भी नहीं है मैं तो सिर्फ तुम्हारी मोहब्बत चाहती हूँ मगर क्या करूँ अम्मा के मिजाज से लाचार हूँ।''[5]

पूरा उपन्यास बाँदी पर ही केन्द्रित रहता है और कथा के अंत में हरनन्दन सिंह एवं सरला के विवाह में बाँदी की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। लेखक ने वेश्या बाँदी के माध्यम से एक ऐसे चरित्र को उभारा है जिसे समाज में अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। लेकिन वह इस हाल में भी खुश रहती है और उसे इसका कोई पछतावा भी

नहीं होता है। काजर की कोठरी के पात्रों में कहीं–कहीं प्रेमचन्द के 'सेवासदन' के पात्रों से समानता देखने को मिलती है। बाँदी एवं भोली तथा सरला व हरनन्दन सिंह एवं शांता व सदन के पात्रों में काफी समानता है। इसी कारण कुछ विद्वानों ने 'काजर की कोठरी' को सेवासदन का पूर्व भाग माना है। किन्तु इस उपन्यास की कमी यह है कि इसमें लेखक ने वेश्याओं की छलकपट एवं धूर्तता का चित्रण किया है। लेकिन उनके जीवन की कठिनाईयों का वर्णन या उनके लिए कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है। इसके साथ ही वेश्यापुत्री होने के कारण होने वाली समस्याओं की ओर भी लेखक ने कोई संकेत नहीं किया है। भले ही बाँदी का अपने इस व्यवसाय से कोई समस्या न हो लेकिन उसके द्वारा दूसरों को फँसाना एवं उन्हें मूर्ख बनाना क्या सही है? ये सब घटनाएँ समाज का किस ओर लेकर जाएगीं?

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में गणिकाओं के जासूस होने का उल्लेख किया है। लेकिन प्रश्न यह है कि जासूसी के लिए वेश्या होना जरूरी है? क्या बिना वेश्यावृत्ति के यह नहीं हो सकता है? सेवासदन और काजर की कोठरी उपन्यास के पात्रों में थोड़ी समानता होते हुए भी दोनों उपन्यासों का समापन अलग–अलग ढंग से होता है। सेवासदन में लेखक ने वेश्या जीवन की समस्या का उल्लेख करते हुए उसके लिए समाधान भी प्रस्तुत किया है किन्तु देवकीनन्दन खत्री जी ने ऐसा कोई समाधान इस उपन्यास में प्रस्तुत नहीं किया है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि उपन्यास की रचना जमींदारों को केन्द्र में रखकर की गई है। जिसके कारण वह वेश्या जीवन की समस्या पर ज्यादा ध्यान नहीं दे सके।

## विद्याधरी (1904)

विद्याधरी पण्डित गिरिजा नन्दन का महत्वपूर्ण लघु उपन्यास है जो मात्र तीस पृष्ठों का है। इस उपन्यास में लेखक ने वेश्या जीवन की स्थिति का वर्णन करने के साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया है कि बुरे कर्मों का फल सदैव बुरा ही होता है। उपन्यास की प्रमुख पात्र चम्पा नाम की स्त्री है जिसका विवाह दुनीचन्द के साथ होता है

जो गया के रईसों में से एक है। चम्पा और दुनीचन्द का एक पुत्र भी है जिसका नाम लक्ष्मीचन्द है। आरंभ में इनका जीवन अत्यन्त सुखमय होता है किन्तु आगे चलकर पिता की मृत्यु के पश्चात् दुनीचन्द चुन्नी नामक वेश्या के फेर में फँस जाते हैं और यहीं से उनके परिवार के पतनोन्मुख होने की कथा प्रारंभ होती है। पति के वेश्यागमी होने के बाद चम्पा यह उपेक्षा सहन नहीं कर पाती है और कई तरह से अपने पति को मनाने की कोशिश करती है। किन्तु वह चुन्नी के मोहपाश से मुक्त नहीं हो पाता है। चम्पा अपने पति की यह उपेक्षा सह नहीं पाती और अपने पड़ोसी रामललवा के झूठे प्रेम में फँस जाती है। वह रामललवा के कहने पर अपने सारे गहने लेकर उसके साथ आगरा भाग जाती है। रामललवा की दृष्टि चम्पा के गहनों पर होती है और वह एक रात उसके गहने लेकर भाग जाता है और उसे अकेला छोड़ जाता है। इससे चम्पा अत्यन्त गंभीर समस्या में फँस जाती है। पैसे नहीं होने के कारण मकान मालिक उसे घर से निकाल देता है। आर्थिक संकट का सामना करती हुई चम्पा की मुलाकात सरस्वती नामक वेश्या से होती है। वह उसे अपने यहाँ पनाह देती है और अपनी पुत्री के समान उसका पालन–पोषण करती है क्योंकि जब वह रामललवा के साथ भागती है तब वह महज चौदह साल की होती है। वेश्या सरस्वती चम्पा को वेश्यावृत्ति के गुण सिखाती है और आगे चलकर वेश्या विद्याधरी का जन्म होता है। उपन्यास के अंत में दुनीचन्द का दिवाला निकल जाता है। वेश्यागमन के कारण उनकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है और दर–दर की ठोकरे खाते हुए उसकी मृत्यु हो जाती है। रामललवा को कोढ़ हो जाता है और वह भी भीख मांगने के लिए मजबूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी त्रासदी इस उपन्यास की यह है कि वेश्या विद्याधरी का पुत्र ही उसका ग्राहक बनकर आता है। विद्याधरी अपनी स्थिति पर दुख प्रकट करते हुए कहती है कि–

''हाय मैं ऐसी पापिनी हुई कि पुत्र जिसे नौ महीने पेट में रखा वह भी मिलने की इच्छा करे।''[6]

उपन्यास के अंत में विद्याधरी की भी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार लेखक ने उपन्यास के माध्यम से वेश्या जीवन की त्रासदी को प्रस्तुत किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि चाहे कितना भी धनी व्यक्ति हो बुरे कर्मों का फल बुरा ही होता है। उपन्यास के सभी पात्र कथा के अंत में अपने कर्मों का फल भोगते हैं। इस उपन्यास में लेखक ने आर्थिक कारणों को वेश्यावृत्ति अपनाने का महत्वपूर्ण कारक माना है। आंरभिक दौर में लिखे जाने के कारण इस उपन्यास में लेखक की सहानुभूति वेश्याओं के प्रति कम देखने को मिलती है। लेखक ने यह संकेत किया है कि कैसे एक वेश्या पूरे गृहस्थ जीवन को बरबाद कर देती है। अंततः लेखक ने वेश्यावृत्ति के बुरे परिणामों का वर्णन अपने इस उपन्यास में किया है किन्तु इसको समाप्त करने या इसे दूर करने हेतु कोई उपाय नहीं बताया है।

## आदर्श हिन्दू (1914–1915)–

आदर्श हिन्दू लज्जाराम मेहता शर्मा का प्रमुख उपन्यास है। इस उपन्यास का विषय भी वेश्या जीवन न होकर आदर्श हिन्दू धर्म के विचारों का प्रकट करना है। इस उपन्यास में लेखक ने वेश्याओं को जहाँ एक तरफ घृणा की दृष्टि से देखा है वहीं दूसरी ओर उन्हें समाज के लिए आवश्यक भी बताया है। उनके अनुसार वेश्याओं को यदि समाज से हटा दिया जाए तो घर की बहू बेटियों की आदत खराब होगी और वह बिगड़ने लगेगीं। उपन्यास का प्रमुख पात्र जो लेखक के विचारों को वहन करता है वह स्वयं उसका समर्थन करते हुए कहता है कि–

''जैसे बड़े नगरों में सड़क के निकट जगह–जगह पनाले बने हुए हैं, यदि वे न बनाए जाएँ तो चित्तवृत्ति को शरीर के विकार को न रोक सकने पर लोग बाजार और गलियों को खराब कर डालें उसी तरह यदि वेश्याएँ हमारे समाज से उठा दी जायँ तो घर की बहू–बेटियाँ बिगड़ेंगी।''[7]

इस प्रकार लेखक ने कुलवधुओं की रक्षा के लिए वेश्याओं का समाज में होना आवश्यक माना है। उनके अनुसार वेश्यावृत्ति को कुछ उपायों द्वारा रोका जा सकता है

जैसे– लोगों में समाज से पदच्युत किए जाने का भय उत्पन्न कर दिया जाए और परगमन स्त्री की मनोवृत्ति को रोकने का प्रयास एवं सदाचार की शिक्षा देने का प्रयास किया जाए। ये कुछ उपाय हैं जो लेखक ने वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए बताए हैं। किन्तु एक तरफ जहाँ लज्जाराम जी वेश्यावृत्ति को रोकने की बात करते हैं वहीं दूसरी तरफ वेश्याओं के अस्तित्व को समाज के लिए जरूरी मानते हैं क्योंकि वह समाज में व्यभिचार को रोकने का काम करती हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि अगर किसी अन्य स्त्री या कुलवधू का पुरूष के साथ संबंध व्यभिचार है तो किसी पुरूष का वेश्या के साथ संबंध व्यभिचार नहीं है? हर जगह स्त्री को ही क्यों समझौता करना पड़ता है चाहे वह वेश्या हो या कुलवधू। इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है।

## वारांगना रहस्य (1914–1922)–

वारांगना रहस्य चन्द्रशेखर पाठक जी का महत्वपूर्ण उपन्यास है जो मुख्यतः वेश्या जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इस उपन्यास में लेखक ने वेश्या कुन्दन और वेश्या मानिक के माध्यम से वेश्या जीवन की समस्याओं का उल्लेख किया है। इस उपन्यास की दोनों वेश्या पात्रों द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने के अलग–अलग कारण हैं। वेश्या कुन्दन हीरा नामक वेश्या की बेटी और उसे यह व्यवसाय विरासत में अपनी माँ से मिला है। महज पाँच वर्ष की आयु में उसे वेश्यावृत्ति की शिक्षा मिलनी प्रारंभ हो गई थी। जिस समय किसी बच्चे की उम्र खेलने कूदने एवं शिक्षा ग्रहण की होती है। उस समय वेश्या कुंदन को वेश्यावृत्ति की शिक्षा मिल रही होती है। कुंदन अपना परिचय देते हुए स्वयं कहती है कि–

''मेरा नाम कुन्दन है और मेरी माता का नाम हीरा था। हम लोगों की गणना तवायफों में है। मैं उस समय से अपनी जीवनी आरम्भ करती हूँ, जिस समय मेरी अवस्था पाँच वर्ष की थी और जिस समय से मेरी शिक्षा आरम्भ हो गयी थी।''[8]

वेश्या कुंदन अत्यन्त सौन्दर्यवती है और आगरे के बाजार में अपने इस सौन्दर्य के कारण वह बहुत प्रसिद्ध भी है। अपनी अदाओं एवं रूप से लोगों को अपने मोहपाश में फँसाती

है और उनका खूब धन लूटती है। कुंदन के बिल्कुल विपरीत वेश्या मानिक है जो पति रामानन्द द्वारा उपेक्षित होने पर वेश्या व्यवसाय को अपनाती है। उसका पति वेश्या मोहिनी के रूप जाल में फँसकर अपनी पत्नी मानिक की उपेक्षा करता है। यहाँ तक कि वह सारा घर का धन भी वेश्या मोहिनी पर लुटा देता है। मानिक अपने पति को वेश्यागामिता से मुक्त नहीं करा पाती और कामाग्नि में जलती रहती है। पति की उपेक्षा के कारण मानिक धीरे–धीरे अपने पड़ोसी मनोहर के प्रति आकर्षित होने लगती है। वह मनोहर के साथ भाग जाती है किन्तु मनोहर की भी नीयत सही नहीं रहती। कुछ दिनों उसका उपभोग करने के बाद वह भी उसका सारा सामान लूटकर भाग जाता है। इस प्रकार उसे वेश्या व्यवसाय अपनाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। किन्तु यह सोचने की बात है कि सभ्य घर की होने के बावजूद क्या उसके पास इस पेशे को अपनाने के बजाय कोई चारा शेष नहीं रहता है? शायद इसका प्रमुख कारण यह है कि कामवासना के जाग्रत हो जाने पर और एक बार कलंकित हो जाने पर  उसके समक्ष यही रास्ता शेष बचता है। इसके अतिरिक्त अपने पति द्वारा वेश्याओं के प्रति प्रेम एवं सम्मान भी उसे वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए प्रेरित करता है। किन्तु उपन्यास के अंत में इसका परिणाम अत्यन्त बुरा होता है।

लेखक ने उपन्यास में यह बताने का प्रयास किया है कि वेश्या एवं वेश्यावृत्ति समाज के लिए अत्यन्त घातक है। यह एक तरफ जहाँ परिवार जैसी संस्था को तोड़ने का कार्य करती है वहीं वेश्या के लिए भी अत्यन्त घातक है। वेश्या मानिक और वेश्या कुन्दन का परिणाम अंत में चलकर अत्यन्त भयावह होता है। वेश्या मानिक अंत में भयावह रोग से पीड़ित हो जाती है और अंत में उसे अस्पताल ले जाया जाता है लेकिन वहाँ भी उसे पुरूष के अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। इसी तरह वेश्या कुंदन की स्थिति अंत अत्यन्त दयनीय हो जाती है और वह वृद्धावस्था में कलकत्ता के वेश्याओं की बस्ती में रहने लगती है और जीविकोपार्जन के लिए अपना शरीर चंद रूपयों में बेंचने के लिए मजबूर हो जाती है। इस प्रकार लेखक ने यहाँ वेश्यावृत्ति के दुष्परिणामों एवं जीवन के अंत में उसकी दयनीय दशा का चित्रण किया है।

इस प्रकार आरंभिक काल के उपन्यासों में वेश्या जीवन के प्रति घृणा भाव देखने को मिलता है। इस काल के उपन्यास में लेखकों की वेश्या पात्रों से सहानुभूति होने के बजाय वेश्यागामी पात्रों के प्रति सहानुभूति अधिक देखने को मिलती है। लेखकों ने अपनी पुरूषवादी मानसिकता के कारण वेश्याओं को घर तोड़नेवाली और दूसरों का धन लूटने वाली स्त्री के रूप में चरितार्थ किया है। इस युग में लेखकों की दृष्टि नैतिकतावादी अधिक रही है इसलिए लेखकों ने वेश्याओं को भी उसी दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। साथ ही उनका कुटिल एवं कपटी रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। साथ ही उनकी समस्याओं के निवारण हेतु कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है। इस कारण वेश्याओं की समस्या कम ही उभरकर सामने आती हैं। आगे चलकर प्रेमचन्द युग में वेश्या जीवन की समस्याओं पर सही ढंग से विचार किया गया और समाधान भी प्रस्तुत किया गया। लेकिन इतना होते हुए भी आरंभिक युग के उपन्यासों का महत्व कम नहीं है क्योंकि उस काल में वेश्याओं पर लिखना एवं उनका चित्रण करना अपने आप में उल्लेखनीय हैं।

## 1.1 प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन–

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गए। इस काल में लेखकों ने बाल विवाह, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा एवं वेश्यावृत्ति जैसी प्रमुख समस्याओं को केन्द्र में रखा है। आरंभिक युगों के उपन्यासों ने जहाँ वेश्या जीवन के लिए पृष्ठभूमि उपलब्ध कराई वहीं प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों ने उनके विषय में गंभीरता से विचार किया। साथ ही समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस युग के प्रमुख लेखकों में 'प्रेमचन्द', 'सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'जयशंकर प्रसाद', 'चंडी प्रसाद हृदयेश', 'विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', 'ऋषभचरण जैन', 'पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र', 'वृन्दावनलाल वर्मा' 'प्रतापनारायण मिश्र', 'भगवतीप्रसाद वाजपेयी' आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। इन उपन्यासकारों द्वारा वेश्या जीवन को लेकर जो उपन्यास लिखे गए हैं उनका वर्णन इस प्रकार है–

## सेवासदन (1918)–

हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन के अध्ययन हेतु प्रेमचंद द्वारा रचित 'सेवासदन' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सही ढंग से अगर देखा जाए तो वेश्या जीवन के अध्ययन हेतु सेवासदन अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास है क्योंकि इस उपन्यास के माध्यम से पहली बार वेश्या जीवन की समस्याएँ उभरकर सामने आई। साथ ही उन्हें कुलटा या समाज विघातक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया बल्कि उनके प्रति सहानुभूति अभिव्यक्त करते हुए उनकी दशा में सुधार एवं उनकी समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। सेवासदन का प्रकाशन 1918 ई0 में हुआ था। इस उपन्यास में सुमन नामक पात्र के माध्यम से प्रेमचन्द ने वेश्या जीवन एवं अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है। सुमन के पिता दरोगा कृष्णचन्द्र को रिश्वत लेने के कारण जेल जाना पड़ता है जिससे सुमन की माँ गंगाजली पर घर की सारी जिम्मेदारी आ जाती है। सुमन के ब्याह योग्य होने पर उसके मामा उमानाथ गजाधर नामक अधेड़ से उसका विवाह तय कर देते हैं जो बनारस के कारखाने में काम करने वाला एक बाबू है। किन्तु सुमन जैसी सुख सुविधा में पली स्त्री अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ सुखी नहीं रह पाती क्योंकि वह न तो सुमन के समान गुणवान है, न रूपवान और न बुद्धिमान। इसके अतिरिक्त सुमन तीस रूपए में घर का काम–काज चलाने में असफल हो जाती है जिसके कारण पैसों को लेकर भी दोनों के बीच कलह उत्पन्न हो जाता है। यहाँ तक कि कलह इतनी ज्यादा बढ़ जाती है कि दोनों के बीच संबंध टूटने के कगार पर पहुँच जाते हैं। कई बार सुमन स्वयं को बाहरी चकाचौंध से रोकने का प्रयास करती है किन्तु वह सफल नहीं हो पाती है। एक दिन अपनी सहेली सुभद्रा के घर से रात को देर से लौटने पर गजाधर अत्यन्त क्रोधित हो जाता है और उस पर लांछन लगाते हुए कहता है कि–

''अच्छा तो अब वकील साहब से मन मिला है, यह कहो फिर भला मजूर की परवाह क्यों होने लगी?''[9]

इस तरह सुमन पर लांछन लगाते हुए वह उसे घर से बाहर निकाल देता है। कहीं आश्रय न मिलने पर अंततः वह वेश्या भोली के घर पर आश्रय लेती है। इस प्रकार वह सुमन से सुमनबाई हो जाती है। लेकिन सुमन से सुमनबाई बनने के पीछे क्या केवल सुमन का ही दोष है? क्या वह समाज दोषी नहीं है जहाँ अनमेल विवाह और दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाएँ मौजूद हैं? दहेज की मांग के कारण कृष्णचन्द्र रिश्वत लेने के लिए मजबूर होते हैं और इसी कारण उन्हें जेल जाना पड़ता है। इसके साथ दहेज इकट्ठा नहीं कर पाने के कारण सुमन का विवाह उमानाथ नामक एक दुहाजू व्यक्ति से कर दिया जाता है और यही से समस्या प्रारंभ होती है। प्रेमचंद सुमन के वेश्या बनने के पीछे उन कारणों को दोषी मानते हैं जो स्त्री को ऐसे कदम उठाने के लिए मजबूर करता है। गजाधर के दुहाजू होने पर भी वह सुमन के भावनाओं की इज्जत नहीं करता है जबकि सुमन से सदैव यह आशा की जाती है कि वह आदर्श स्त्री के सारे धर्म निभाए। प्रेमचंद अगर चाहते तो सुमन को वह वेश्या की जगह किसी और व्यवसाय में भी लगा सकते थे। किन्तु यह समाज स्त्री को अकेले जीने नहीं देगा। पुरूषों की लालची निगाह एवं वासना का सुमन अकेले सामना नहीं कर पाती। इसी कारण प्रेमचंद कहते हैं कि–

''साहसी पुरूष को कोई सहारा नहीं होता तो वह चोरी करता है, कायर पुरूषों को कोई सहारा नहीं होता तो वह भीख माँगता है। लेकिन स्त्री को कोई सहारा नहीं होता तो लज्जाहीन हो जाती है।''[10]

स्त्रियों के लज्जाहीन होने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि हमारे समाज में वेश्याओं के खरीददार का मौजूद होना। जब तक समाज में देह के खरीददार मौजूद रहेगें यह व्यवसाय चलता रहेगा। इसके अतिरिक्त स्त्री को वासना की पूर्ति का साधन समझा जाना भी इस व्यवसाय के बने रहने का प्रमुख कारण है। इस कारण प्रेमचन्द पद्मसिंह के माध्यम से इस मानसिकता को उजागर करते हुए कहते हैं कि–

''यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही समाज सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएँ हैं, जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया है। यह दाल मंडी हमारे ही जीवन का कलुषित प्रतिबिम्ब हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात स्वरूप है।''[11]

प्रेमचंद यहाँ स्पष्ट रूप से संकेत करते हैं कि वेश्यावृत्ति की जड़ हमारे समाज में मौजूद है अतः इस समस्या का समाधान अत्यन्त आवश्यक है। इसी कारण वह चाहते हैं कि वेश्याओं को शहरों के मुख्य स्थान से दूर रखा जाए जिससे युवक एवं युवतियों के बीच इस प्रवृत्ति का विस्तार न हो सके। अपने इस प्रयत्न को वह समर्थन उपन्यास में पद्मसिंह और विट्ठलदास के द्वारा चलाए गए आन्दोलन के माध्यम से देते हैं। आन्दोलन के साथ–साथ कई जनसभाओं का भी आयोजन होता है जिससे इस विषय पर सामान्य लोगों की राय ली जा सके। लेकिन यह आन्दोलन ज्यादा सफल नहीं हो पाता है क्योंकि वेश्याओं की बस्ती अगर शहर से बाहर भी स्थापित कर दी जाए फिर भी कुत्सित प्रवृत्ति को वहाँ जाने से कैसे रोका जा सकता है? इस कारण प्रेमचंद सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए ऐसे आश्रम को स्थापित करने पर बल देते हैं जिसमें वेश्याओं के बच्चों के रहने एवं उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जा सके जिससे आगे आने वाली पीढ़ी में सुधार हो सके। उपन्यास के पात्र पद्मसिंह इस तरह के आश्रम की स्थापना की बात करते हैं लेकिन उनको इस काम सहयोग करने वाला कोई नहीं मिलता है। वह स्वयं पद्मसिंह से कहते हैं कि–

''मुझे आशा है कि स्वामी गजानन्द के उपदेश का कुछ–न–कुछ फल अवश्य होगा। खेद यही है कि कोई मेरी सहायता करने वाला नहीं है। हाँ मजाक उड़ाने वाले ढ़ेरों पड़े हैं। इस समय एक अनाथालय की आवश्यकता है, जहाँ वेश्याओं की लड़कियाँ रखी जा सकें और उनकी शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध हो। पर मेरी सुनता कौन है।''[12]

वेश्याओं से जुड़े कार्य में प्रायः कम ही लोग साथ देते हैं। सेवासदन में वेश्याओं की लड़कियों को संस्कारित एवं शिक्षित करने का बीड़ा सुमन उठाती है जो अपनी बहन शान्ता एवं सदन के घर में स्वयं को अपमानित महसूस करती है। वह गजानन्द के

उपदेश से प्रेरित होकर इस सेवा कार्य को स्वीकार करने का निश्चय करती है जिससे वेश्याओं के बच्चियों के भविष्य को सुधारा जा सके। इस तरह प्रेमचंद सुमन और पद्मसिंह के माध्यम से वेश्या जीवन के सुधार के स्वप्न को साकार करते हैं। किन्तु यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि क्या वेश्याओं की बच्चियों को संस्कारित करने और शिक्षित करने मात्र से उनका उद्धार हो जाएगा? क्या सभ्य समाज इन बेटियों को अपनाएगा? प्रेमचंद इस विषय में शायद स्वयं सशंकित थे इस कारण जब सुभद्रा इनके विवाह की बात सुमन से करती है तब वह वे सुमन के माध्यम से यह शंका व्यक्त करते हैं कि–

''यह तो टेढ़ी खीर है। हमारा कर्त्तव्य है कि, इन कन्याओं को चतुर गृहिणी बनने योग्य बना दें। उनका आदर समाज करेगा या नहीं, मैं नहीं कह सकती।''[13]

वेश्याओं के लिए आश्रम स्थापित कर देना इस समस्या का कोई निश्चित समाधान नहीं है क्योंकि जब तक तक समाज इनके प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं लाता है और इन्हें अपनाने के लिए तैयार नहीं होता तब तक सेवासदन जैसे आश्रम स्थापित करने का कोई अर्थ नहीं है। वास्तव में अगर गौर से देखा जाए तो प्रश्न वेश्यावृत्ति के पूर्णतया उन्मूलन का है न कि उनके खाने एवं रहने का। उपन्यास का अंत वेश्यावृत्ति की समस्या के निराकरण हेतु एकांगी समाधान देता है। लेकिन उपन्यास की यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जिस समय वेश्या को घृणित दृष्टि से देखा जाता था उस समय प्रेमचंद ने वेश्याओं के प्रति सहानुभूति पूर्ण रवैया अपनाया। उन्होंने वेश्यावृत्ति को अपनाने हेतु वेश्याओं को दोषी नहीं ठहराया है बल्कि समाज की उन कुप्रथाओं को दोषी माना है जो एक स्त्री को यह पेशा अपनाने के लिए मजबूर करते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की समाज में उन कुप्रथाओं को दूर करने का प्रयास किया जाए और स्त्रियों के प्रति चली आ रही परंपरागत सोच को बदला जाए तभी उनकी स्थिति में सुधार हो सकेगा।

## कंकाल (1929)–

जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित कंकाल उनके महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है। यह उपन्यास मूलतः वेश्या जीवन पर नहीं बल्कि जारज संतान की समस्या पर आधारित है। किन्तु उपन्यास की प्रमुख पात्र तारा के माध्यम से वेश्या जीवन पर थोड़ा प्रकाश अवश्य डाला है। उपन्यास की नायिका तारा विधवा रामा और देवनिरंजन की अवैध संतान है। ग्रहण छूटने के अवसर पर काशी में स्नान हेतु आई तारा भीड़ में अपनी माता–पिता से बिछुड़ जाती है और एक अधेड़ उम्र की स्त्री के हाथ पड़ जाती है जो वेश्या व्यापार करने वाली एक संस्था से जुड़ी होती है। इस प्रकार काशी से वह लखनऊ भेज दी जाती है और तारा से वेश्या गुलेनार हो जाती है। तारा से गुलेनार बनने एवं अन्य वेश्याओं की स्थिति का वर्णन करते हुए वह मंगल से कहती है कि–

''तुम्हारे सामने जिस दुष्टा ने मुझे फँसाया, वह स्त्रियों का व्यापार करने वाली एक संस्था की कुटनी थी। मुझे ले जाकर उन सबों ने एक घर में रखा जिसमें मेरी ही जैसी कई अभागिनें थीं, परन्तु उनमें सब मेरी जैसी रोने वाली न थीं। बहुत सी स्वेच्छा से आई थीं और कितनी ही कलंक लगने पर अपने घर वालों से ही मेले में छोड़ दी गई थीं।''[14]

आगे चलकर मंगलदेव की सहायता से वह इस व्यापार को छोड़कर हरिद्वार आ जाती है और उसके साथ जीवन व्यतीत करने लगती है किन्तु मंगलदेव विवाह के पूर्व यह जानकर कि तारा विधवा रामा की अवैध संतान है, उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने से इंकार कर देता है और उसे छोड़कर चला जाता है। इस प्रकार जयशंकर प्रसाद जी ने वेश्या जीवन की कथा का वर्णन प्रसंगवश उपन्यास में किया है। उनका मूल उद्‌देश्य जारज संतान एवं उसके सामने वाली समस्याओं से पाठकों को अवगत कराना है।

## माँ (1929)–

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का माँ उपन्यास प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में से एक है। उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने वेश्यावृत्ति को अपनाने के पीछे दो प्रमुख कारण बताए हैं। पहला कारण वेश्या की कोख से जन्म लेना और दूसरा आर्थिक परवशता। लेखक के अनुसार यदि कोई लड़की वेश्या की कोख से जन्म लेती है उसके पास वेश्यावृत्ति अपनाने के अलावा कोई अन्य उपाय शेष नहीं रह जाता है। यही कारण है कि उपन्यास की वेश्या पात्र बन्दीजान अपनी वेश्या माँ बड़ी बी की अवैध संतान है इसलिए वह भी अपनी माँ के पेशे को अपनाने के लिए मजबूर है। इसी तरह बाजार में एक और बेगम हैं जो इस व्यवसाय को स्वयं पसंद नहीं करती है लेकिन कुछ पैसों की खातिर अपनी बेटियों कमरून्निसा और शम्सुन्निसा से वेश्यावृत्ति कराने के लिए मजबूर हैं। प्रेमचन्द के समान विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' जी ने भी वेश्याओं के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया है। उन्होंने वेश्याओं के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए वेश्यावृत्ति के समाधान हेतु कुछ उपाय भी सुझाए हैं। इसके लिए उन्होंने उपन्यास में दो सुधारवादी पात्रों शम्भुनाथ और राधाकृष्ण का सहारा लिया है। शम्भुनाथ का छोटा भाई श्यामनाथ और उसका बहनोई गोकुल प्रसाद दोनों अपनी गलत आदतों के कारण वेश्यागामी हो जाते हैं। शम्भुनाथ श्यामनाथ का ज्येष्ठ भाई है लेकिन लखनऊ के प्रसिद्ध व्यापारी ब्रजमोहन निःसंतान होने के कारण घासीराम के पुत्र श्यामू को गोद ले लेते हैं। माँ सावित्री के अत्यधिक लाड़–प्यार के कारण वह अत्यधिक बिगड़ जाता है और विश्वनाथ से मित्रता करके वेश्यागामी हो जाता है। जब उसके ज्येष्ठ भाई को यह बात पता चलती है तब वह राधाकृष्ण के साथ मिलकर उन्हें वेश्याओं के चंगुल से मुक्त कराने का प्रयास करता है। सबसे पहले वह ब्रजमोहन को यह सलाह देता है कि शम्भुनाथ का विवाह करा दिया जाए जिसमें उसका मन रमा रहे। इसी कारण ब्रजमोहन उसका विवाह एक सुन्दर स्त्री से करा देते हैं। श्यामनाथ जो कि वेश्या बंदीजान के प्रेम में पूरी तरह पागल रहता है वेश्या बंदीजान यद्यपि व्यवसाय से एक वेश्या है किन्तु मन

से वह एक स्त्री भी है। इस कारण जब उसे श्यामनाथ के विवाह की सूचना मिलती है तो वह अत्यन्त व्यथित होती है। किन्तु आर्थिक परवशता उसे ज्यादा देर व्यथित नहीं रहने देती है। इसी कारण जब श्यामनाथ विवाह के पश्चात् उसके कोठे पर आता है तो वह उससे अपने महीने का खर्च मांगती है और श्यामनाथ द्वारा दस रू0 दिखाए जाने पर उसको अपमानित करते हुए कहती है कि–

''ऐ होश की दवा कर मरदुए चला वहाँ से बड़ा वारिसखाँ बनकर। मैं क्या तेरी लौंडी बाँदी हूँ? ये नखरे उसको दिखाओ, जिसे ब्याहकर लाये हो। मेरे सामने ये नखरे नहीं चलेंगे। तेरे ऐसे यहाँ दिन भर में बहत्तर आते हैं।''[15]

इस प्रकार वेश्या बंदीजान से श्यामनाथ को मुक्ति दिलाने के बाद शम्भूनाथ बेगम की बेटियों से भी उनको एवं अपने बहनोई गोकुल को दूर करने का प्रयास करते हैं। इसके लिए वह छुट्टन मियाँ को पचास रू0 का लालच देकर बेगम एवं उनकी बेटियों को इस बाजार से दूर कहीं बसाने के लिए प्रेरित करते हैं जिससे उसके भाई एवं बहनोई ऐसी जगहों पर पहुँच न सके। राधाकृष्ण की सहायता से छुट्टन मियाँ बेगम और उसकी बेटियों को चौक से दूर बसाने में सफल हो जाता है। इस बात को लेकर विश्वनाथ, गोकुल एवं श्यामनाथ के बीच झगड़ा हो जाता है जिससे उनकी आपस में बातचीत एवं चौक जाना बंद हो जाता है। श्यामनाथ बंदीजान से अपमानित होने पर अपनी पत्नी में मन रमाने लगते हैं।

उपन्यास में लेखक ने वेश्याओं एवं वेश्यागामी पुरूषों के उद्धार हेतु दो प्रमुख उपाय सुझाए हैं जिसमें पहला उपाय हैं लड़कों का सही समय पर विवाह कराना। इसके साथ उनका यह भी मानना है कि समाज को वेश्याओं के बच्चों को आगे वेश्यावृत्ति से रोकने के लिए उनके विवाह हेतु आर्थिक सहायता भी उपलब्ध करानी चाहिए जिससे उनका भविष्य भी उज्जवल हो सके और समाज को बुराई की ओर बढ़ने से रोका जा सके। लेखक ने ऐसा ही प्रयत्न उपन्यास में शम्भूनाथ एवं राधाकृष्ण के माध्यम से कराते हैं। शम्भूनाथ राधाकृष्ण के माध्यम से बेगम को हजार रू0 देते हैं जिससे उनकी पुत्रियों का

विवाह हो सके। उनके द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से उनका विवाह भी सम्पन्न हो जाता है। यहाँ लेखक ने बेगम की बेटियों का विवाह कराके उन्हें वेश्या बनने से रोक लिया।

इस प्रकार लेखक का यह मानना है कि सही समय पर विवाह एवं आर्थिक सहायता ऐसे उपाय हैं जिनसे वेश्याओं एवं वेश्यागामी पुरूषों दोनों की स्थिति में सुधार किया जा सकता है। किन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या विवाह एवं समाज द्वारा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने मात्र से वेश्यावृत्ति हेतु समाधान मिल जाएगा? यद्यपि लेखक ने बेगम की बेटियों का विवाह कराकर प्रंशसनीय कार्य किया है। लेकिन यह सही समाधान नहीं है क्योंकि आज भी बंदीजान, विश्वनाथ एवं छुट्टन मियाँ की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। समाज में जब तक इस प्रकार के लोग विद्यमान रहेगें तब तक वेश्यावृत्ति का अंत संभव नहीं है। लेखक ने एक ओर बेगम एवं उनकी बेटियों को आर्थिक सहायता देकर उनका कल्याण किया तो वहीं दूसरी ओर बंदीजान जैसी खानदानी वेश्या हेतु कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर सके। बंदीजान के समान हजारों ऐसी वेश्याएँ हैं जिन्हें सामाजिक एवं आर्थिक सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक जी ने प्रेमचन्द के समान यह चाहते हैं कि वेश्याओं की बस्ती को शहर से दूर रखा जाए जिससे वहाँ लोगों का जाना कम किया जा सके। लेकिन यह समाधान भी पूर्णतया कारगार नहीं है। इसके साथ–साथ लेखक ने शम्भनाथ एवं राधाकृष्ण के माध्यम से वेश्यावृत्ति को रोकने हेतु सामाजिक जागृति का कोई आन्दोलन नहीं छेड़ा। ये दोनों पात्र केवल अपने रिश्तेदारों को वेश्याओं से दूर रखने तक ही सीमित रहे। यदि लेखक इन पात्रों के माध्यम से थोड़ा और प्रयास करते तो शायद बंदीजान जैसी वेश्याओं का भी जीवन सुधर जाता। किन्तु इतना होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि लेखक ने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए दुश्चरित्र पात्रों और वेश्याओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया है जो सीमित होते हुए भी प्रशंसनीय है।

## वेश्यापुत्र (1929)–

प्रेमचन्दयुगीन महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में ऋषभचरण जैन का महत्वपूर्ण स्थान है। 'वेश्यापुत्र' उपन्यास की शुरूआत कमलो एवं महावीर की प्रेम कहानी से प्रारंभ होती है। कमलो रौनकपुर के निवासी रोहिताश्व और मनहरी की बेटी है। अपने माता–पिता के द्वारा एक दुराचारी युवक से शादी तय कर दिए जाने पर वह उनके नाम पत्र लिखकर अपने प्रेमी महवीर के साथ काशी भाग जाती है और वहीं महावीर के साथ अपनी गृहस्थी बसा लेती है। लेकिन गली का माहौल अच्छा नहीं होने के कारण उन्हें काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। अपने पति से कमलो घर बदलने का आग्रह करते हुए कहती है कि–

''घर से झाँकने तक में लज्जा आती है। जिधर सुनो गन्दे गीत गाये जा रहे हैं, जिधर देखो मीठे–मीठे कटाक्ष किए जा रहे हैं। भले घर की बहू बेटियों को ये लोग पता नहीं कुलगी समझते हैं, या वेश्या।''[16]

इस तरह कमलो को रोज–रोज गली के लड़को की छींटाकाशी से तंग आ जाती है और एक दिन तंग आकर डॉक्टर गंगादीन को क्रोध में हाथ दिखाती हुई बेईज्जत करती है। इस घटना के पश्चात् कमलो एवं महवीर घर छोड़ने का निश्चय कर लेते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश जिस दिन उन्हें घर छोड़ना होता है उसी दिन शहर में जातीय दंगे भड़क उठते हैं और उसमें महावीर की मृत्यु हो जाती है। अपने पति को देखने जब कमलो अस्पताल पहुँचती है उसी समय डॉक्टर गंगादीन उसे वहाँ देख लेता है और अपने अपमान का बदला लेने का निश्चय करता है। रात में नौकर की सहायता से वह कमलो को अस्पताल से बाहर निकलवाकर अपने दोस्तों के साथ उसका सामूहिक बालात्कार करता है। बालात्कारियों द्वारा पीड़ित होने पर कमलो आत्महत्या का निश्चय करती हुई कहती है कि–

'' मैं संसार में रहूँ किसलिए? मेरे पास रहा क्या? माँ–बाप गए, सतीत्व गया– मैं क्या लेकर संसार को मुँह दिखाऊँ? हाय! हाय! उस अत्याचारी डॉक्टर और उसके साथियों

ने नृशंसतापूर्वक मेरा सर्वनाश किया! गिनती नहीं, वे कितने थे, दस थे, बीस थे। आह! मैं भ्रष्टा बन गई। वे मेरा सतीत्व, धन लूटते रहे और मैं हा–हा खाती बेहोश हो जाने के सिवा कुछ न कर सकी। थू! थू! ऐसे जीवन का धिक्कार है।''[17]

इस निश्चय के साथ वह रेल की पटरी पर लेटकर वह आत्महत्या करने का निश्चय करती है लेकिन उसी वक्त उसकी मुलाकात राधारानी नामक वृद्ध स्त्री से होती है जो अपने देवर द्वारा सताई गई रहती है। दोनों एक–दूसरे से अपने दुख का बयान करती हैं और एक नई जीवन के शुरूआत का निश्चय करती हैं। यह नई शुरूआत उन्हें वेश्याववृत्ति की ओर ले जाती है और वे दिल्ली की सबसे नामचीन वेश्याओं के रूप में प्रसिद्ध हो जाती है। कमलो के वेश्या बनने के पीछे प्रमुख कारण सामाजिक विलासप्रियता है इसलिए वह समाज के कामाचारी पुरूषों से प्रतिशोध लेने के लिए विद्रोही रूप धारण करती है। उसका प्रमुख ध्यान प्रेमी की सूरत पर नहीं बल्कि उसके सर्वस्वहरण पर होता है। समाज एवं कामाचारी पुरूषों से घृणा होने के बावजूद उसके अंदर कहीं न कहीं अच्छाई भी शेष है। वह अपने कोठे पर आने वाले अल्पव्यस्क बालकों को ग्राहक बनाने से इंकार कर देती है और उन्हें उपदेश देकर सुधारने का प्रयास भी करती है। वह उन्हें समझाती हुई कहती हैं कि–

''वेश्या के घर पर आने वाला मनुष्य अपना धन, धर्म, स्वास्थ्य और हृदय की शान्ति सब नष्ट कर लेता है। अभी आपकी कम उम्र है। मैं आपको समझाए देती हूँ। भविष्य में आप वेश्या का द्वार देखने का साहस न करें।''[18]

वेश्या कमलो का यह मानना है कि दुश्चरित्र पुरूष जाति ने ही उसको इन परिस्थितियों में डाला है इसलिए सनतकुमार से आग्रह करके वह एक ऐसी संस्था की स्थापना करना चाहती है जिससे समाज का कल्याण हो सके और छोटे बालक एवं बालिकाओं का सत्चरित्र बनने की शिक्षा दी जा सके। सनतकुमार की सहयता से वह 'शक्ति सदन' की स्थापना करती है और वही सनतकुमार के साथ विवाह करके वेश्या कमलो से विद्यावती बन जाती है, साथ ही जनकल्याण हेतु अपना सारा धन शक्ति सदन

को दान कर देती है। इस प्रकार प्रेमचंदयुगीन अन्य वेश्याचरित्र प्रधान उपन्यासों की तुलना में वेश्यापुत्र इस अर्थ में भिन्न है कि उपन्यास की वेश्या पात्र कोठे में बैठे होने के बावजूद युवकों को उपदेश देकर उन्हें सुधारने का प्रयास करती है। अपने इस प्रयास से वह कई नवयुवकों को वेश्यागामी बनने से रोक लेती है। साथ ही उपन्यास के अंत में वेश्या कमलो एवं सनतकुमार का विवाह कराकर लेखक ने प्रेमचंद की परम्परा अपनाते हुए सुधारवादी समाधान प्रस्तुत किया है। लेकिन वास्तविक रूप में समाज में सनतकुमार जैसे सत्वरित्र पुरूष कम ही मिलते हैं जो वेश्या से विवाह करने का साहस रखते हैं।

## शराबी (1930)–

शराबी पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की सशक्त रचनाओं में से एक है। पुस्तक के रूप में छपने से पूर्व इसका प्रकाशन 'मतवाला' में धारावाहिक के रूप में हुआ था।[19] उन्होंने शराबी के अन्तर्गत  यह बताया है कि किस प्रकार एक पिता की व्यसनाधीनता का दुष्परिणाम एक बेटी को झेलना पड़ता है। उपन्यास की नायिका जवाहर एक मध्यम राजपूत जमींदार की एकमात्र संतान है। उसकी माँ जवाहर के जन्म लेने के कुछ ही समय बाद चल बसी थी। बेटी का पालन–पोषण उनके पिता पारसनाथ ने किया। किन्तु बेटी ने जैसे ही युवावस्था में कदम रखा, पिता अधिकांश समय नशे में धुत रहने लगे। जैसे–जैसे जवाहर की आयु बढ़ती गई पिता उसके एवं उसके विवाह हेतु उदासीन रहने लगे जिसके कारण मोहल्ले के लोगों ने जवाहर के ऊपर लांछन लगाना शुरू कर दिया। जैसा कि–

''दिन–दिन भर सारे गाँव के हवाले अपनी जवान छोरी को छोड़कर कलवरियाँ में पड़ा रहेगा। गाँव के अवारे मुहल्ले में आकर इसके दरवाजे पर चक्कर काटेंगे, उसकी बेटी से बोली ठोली बोलेंगे, मुहल्ले को बाजार बनावेंगे और इस पर कोई कुछ कहेगा तो यह कुत्ते की तरह कटेगा। होश में रहो बच्चू! नहीं तो एक दिन मारते–मारते तुम्हारी आदत छुड़ा दी जाएगी।''[20]

मुहल्ले के लोगों द्वारा लगाए गए झूठे लांछन से क्रोधित होकर पारसनाथ अपनी बेटी पर संदेह करता है और उसकी पिटाई भी करता है। साथ ही वह उससे पूछता है कि वह उसकी अनुपस्थिति में क्या करती है। पिता द्वारा लगाए गए लांछन एवं अपनी आर्थिक स्थिति से तंग आकर वह घर छोड़कर चली जाती है और रतनपुर स्टेशन में टिकट न होने के कारण उसे स्टेशन मास्टर के हाथ में सौंप दिया जाता है। यहीं से उसके बुरे दिन की शुरूआत हो जाती है। अनेक भीषण परिस्थितियों का सामना करते हुए वह वेश्या कुंदन के कोठे पर पहुँच जाती है। वेश्या कुंदन उसे अपने कोठे पर शरण देती है जो कभी रतनपुर की मशहूर वेश्याओं में से एक हुआ करती थी। लेकिन एक लड़के के प्रेम में पड़कर उसने अपनी सारी धन–सम्पति खो दी। जवाहर जब उसके घर में शरण मांगती है तो म नही मन अत्यन्त प्रसन्न हो जाती है और अपनी जगह जवाहर को वेश्या जवाहर बनाने के लिए मजबूर करती है। जवाहर वेश्या होने के बावजूद अपने सतीत्व की हर प्रकार से रक्षा करती है। जवाहर के कोठे पर आने वाले शोहदों में एक मशहूर वकील पन्नालाल का पुत्र मानिक भी शामिल है जो जवाहर से प्रेम करने लगता है और अंत में अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुए उससे विवाह कर वेश्यावृत्ति से मुक्त कराता है।

इस उपन्यास में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी ने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया है और सेवासदन की सुमन के समान जवाहर के सतीत्व को नष्ट नहीं होने दिया। प्रेमचन्दयुगीन अन्य उपन्यासों के समान इस उपन्यास के अंत में लेखक ने वेश्यावृत्ति के समाधान हेतु विवाह को प्रमुख उपाय बताया है। वेश्या जवाहर से विवाह करके न केवल जवाहर का उद्धार होता है बल्कि मानिक भी अपनी खराब आदतों को त्यागकर एक सभ्य पुरूष बन जाता है। इस प्रकार उग्र जी ने यहाँ केवल वेश्या पात्र का ही उद्धार नहीं किया बल्कि वेश्या जवाहर के माध्यम से नायक के चरित्र का उद्धर कराके एक क्रांतिकारी कदम उठाया है। इसी कारण डॉ0 रत्नाकर पाण्डेय लेखक के सुधारवादी दृष्टिकोण की प्रशंसा करते हुए कहा है कि–

'''उग्र' ने इस उपन्यास में सामाजिक रूढ़िवादी वर्ग का यथातथ्य चित्रण ही नहीं किया है, हमारी सामाजिक चेतना में नई क्रांति का संकेत भी किया है। 'उग्र' का समाजदर्शन एवं विचारचिंतन तिक्त सत्य की सुधारवादी नेतृत्व की क्षमता से मंडित है। शराबी के सभी पात्र जीवन की उदात्त मान्यताओं से स्खलित होकर समाज की अँधेरी गलियों में भूल भटककर कहीं पथभ्रष्ट नहीं हो पाते।''[21]

साथ ही लेखक का उद्देश्य पाठकों को यह भी बताना था कि अगर संतान को अपने संरक्षकों का उचित संरक्षण न मिले तो उन्हें विवश जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसी कारण लेखक ने पाठकों को सचेत करते हुए कहा है कि–

''ऐ शराब को गले लगाने वालो, बचो इससे! यह वह नशा है जो अच्छे से अच्छे इन्सान को शैतान की भट्ठी में बरबस ले जाकर झोंक देता है। वह सनक है जिसमें आदमी अपने खानदान को, ईमान को और भगवान तक को भूल जाता है। यह भले आदमियों के पीने की चीज नहीं, यह शरारत का पानी है, सत्यानाश का प्रबल प्रवाह है।''[22]

## अप्सरा (1931)–

'अप्सरा' की रचना सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा एक वेश्यापुत्री कनक एवं उच्चकुलोत्पन्न नायक राजकुमार की प्रेम कहानी को आधार बनाकर की गई है। उपन्यास में लेखक ने एक वेश्या पुत्री कनक को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है जो वेश्या की कोख से उत्पन्न हुई है। लेखक कनक एवं उसकी माता वेश्या सर्वेश्वरी का परिचय इस प्रकार कराते हैं–

''कनक गंधर्व कुमारिका थी। उसकी माता सर्वेश्वरी बनारस की रहने वाली थी। नृत्य संगीत में वह भारत में प्रसिद्ध हो चुकी थी। बड़े–बड़े राजा महाराजा जलसे में उसे बुलाते उसकी बड़ी खातिर करते थे। इस तरह सर्वेश्वरी ने अपार सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। उसने कलकत्ता के बहूबाजार में आलीशान अपना एक खास मकान बनवा लिया था, और व्यवसाय की वृद्धि के लिए उपार्जन की सुविधा के विचार से प्रायः वहीं रहती भी

थी। सिर्फ बुढ़वा–मंगल के दिन तवायफों तथा रईसों पर अपने नाम की मुहर अर्जित कर लेने के विचार से काशी आया करती थी। वहाँ भी उसकी एक कोठी थी।''[23]

इस तरह हम यहाँ देखते हैं कि कनक एवं उसकी माँ की आर्थिक स्थिति अच्छी है और उसने गायन, संगीत एवं शिक्षा में श्रेष्ठतव प्राप्त कर लिया है। वह जयनगर के महाराज रणजीत सिंह की पुत्री है किन्तु वेश्या की कोख से जन्म लेने के कारण उसे राजपुत्री के कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं होंगे। प्रायः समाज एवं स्वयं उनके पिता भी वेश्या की कोख से जन्म लेने के कारण उन्हें अपनाने से इंकार कर देते हैं। अतः उनके पास वेश्यावृत्ति के बजाय कोई अन्य उपाय शेष नहीं रह जाता है। यही कारण है कि उपन्यास की नायिका कनक भी अपनी माँ वेश्या सर्वेश्वरी के पेशे को अपनाने के लिए मजबूर है। उसकी माँ भी नृत्य एवं संगीत में उसे पारंगत करती है जिससे वह उसके बुढ़ापे का सहारा बन सके। इसलिए अपने पेशे की खूबियाँ बताते हुए वह उसको समझाती है–

''किसी को प्यार मत करना। हमारे लिए प्यार करना आत्मा की कमजोरी है, यही हमारा धर्म नहीं।''[24]

कनक अपनी माँ से किसी से प्रेम नहीं करने का वादा नहीं करती है। लेकिन वह अपने वादे पर ज्यादा दिन टिक नहीं पाती है और नाटक में शकुन्तला के अभिनय के दौरान उसे राजकुमार से प्रेम हो जाता है। राजकुमार भी उससे प्रेम करने लगता है किन्तु जब उसे कनक के वेश्यापुत्री होने की सच्चाई का पता चलता है तब वह उसे छोड़कर चला जाता है। आगे चलकर अनेक नाटकीय परिस्थिति से गुजरते हुए अंततः उसका विवाह कनक के साथ हो जाता है और दोनों सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। वस्तुतः सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का उद्देश्य उपन्यास के माध्यम से एक प्रेमकथा की रचना एवं उसका सुखमय अंत दिखाना था न कि वेश्या जीवन एवं उनकी समस्याओं का वर्णन करना। लेकिन उपन्यास के अंत में कनक का विवाह राजकुमार के साथ संपन्न कराकर उन्होंने वेश्याओं के प्रति एक आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। साथ यह

भी बताने का प्रयास किया है कि भले ही वेश्या कैसी हो लेकिन उसके अंदर भी प्रेमभाव एवं समर्पण की भावना होती है और वह भी किसी से निष्कपट प्रेम कर सकती है। उपन्यास की नायिका कनक में लेखक ने इन्हीं गुणों का चित्रण किया है।

## पतिता की साधना (1936)–

'पतिता की साधना' भगवती प्रसाद वाजपेयी द्वारा विधवा समस्या को आधार बनाकर लिखा है। लेखक ने इसमें यह दिखाया है कि किस प्रकार एक विधवा स्त्री पूरे परिवार एवं समाज के लिए बोझ बन जाती है और अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर होती है। सती प्रथा के समाप्त हो जाने के बावजूद हमारे समाज में आज भी स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। उपन्यास की प्रमुख पात्र नन्दा एक ऐसी ही बालविधवा है जिसके पति की मृत्यु यमुना की धारा में बह जाने के कारण हो जाती है। नन्दा का अभी तक गौना ही हुआ था और न ही दोनों एक–दूसरे से मिले थे। नन्दा के घर वालों को जब उसके पति के मृत्यु की सूचना मिली तो उस समय घरवालों एवं अबोध बालविधवा की क्या स्थिति थी इसका अत्यन्त मर्मान्तक वर्णन लेखक ने किया है–

''नन्दा के जीवन में वह क्षण उसी प्रकार का था। घर में माँ नहीं थी, भाभियाँ थीं। वे जब एकदम से रो पड़ी, तो नन्दा ने जाना कि कुछ अनिष्ट हो गया है। फिर प्रगट हुआ कि नन्दा जिसके साथ ब्याही गयी थी, वही ठीक वही (कोई और पुरूष नहीं) नहीं रहे, उन्हीं का देहांत हो गया है।''[25]

इस तरह एक अबोध बच्ची जिसकी उम्र अभी खेलने–कूदने की है, कम उम्र में विधवा हो जाती है और अनेक सामाजिक बंधनों में जकड़ दी जाती है। जबकि उसमें नन्दा की कोई गलती नहीं है। आगे चलकर जब पति की मृत्यु के कई वर्ष पश्चात् वह अपनी ननद चंद्रमुखी के विवाह में कामकाज संभालने हेतु अपने ससुराल जाती है। जहाँ उसकी मुलाकात हरि से होती है और विवाह के दौरान उनमें प्रेम संबंध स्थापित हो जाता है। आगे चलकर दोनों में प्रेम इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि नन्दा गर्भवती हो जाती है और यही आगे चलकर उसके पतन का कारण बनता है। अवैध गर्भधारण एवं

विधवा होना नन्दा को वेश्यावृत्ति की ओर ले जाता है। वह अपने मातृत्व प्रेम के कारण वह अपने बच्चे की हत्या नहीं कर पाती है और दूसरी ओर अवैध गर्भधारण के कारण वह अपना घर छोड़ने के लिए मजबूर है। घर में उसकी भौजाईयों का व्यवहार भी नन्दा के प्रति अच्छा नहीं रहता है। इसके अतिरिक्त उसके भाई भी नन्दा एवं उसके आने वाले बच्चे के आर्थिक भार उठाने में असमर्थता व्यक्त करते हुए एवं लोक लाज के भय से उसे प्रयाग के मेले में छोड़ देते हैं। निराश्रित होकर वह वेश्यालय का आश्रय लेने के लिए मजबूर होती है और कानपुर के मूलगंज नामक वेश्याबस्ती में नन्दा से वेश्या माया बन जाती है। वह एक अशोक नामक पुत्र को जन्म देती है जिसे पढ़ने के लिए गुरूकुल भेज दिया जाता है। आगे चलकर अनेक नाटकीय परिस्थितियों से गुजरते हुए हरि नन्दा से मिलता है और अंत में नन्दा से विवाह कर अपनी पत्नी और पुत्र दोनों को घर लाता है।

लेखक ने उपन्यास में हरि के माध्यम से एक आदर्शवादी एवं समाज सुधारक पात्र का गठन किया है जो उपन्यास के अंत में बाल विधवा एवं वेश्या से विवाह करके समाज सुधार की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम उठाता है। यहाँ तक कि वह अपनी रूढ़िवादी माँ को भी अपने एवं नन्दा के विवाह को स्वीकार करने के लिए मजबूर करता है–

''कहाँ हो अम्मा! अभी तक तुम मुझे खोजती थीं, आज मैं तुम्हें खोजता हूँ। उस दिन तुम सस्ती छूट सकती थीं। लेकिन शायद तुमने यह न सोचा था कि हरि उस पाखण्डी समाज के लिए कैसा विद्रोही बन गया है। उस समय तुम विधवा ब्याह की बात सुनकर चौंक पड़ी थीं। आज इस बहू को नहीं अपने इतने सयाने नाती को भी तुम्हें अपनाना होगा।''[26]

इस प्रकार हरि के आगे उसकी रूढ़िवादी माँ को भी झुकना पड़ता है और अंततः समाज की परवाह किए बगैर वह अपने बेटे, बहू एवं नाती को सहर्ष अपना लेती है। उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि विवाह ही वह माध्यम है जिससे विधवा एवं वेश्या का उद्धार संभव है। साथ ही इस उद्देश्य को सफल बनाने

के लिए हरि जैसे आदर्श पात्रों का होना अत्यन्त आवश्यक है जो समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सके।

## चम्पाकली (1935)–

ऋषभचरण जैन द्वारा रचित 'चम्पाकली' वेश्या जीवन को आधार बना कर लिखा गया है। इस उपन्यास में लेखक ने वेश्या जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। प्रायः प्रेमचन्दयुगीन लेखकों ने वेश्याओं के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाया है और उपन्यास के अंत में वेश्या जीवन हेतु समाधान भी प्रस्तुत किया है। स्वयं ऋषभचरण जैन भी वेश्या जीवन पर केन्द्रित अपने उपन्यास 'वेश्यापुत्र' में वेश्या कमलो का कथानक के अंत में विवाह कराकर आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाया है किन्तु 'चम्पाकली' में आकर लेखक ने पूर्णतया यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। 'चम्पाकली' में लेखक ने वेश्या चम्पाकली के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि एक वेश्या भी किसी व्यक्ति से सच्चा प्रेम कर सकती है। उपन्यास की नायिका वेश्या चम्पाकली अपने यहाँ आने वाले ग्राहक रामदयाल से अत्यन्त प्रेम करती है और सब कुछ छोड़कर उसके साथ गृहस्थी बसाना चाहती है। यहाँ तक कि वेश्या होने के बावजूद वह उससे धन की भी आकांक्षा नहीं करती है बल्कि उससे प्रेम चाहती है। यही कारण है कि जब रामदयाल उसके साथ रात गुजारने हेतु पाँच सौ का नोट देता है किन्तु वह उसे लेने से इंकार करती हुई कहती है–

''हाँ मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। मैं जानती हूँ मुझे किसी को प्यार करने का अधिकार नहीं। मेरा यह अधिकार छिन चुका है। कोई मेरी बात पर यकीन नहीं कर सकता लेकिन सच मैं रण्डी बनकर तुम्हारे साथ नहीं सोई मेरे प्यारे मैं तुम्हारी बनकर यहाँ रही हूँ और मुझे इसके एवज में धन दौलत की ख्वाहिश सर्वथा नहीं है।''[27]

ऋषभचरण जैन ने उपन्यास में वेश्या जीवन का यथार्थ चित्रांकन किया है। इस कारण वे किसी पात्र के माध्यम से वेश्या चम्पाकली का उद्धार नहीं कराते बल्कि वह यह बताने का प्रयास करते हैं कि एक पुरूष के लिए वेश्या सिर्फ वेश्या होती है और उसके

प्रति किसी को कोई सहानुभूति नहीं होती है। उपन्यास का नायक रामदयाल भी चम्पाकली के प्रेम को समझ नहीं पाता है और वह उसे वेश्या के रूप में ही देखता है जिसका मुख्य कार्य अपने ग्राहकों को संतुष्ट करना है। चम्पाकली का पिता भी उसे यही समझाता है कि उसका उद्देश्य सिर्फ अपने ग्राहकों को खुश करना है और धन कमाना है न कि किसी से प्रेम करना और उसके साथ गृहस्थी बसाना। चम्पाकली के इस व्यवहार से परेशान होकर वह कोठे पर आने वाले ग्राहकों को उसकी स्थिति बताते हुए कहता है कि–

''क्या बताऊँ साहब, किस्मत फूट गई। बहुतेरा समझाया, मगर एक समझ में न आई। मैंने कहा तू रण्डी है, तुझे इन बातों से क्या वास्ता– तू गा, बजा, लोगों का दिल खुश कर। लेकिन वह जैसे एक कान से सुनती है, दूसरे कान उड़ा जाती है।''[28]

चम्पाकली वेश्या व्यवसाय को आर्थिक कारणों से अपनाती है इसलिए उसका पिता उसे समझाता है कि अगर वह वेश्या व्यवसाय छोड़कर रामदयाल के प्रेम में उदास बैठी रहेगी तो कैसे काम चलेगा? वह अपना कर्ज कैसे चुकायेगें और अपना पेट कैसे भरेगें? अपनी आर्थिक परवशता को देखते हुए चम्पाकली अपने अन्य ग्राहकों के सामने शराब पीने एवं गाना गाने के लिए मजबूर होती है किन्तु वह मन ही मन प्रेम रामदयाल से करती है। इसी कारण जब रामदयाल का चचेरा भाई शीतलभाई धोखे से रामदयाल को जहर पिलाकर उसके हस्ताक्षर लेने के लिए चम्पाकली से कहता है तो वह साफ मना कर देती है। भले ही वह वेश्या है लेकिन प्रेम तो वह रामदयाल से करती है और ऐसे कोई भी घृणित कार्य करने से मना कर देती है जिसके लिए शीतलभाई उसको प्रलोभन देता है। इस कारण उपन्यास के अंत में जब शीतलभाई जहर पिलाकर मारने लगता है तो चम्पाकली उसके इस कार्य का विरोध करती है। जिसके कारण शीतलभाई अपने गुण्डों को उसकी जीभ और नाक काटने का आदेश देता है और उसे भीख मांगने के लिए प्रेरित करता है।

इस प्रकार उपन्यास के अंत में लेखक ने अपने समकालीन अन्य उपन्यासकारों के समान वेश्या का उद्धार नहीं कराया बल्कि उसे अपने हाल पर जीने के लिए मजबूर कर दिया और इस ओर संकेत किया कि समाज में वेश्या का स्थान हमेशा कोठे की शोभा बढ़ाना है न कि किसी से प्रेम करना। अगर वह अपनी सीमाओं को लांघने का प्रयास करती है तो उसका हाल चम्पाकली की तरह होता है। साथ ही लेखक ने चम्पाकली के माध्यम से उपन्यास में एक ऐसे वेश्या पात्र का सृजन किया है जो सिर्फ वेश्या नहीं है जिसका उद्देश्य केवल धन कमाना है बल्कि वह वेश्या होने के बावजूद एक स्त्री भी है जो किसी सच्चा प्रेम करती है और उस प्रेम के खातिर अपना पूरा जीवन दाँव पर लगा देती है।

## (ग) प्रेमचन्दोत्तरयुगीन हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन–

प्रेमचन्दोत्तर युग भारतीय समाज एवं साहित्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द के पश्चात् भारत में तथा विश्व में बहुत सारे परिवर्तन देखने को मिलते हैं। जहाँ एक ओर विश्व दूसरे विश्वयुद्ध से जूझ रहा था वही दूसरी ओर भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन एवं अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन जारी था। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् देश में अनेक समस्याएँ जैसे साम्प्रदायिक दंगे, जमींदारी प्रथा का अंत, शरणार्थियों की समस्या, अकाल, निर्धनता, बेकारी आदि विद्यमान थी जिसका सामूहिक प्रभाव इस युग के साहित्य एवं समाज पर पड़ा। इस युग में सदियों से उपेक्षित नारी जीवन को भी एक नई दिशा मिली। अब वे शिक्षित होने का प्रयत्न करने लगी एवं अपनी स्थिति को सुधारने हेतु तत्पर हुई। सामान्य स्त्रियों की तरह इस युग के वेश्या पात्रों का भी एक अलग रूप हमारे समक्ष आता है। प्रेमचन्दोत्तरयुगीन वेश्या पात्र संघर्षशील एवं विद्रोही हैं। वह अपनी परिस्थितियों से एवं समाज से संघर्ष करती हैं जिसके फलस्वरूप उन्हें वेश्यावृत्ति को अपनाना पड़ा। इस युग में वेश्या जीवन एवं उनकी समस्याओं को आधार बनाकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

## जीवन की मुस्कान (1939)–

उषादेवी मित्रा ने स्त्री जीवन के सभी रूपों को उपन्यास का विषय बनाया है। वेश्या जीवन को आधार बनाकर उन्होंने 'जीवन की मुस्कान' नामक उपन्यास की रचना की है। इस उपन्यास में लेखिका ने 'पूरवीबाई' नामक वेश्या के माध्यम से एक वेश्या एवं उसके परिवार के सामने आने वाली कठिनाईयों का वर्णन किया है। लेखिका ने उपन्यास में यह बताने का प्रयास किया है कि कोई भी स्त्री वेश्या व्यवसाय में अपनी इच्छा से नहीं आती है और किसी कारणवश वह इस पेशे को अपनाती है तो उसके परिवार को भी अत्यधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। 'पूरवीबाई' ऐसी ही वेश्यापात्र है जो आर्थिक कारणों से वेश्यावृत्ति को अपनाती है और उसी धन से अपने पिता एवं बहनों का पालन–पोषण करती है। इस पेशे के कारण उसके परिवार को भी अत्यधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि पूरवी की बहन का पति उसे सिर्फ इसलिए त्याग देता है क्योंकि उसकी बहन वेश्या व्यवसाय में लिप्त है। अपनी बहन की करूण स्थिति पृथीश को बताते हुए वह कहती है कि–

''मेरे ही लिए तो उस बेचारी को पति ने छोटे बच्चों के साथ त्याग दिया। उसे पता चल गया कि उसकी बहन वेश्या है। और एक मेरे ही कारण क्वाँरी है। वेश्या की बहन को कौन ब्याहने लगा।''[29]

वेश्या पूरवी जहाँ एक ओर वेश्या व्यवसाय करके अपना घर चलाती है वही दूसरी वह मन ही पृथीश से प्रेम भी करती है। साथ ही उसके मन में मातृत्व की लालसा भी है। उसकी यह लालसा है कि उसके होने वाले बच्चे को समाज में सम्मान मिले जो कि किसी वेश्यापुत्र को मिलना असंभव है। वह डॉ0 कमलेश से अपनी इस पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि–

''वही तो मेरे इस नारी जीवन का अमोघ उपहास है डॉक्टर, और है अभिशाप। कहना तो मैं किसी से कुछ न चाहती थी, किन्तु इस जीवन के अन्त में जब तुम पूछ ही बैठे, तो कहना पड़ रहा है कि स्टेथिस्कोप से तुम इस हृदय का स्पन्दन सुना करते हो। यदि

मनोयोग से सुनते तो सुन पाते कि वेश्या जीवन का लांछित मातृत्व किस हाहाकार से व्याकुल वेदना, निष्फल क्रोध से सदा सिर पीटा करता है। माँ बनने के लिए मैं एक दिन दुनिया में आई थी और बन गई राक्षसी।''[30]

लेखिका ने यहाँ स्पष्ट किया है कि एक वेश्या के पास भी हृदय होता है जो प्रेम करना चाहता है और विवाह करके मातृत्व की लालसा को पूर्ण करना चाहता है। वेश्या पूरवी यह जानती है कि उसके माँ बनने एवं प्रेम करने की इच्छा कभी पूरी नहीं हो सकती है। वह अपने जीवन के अंत में पृथीश से प्रेम करने के बावजूद उसका विवाह अपनी छोटी बहन अनीता से करा देती है जिससे उसकी बहन का जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो सके और आगे चलकर मजबूरीवश उसे इस पेशे को न अपनाना पड़े। इस प्रकार लेखिका ने पृथीश को आदर्श पात्र के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है जो सब कुछ जानते हुए भी अनीता को अपनी पत्नी स्वीकार करता है। साथ ही लेखिका ने पूरवी जैसी संघर्षशील एवं आदर्श वेश्या पात्र का चित्रण किया जो अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् पूरे घर का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेती है और जीवन के अंत तक अपने परिवार के लिए अपना सबकुछ त्याग देती है।

## पर्दे की रानी (1941)–

इलाचन्द्र जोशी द्वारा रचित 'पर्दे की रानी' वेश्या माँ एवं हत्यारे पिता की पुत्री निरंजना की कहानी है। निरंजना अन्य लड़कियों के समान कॉलेज जाती है और अध्ययन करती है। माता की हत्या एवं पिता के जेल जाने के पश्चात् बैरिस्टर मनमोहन उसके संरक्षक बन जाते हैं। किन्तु निरंजना के वेश्यापुत्री होने के कारण वह अपनी पुत्रियों को उससे दूर रखते थे। किन्तु मनमोहन एवं विदेश से पढ़कर आया हुआ उनका पुत्र इन्द्रमोहन निरंजना पर आसक्त हैं। निरंजना का वेश्यापुत्री होना सबसे बड़ा पाप है। साथ ही समाज का उसके प्रति उदासीन व्यवहार उसके अंदर और हीन भावना उत्पन्न कर देता है। अपनी इस हीनभावना से मुक्ति पाने के लिए वह अहं का सहारा लेती है और इन्हीं दोनों तत्वों के कारण उसको जीवन में कभी भी सामंजस्य और मानसिक शांति

नहीं मिलती है। यह हीन भावना उसके इतने अंदर तक प्रवेश कर जाती है कि वह समाज के प्रति घृणा और प्रतिहिंसा का भाव रखने लगती है। इसी हीनभावना एवं प्रतिहिंसा की इस द्विधा में वह एक ओर अपनी सहेली शीला के पति इन्द्रमोहन के प्रति आकर्षित होती है तो दूसरी ओर अपने रूप दर्शन हेतु उसे तड़पाने में अत्यन्त शान्ति मिलती है। इसी कारण जब इन्द्रमोहन उसे जब नुमाइश में चलने का प्रस्ताव देता है तो वह सहर्ष स्वीकार कर लेती है। लेकिन वहाँ होटल में खाना खाने के बहाने होटल में लेकर जाता है और अनुचित कृत्य करने का प्रयास करता है तब वह इसे स्वीकार नहीं कर पाती और वहाँ से भाग निकलती है। अपने इस विरोधी व्यवहार का विश्लेषण करती हुई वह स्वयं सोचती है कि–

''मेरे भीतर वेश्या के संस्कार पूर्ण मात्रा में वर्तमान हैं। यदि ऐसा न होता तो मैं इन्द्रमोहनजी को अपनी भाव–भंगिमा से उस तरह रिझाने की चेष्टा न करती और उन्हें इच्छानुसार अकारण परेशान करने पर उतारू न होती, नुमाइश में उनके साथ अकेले जाने के लिए तैयार न होती, और होटलवाली घटना और उसके बाद की दुर्घटना का कारण न बनती। निश्चय ही मैं एक वेश्या की अधम लड़की हूँ। अब मेरी समझ में यह बात आ रही है क्योंकि माँ सब समय पुरूष समाज से घिरी रहती थीं और क्यों बहुत कम स्त्रियाँ माँ से मिलने आती थीं।''[31]

वेश्यापुत्री होने के कारण समाज में निरंजना को जो अपमान सहना पड़ता है उसके कारण वह मन ही मन प्रतिशोध और विद्रोह की भावना से युक्त रहती है। वहीं दूसरी ओर उसका अवचेतन मन स्नेहमयी शीला को माँ के प्रतीक के रूप में ग्रहण करता है। इसलिए वह शीला के प्रति एक ओर प्रेम भावना रखती है वहीं दूसरी ओर उसमें शीला के प्रति प्रतिशोध की भावना भी है। इसी कारण वह उसके पति इन्द्रमोहन को अपने प्रेमजाल में फँसाती है और उसे यह संकेत भी देती है कि–

''जब तक शीला जीवित है तब तक आप मुझसे हर्गिज इस तरह की आशा न करें–यह असंभव है।''[32]

निरंजना के प्रेम में पड़कर वह अपनी पत्नी शीला को जहर देकर मार डालता है और निरंजना के पास मेरठ आ जाता है। वह निरंजना के साथ प्रेम संबंध स्थापित करता है जिसके फलस्वरूप वह गर्भवती हो जाती है। निरंजना से प्रेम संबंध स्थापित करने के बाद वह उसे की मृत्यु के विषय में बताता है और स्वयं रेल से कूदकर जान दे देता है। उपन्यास के अंत में लेखक निरंजना के अवैध मातृत्व को उसके गुरू चन्द्रशेखर गुप्त के माध्यम से गौरव प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने वेश्यापुत्री एवं जीवन में उसके समक्ष आने वाली कठिनाईयों को मनोवैज्ञानिक ढंग से पाठकों के समक्ष रखा है। साथ ही अवैध गर्भ के प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाकर लेखक ने अत्यन्त सराहनीय प्रयास किया है।

## तीन वर्ष (1944)–

भगवतीचरण वर्मा द्वारा रचित तीन वर्ष एक सामाजिक उपन्यास है। यह उपन्यास मुख्यतः वेश्या जीवन पर केन्द्रित नहीं है। किन्तु लेखक ने सरोज नामक वेश्या पात्र के माध्यम से वेश्या जीवन से पाठकों को परचित कराने का प्रयास किया है। उपन्यास की वेश्या पात्र सरोज वेश्यापुत्री है। उसकी माँ भी वेश्या व्यवसाय में लिप्त थी। उसकी माँ सरोज से वेश्यावृत्ति नहीं कराना चाहती है लेकिन परिस्थितिवश सरोज को अपनी पढ़ाई छोड़कर वेश्यावृत्ति अपनाना पड़ता है। वेश्या बनने के कारणों एवं अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करती हुई रमेश को वह बताती है कि–

''बुरा लगा। रमेश बाबू। मैं न जाने कितना रोई हूँ। न जाने कितना तड़पी हूँ। लेकिन क्या करती, जो कुछ भगवान ने दिया वह लेना ही पड़ा। मैं सच कहती हूँ कि मेरी माँ भी दुखी हुई। इसी दुख में वह घुल–घुल कर मर गई। लेकिन होता क्या है? धीरे–धीरे मैं आदी हो गई।''[33]

लेखक ने उपन्यास में यह बताने का प्रयास किया है कि वेश्या हमेशा वेश्या ही रहती है अगर वह किसी से सच्चा प्रेम भी करती हैं लेकिन उसके बावजूद समाज उसको वेश्या के रूप में ही देखता है और अपनाने से इंकार कर देता है। वेश्या सरोज

उपन्यास के नायक रमेश से सच्चा प्रेम करती है और वेश्यावृत्ति छोड़कर अपना सम्पूर्ण जीवन उसके साथ व्यतीत करना चाहती है। लेकिन रमेश समाज का प्रतिनिधि बनकर हमारे समक्ष आता है और वह सरोज का प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है। उपन्यास के अंत में वेश्या सरोज अपनी मृत्यु से पूर्व अपनी सारी सम्पत्ति रमेश के नाम कर देती है। इस प्रकार उपन्यास में लेखक का उद्देश्य वेश्या जीवन का वर्णन करना नहीं था इसलिए उन्होंने वेश्या जीवन के सुधार हेतु कोई उपाय नहीं बताया है लेकिन पूरे उपन्यास के दौरान लेखक ने वेश्याओं के प्रति उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है।

## प्रेत और छाया (1944)–

इलाचन्द्र जोशी द्वारा लिखित 'प्रेत और छाया' उपन्यास पारसनाथ नामक एक ऐसे व्यक्ति को आधार बनाकर लिखा गया है जो एक वेश्यापुत्र होने के कारण हीन भावना से ग्रस्त है। उपन्यास के अन्तर्गत लेखक का मुख्य उद्देश्य मंजरी, नंदिनी और हीरा नामक वेश्या पात्रों के माध्यम से पारसनाथ के मन की गुत्थियों को सुलझाना था। लेखक ने मंजरी, नंदिनी और हीरा के वेश्या बनने के अलग–अलग कारणों पर प्रकाश डाला है। मंजरी जहाँ आर्थिक परवशता के कारण इस पेशे को अपनाती है, वहीं नंदिनी और हीरा खानदानी वेश्या है। व्यभिचारिणी माँ की संतान होना पारसनाथ के मन में हीन भावना उत्पन्न कर देती है जिससे वह हर स्त्री को कुलटा मानता है और उनसे प्रेम संबंध स्थापित कर बाद में उन्हें छोड़ देता है। नंदिनी उससे धोखा खाने के बाद पुनः वेश्या व्यवसाय को अपना लेती हैं जबकि मंजरी स्वयं को शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनती है। वह डॉक्टरी की परीक्षा पास कर लोगों की सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर देती है। लेकिन जैसे ही पारसनाथ को अपनी माँ के व्यभिचारिणी नहीं होने का पता चलता है वह अपने आप में पूर्णतया सुधार लाता है और हीरा से विवाह करता है। साथ ही उपन्यास के अंत में सभी पात्र समाज सेवा के कार्य में स्वयं को समर्पित कर देते हैं।

उपन्यास में लेखक ने वेश्या जीवन के सुधार हेतु दो समाधान विशेष रूप से बताए हैं जिनमें पहला स्त्री शिक्षा है और दूसरा विवाह। लेखक ने उपन्यास के अन्तर्गत स्त्री शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया है। इस कारण वह उपन्यास की वेश्या पात्र मंजरी को पारसनाथ से धोखा खाने के पश्चात् उसे वेश्या व्यवसाय में पुनः नहीं जाने देते। बल्कि उसकी शिक्षा पूरी कराकर आत्मनिर्भर बनाते हैं और समाज कार्य की ओर अग्रसर करते हैं। उपन्यास के अंत में अपनी शिक्षा एवं आत्मविश्वास के बल पर वह पारसनथ को चुनौती देती हुई कहती है कि–

''इसके अलावा तुम उसी सनातन पुरूष समाज के नवीन प्रतिनिधि हो, जिसने युगों से नारी को छल से ठगकर, बल से दबाकर, विनय से बहकाकर और करूणा से गलाकर उसे हाड़माँस की बनी निर्जीव पुतली का रूप देने में कोई बात उठा नहीं रखी है। पर याद रखो विश्वव्यापी क्रान्ति के इस युग में आततायी और कामाचारी पुरूष जाति की सत्ता अब निश्चित रूप से मूलतः ढहने को है, और युगाों से दलित नारी जाति आज तक अपनी छायात्मकता के भीतर भी शक्ति का जो महाबीज सुरक्षित रखे हुए थी। उसके विस्फोट को दबाने की समर्थता अब ब्रह्मा में भी नहीं रह गई है।''[34]

इसी प्रकार उपन्यास में लेखक ने जहाँ वेश्या हीरा का विवाह कराकर उसे वेश्या जीवन से मुक्त कराने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर पारसनाथ के मन में व्याप्त हीन भावना को दूर करने का प्रयास किया है। इस प्रकार यह उपन्यास वेश्या जीवन पर केन्द्रित न होने के बावजूद वेश्या जीवन के कारणों एवं उससे जुड़े समाधान पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

## दिव्या (1945)–

दिव्या हिन्दी के प्रमुख मार्क्सवादी लेखक यशपाल का अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास है। लेखक ने इतिहास के आवरण में वर्तमान की व्याख्या प्रगतिवादी दृष्टिकोण से किया है। इसका संकेत स्वयं लेखक ने उपन्यास के प्राक्कथन में दिया है। जैसा कि–

'' 'दिव्या' इतिहास नहीं ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। लेखक ने कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है।''[35]

उपन्यास की नायिका दिव्या द्विजकुलोत्पन्न है जो दासपुत्र पृथुसेन से प्रेम करती है। किन्तु पृथुसेन उसका उपभोग कर एवं उसे गर्भवती कर छोड़कर चला जाता है। दिव्या अपनी होने वाली संतान को अवैध नहीं मानती लेकिन समाज को उसका गर्भ स्वीकार्य नहीं होता। जिसके फलस्वरूप दिव्या अपना नगर छोड़ने के लिए मजबूर होती है और कई दास व्यापारी जैसे प्रतुल, भूधर एवं चक्रधर के चंगुल में फँस जाती है। दास जीवन की असह्य यंत्रणाओं से गुजरते हुए वह बौद्ध धर्म की शरण में जाती है किन्तु दासी होने के कारण वह वहाँ भी अस्वीकार्य है क्योंकि बौद्ध धर्म में शरण लेने हेतु स्वामी का आज्ञा आवश्यक थी। हर जगह अस्वीकार एवं परतंत्रता का बोध होने पर दिव्या यह सोचती है कि वेश्या ही सर्वत्र स्वतंत्र है। जैसा कि–

''परतंत्र होने के कारण उसके लिए कहीं शरण और स्थान नहीं। दासी होकर वह परतन्त्र हो गयी?– वह स्वतन्त्र थी ही कब? अपनी संतान को पा सकने की स्वतंत्रता के लिए ही उसने दासत्व स्वीकार किया। अपना शरीर बेच कर उसने इच्छा को स्वतन्त्र रखना चाहा। परन्तु स्वतन्त्रता मिली कहाँ? केवल वेश्या स्वतन्त्र नारी है। अपनी संतान के लिए वह स्वतन्त्र होगी।''[36]

यही से दिव्या राजनर्तकी रत्नप्रभा की शरण में पहुँचकर दिव्या से अंशुमाला के रूप में प्रसिद्ध होती है और वेश्या के रूप में एक स्वतंत्र जीवन को अपनाती है। यद्यपि लेखक वेश्या के रूप में स्वतंत्र नारी की कल्पना करता है किन्तु वह स्वयं भी इस विषय में संशकित हैं। अपनी यह शंका वह मारिश के द्वारा दिव्या के समक्ष रखते हैं–

''यदि कुलवधू एक पुरूष की भोग्या है तो जनपद कल्याणी वेश्या सम्पूर्ण जनपद और समाज की तृप्ति का साधन है वह जन–जन को कामना का संकेत देती है और उसके मूल्य में जीवन के भोगों का साधन केवल धन पाती है। इसके अतिरिक्त और क्या?

वेश्या जीवन की गति अर्थात् 'काम' का उत्तेजक साधन है, परन्तु परिणाम में स्वयं उसका 'काम' अर्थहीन और वंचित रहता है। उसकी कला दूसरों के जीवन में वासना की पूर्ति के अनुष्ठान के रूप में उपयोगी है, परन्तु वह स्वयं क्या पाती है? वह काम के यज्ञ का साधन मात्र है। वह स्वयं पूर्ति के भविष्य से वंचित है उसकी स्वतन्त्रता का भोग जन करता है वह स्वयं नहीं। वह केवल वंचना पाती है।''[37]

वह आगे यह भी कहता है–

''जिस नारी को दूसरों की इच्छानुसार कार्य करना पड़े, दूसरों की वासना पूर्ति करनी पड़े, यहाँ तक कि समस्त जनहित की स्वतन्त्रता और तन का भोग करे उस नारी की स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है?''[38]

मारिश के इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर दिव्या रूद्रधीर के महारानी बनाने एवं पृथुसेन द्वारा बौद्ध संघ में आने की प्रार्थना अस्वीकार कर मारिश के संगिनी बनकर सहजीवन व्यतीत करना स्वीकार करती है क्योंकि यहाँ पर किसी प्रकार का बंधन नहीं है और न ही मान अपमान का डर। इस प्रकार उपन्यास के अंत में लेखक ने नारी को किसी बंधन में न बांधकर उसे स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। इस कारण दिव्या सामाजिक परम्पराओं को तोड़कर मारिश के सहजीवन के प्रस्ताव को स्वीकार करती है। प्रेमचन्दयुगीन वेश्याओं से लेकर प्रेमचन्दोत्तर युग में ऐसी वेश्याएँ कम ही मिलती हैं जिन्हें लेखकों ने स्वतंत्र नारी के रूप में देखा हो। यशपाल ने अपने उपन्यास में ऐसा ही किया है। जैसा कि–

''दिव्या के माध्यम से यशपाल का यह निष्कर्ष है कि नारी न तो मंदिर की देवी बनना चाहती है और न महल की बंदिनी बल्कि वह सहजीवन चाहती है। पुरूष के सच्चे साथी और सहयोगी के रूप में।''[39]

## घरौंदा (1946)–

घरौंदा रांगेय राघव द्वारा रचित एक सामाजिक यथार्थपरक उपन्यास है। उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने वेश्या नादानी के माध्यम से यह संकेत किया है कि आधुनिक युग की वेश्याएँ अपनी पतितावस्था के प्रति सजग हो उठी हैं। वह यह जानने लगी हैं कि उनकी ऐसी स्थिति क्यों है? उपन्यास की वेश्या पात्र एक बाल विधवा है। उसके चाचा जी उसे धोखे से कुम्भ के मेले में छोड़कर चले जाते हैं जहाँ वह कुछ गुण्डों के हाथ में पड़कर पतित हो जाती है। लेकिन नादानी इस बात को समझती है। उसका यह मानना है कि जो भी उसके साथ हुआ आखिर उसमें उसकी क्या गलती है? उसकी इस अवस्था के पीछे समाज ही दोषी है जो किसी स्त्री के पतित हो जाने पर उसी को दोषी मानता है न कि उस व्यक्ति को जिसके कारण उसकी यह दुर्दशा हुई। लेखक ने नादानी के माध्यम से उच्च वर्ग के पुरूषों की कामुकता एवं विलासी प्रवृत्ति पर जोरदार प्रहार किया है। साथ ही लेखक ने घरेलू या विवाहित स्त्री एवं वेश्या के बीच तुलना करते हुए यह भी बताया है कि वेश्या एवं घरेलू स्त्री में ज्यादा अंतर नहीं है। उपन्यास की वेश्या पात्र नादानी जब कामेश्वर से गर्भवती हो जाती है और उसकी रखैल बनने की इच्छा प्रकट करती हुई कहती है कि–

''रख लो इसलिए कहा कि मुझमें और विवाहित स्त्री में अधिक फर्क नहीं है। बताओ कामेश्वर। एक बार की चोरी उसे सदा के लिए जेल में रख देती है, मुझे बार–बार नई चोरी करनी पड़ती है। अगर तुम्हारी बहिन को डाकू पकड़कर बेइज्जत करें, तो तुम क्या बहिन को कसूरवार साबित करोगे? लेकिन तुम मुझसे नफरत कर सकते हो, क्योंकि तुम्हें मजा जो आता है बाबू।''[40]

नादानी के मनाने के बावजूद कामेश्वर उसे स्वीकार नहीं करता है। लेखक ने उपन्यास में नादानी का विद्रोही स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है जो बिना किसी समाज सुधारक के अपनी लड़ाई खुद लड़ती है। कामेश्वर द्वारा उसे अपनाए न जाने के बावजूद वह उसे याचना नहीं करती है बल्कि उस पर आक्रोश व्यक्त करते हुए कहती है कि–

''रंडी किसी की रिश्तेदार नहीं होती। यह तुम्हारी लड़की नहीं होगी। यह सिर्फ माँ को जान सकेगी पन्द्रह साल की ही तो बात है। आना फिर। तुम्हारी लड़की भी जवाँ हो जाएगी।''[41]

इस प्रकार लेखक ने नादानी नामक वेश्या पात्र के माध्यम से एक ऐसे पात्र का सृजन करते हैं जो समाज की यंत्रणाओं को चुपचाप नहीं सहते बल्कि उसका विरोध भी करते हैं। वह अपनी स्थिति के पीछे के प्रमुख कारणों को जानते हैं इसलिए वे अपने को दोषी ठहराने के बजाय समाज को दोषी ठहराते हैं जो उन्हें ऐसी पस्थिति में ढकेलने के लिए मजबूर करता है।

## वैशाली की नगरवधू (1948)–

वैशाली की नगरवधू आचार्य चतुरसेन शास्त्री का प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें लेखक ने यह बताया है कि उस समय वेश्यावृत्ति समाज द्वारा रक्षित नहीं थी बल्कि उसे राज्य का संरक्षण भी प्राप्त था। उपन्यास की नायिका आम्रपाली एक अवैध संतान है जो वज्जी संघ के शासन में पहरेदार सामंत महानामन् को एक आम्रवृक्ष के नीचे सफेद कपड़ों में लिपटी हुई मिलती है। इसलिए इस कन्या का नाम आम्रपाली रखा गया। आम्रपाली अपूर्व सौन्दर्य, तेज, दर्प, यौवन, विवके एवं साहस से युक्त है। इस कारण उसे वैशाली के विधान के अनुसार राज्य की सबसे सुन्दर स्त्री घोषित किया जाता है और नगरवधू घोषित किया जाता है जो सबके अधिकार की चीज है। आम्रपाली अपने अस्तित्व को लेकर अत्यन्त सजग है इस कारण वह वैशाली के इस कानून का विरोध करते हुए कहती है कि–

''मैं सहस्त्र बार इस शब्द को दुहराती हूँ। यह धिक्कृत कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतन्त्र का कलंक है। मेरा अपराध केवल यह है कि विधाता ने मुझे यह अथाह रूप

दिया। इसी अपराध के लिए आज मैं अपने जीवन के गौरव को लाँछना और अपमान के पंक में डुबो देने को विवश की जा रही हूँ। आप जिस कानून के बलपर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे हैं। वह एक बार नहीं लाख बार धिक्कृत होने योग्य है।''[42]

वह जोरदार ढंग से इस प्रथा का विरोध करती है किन्तु कुछ शर्तों के साथ वह इस कानून को स्वीकार करती है। यद्यपि वह इस कानून को मानने के लिए बाध्य होती है उसके मन में सम्पूर्ण समाज एवं पुरूष वर्ग के प्रति आक्रोश की भावना धधक उठती है। वह स्त्रियों की पराधीनता एवं सामाजिक न्याय का विरोध करती है। लेखक ने आम्रपाली को जहाँ एक ओर अहं भाव से युक्त रखा है वहीं दूसरी ओर उसमें स्त्रीत्व का भाव भी है। वह किसी की पत्नी बनने की आकांक्षा भी रखती है। उपन्यास के अंत में लेखक ने उसे जनकल्याणी के रूप में प्रस्तुत किया है जो अंत में बौद्ध भिक्षुणी बनकर वैशाली राज्य का कल्याण करती है। इस प्रकार लेखक ने आम्रपाली के चित्रण द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति एवं वेश्याओं की दशा पर प्रकाश डाला है। साथ ही यह भी बताया है कि तत्कालीन समाज में वेश्याओं की स्थिति वर्तमान समय की तुलना में बहुत अच्छी थी। उन्हें समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी और वे धन–वैभव से युक्त थी जो आज की वेश्याओं में देखने को नहीं मिलता है।

## सुहाग के नुपूर (1960)–

'अमृतलाल नागर' का 'सुहाग के नुपूर' के माध्यम से वेश्या जीवन एवं उसके यथार्थ को सामने रखा है। 1960 में प्रकाशित 'सुहाग के नुपूर' ईसा की प्रथम शताब्दी में महाकवि 'इलंगोवन' रचित तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' की कथावस्तु पर आधारित है। इसमें लेखक ने प्रेम त्रिकोण को दिखाते हुए यह स्पष्ट किया है कि पुरूष पत्नी को न तो कभी देवी का दर्जा दे सकता है न वेश्या को पत्नी का। लेखक ने उपन्यास की रचना तीन प्रमुख पात्रों को आधार बनाकर की है जिसमें माधवी, कन्नगी एवं कोवलन प्रमुख पात्र हैं। कन्नगी कोवलन की अधिकारिक पत्नी है जबकि माधवी राजनर्तकी है। माधवी हमेशा से कुलवधू का सम्मान एवं सुहाग के नुपूर प्राप्त करने के लिए प्रयास

करती है लेकिन कोवलन सबकुछ करने के बावजूद कन्नगी से लेकर सुहाग के नुपूर माधवी को देने का साहस नहीं कर पाता है। लेकिन इसके बावजूद माधवी विद्रोही बनकर अंत तक सुहाग के नुपूर एवं अपने अधिकारों के लिए लड़ती रहती है लेकिन वह अपने इस प्रयास में सफल नहीं हो पाती और अंत में वह बौद्ध विहार में महास्थविर महाकवि इळंगोवन से कथा सुनने के पश्चात् कहती है कि–

''सारा इतिहास सच सच ही लिखा है, देव! केवल एक बात अपने महाकाव्य में और जोड़ दीजिए– पुरूष जाति के स्वार्थ और दम्भभरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग नारी जाति पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरूष न तो स्त्री को सती बनाकर सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर। इसी कारण वह स्वयं झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है, महाकवि! उसके आँसुओं में अग्नि प्रलय भी समाई है और जल प्रलय भी।''[43]

इस प्रकार अमृतलाल नागर जी ने इस उपन्यास में न केवल वेश्या की व्यथा का वर्णन किया है बल्कि पति के वेश्यागामी होने पर एक सती की क्या दशा होती है, उसका भी सटीक चित्रण किया है। लेखक ने परम्परा से हटते न हुए अंत में यही दिखाने का प्रयास किया है कि वेश्या सदैव वेश्या ही रहती है। भले ही वह कितना विद्रोह कर ले समाज उसे एक कुलवधू के रूप में कभी स्वीकार नहीं करेगा।

## बड़ी चम्पा छोटी चम्पा (1961)–

1961 में प्रकाशित 'लक्ष्मीनारायण लाल' का उपन्यास 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा' भी वेश्या जीवन की समस्याओं को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास में लेखक ने यह दिखाया है कि सरकारी आदेश के अनुसार वेश्याओं को अपनी जगह छोड़ने के लिए आदेश जारी किया जाता है किन्तु वे कहाँ जाए, कैसे अपना जीवन निर्वाह करे इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं रहता है।

## दो बूँद जल (1966)–

शैलेष मटियानी द्वारा रचित 'दो बूँद जल' नामक उपन्यास एक दलित पहाड़ी वेश्या रेशमा को आधार बनाकर लिखा गया है। रेशमा दलित होने के साथ–साथ एक वेश्या और दो बच्चों की माँ भी है। वेश्या होने के बावजूद वह अपने बच्चों को पढ़ा–लिखा कर एक अच्छा इंसान बनाना चाहती है। इस कारण वह उन्हें अपने से दूर रखती है ताकि उन्हें इस पेशे में आने से रोक सके। किन्तु वहाँ भी उसके बच्चों को जाति एवं वेश्या संतति होने का दंश झेलना पड़ता है। उसका पुत्र सुरेंदर जब अपनी माँ रेशमा को पत्र भेजता है तब वह स्वयं पर अध्यापकों एवं बच्चों द्वारा किए जाने वाले कटाक्षों का वर्णन करते हुए लिखता है कि–

''सच्ची इजा, उस समय मेरे को बहुत जबरदस्त गुस्सा आता है, जिस समय मेरे मास्टर लोग–और उनकी देखा–देखी लड़के लोग भी–मुझसे तेरे बारे में पूछने लगते हैं, क्यों रे सुरिया, आजकल तेरी महतारी कहाँ है? क्या धंधा कर रही है? अकसर मास्टर लोग इस तरह की बातें भी करते हैं, खास करके हेडमास्टर शिव वल्लभ, जिन्होंने मुझे बचपन से देख रखा है। कहते हैं, तेरा नाम लेकर के कि 'बड़ा रंगीन डांस करती थी रेशमा! साक्षात् जिंदा डांस दिखाती थी!''[44]

लेखक ने एक वेश्या होने के साथ–साथ एक माँ के संघर्षों का चित्रण अत्यन्त उत्कृष्टता के साथ किया है। वह पाठकों का इस सत्य से भी अवगत कराना चाहते हैं कि अगर कोई वेश्या अपने बच्चों का भविष्य सुधारना चाहे एवं एक अच्छा जीवन देने का प्रयास करें तो वहाँ भी समाज उसका साथ नहीं देता है बल्कि उस पर एवं उसके बच्चों पर कटाक्ष करके उन्हें यहीं बताना चाहते हैं कि वेश्या संतति को अपने जिंदगी अच्छी करने का भी कोई अधिकार नहीं है।

## इसीलिए (1970)

देवेश ठाकुर' का उपन्यास 'इसीलिए' भी वेश्या जीवन की सच्चाईयों पर प्रकाश डालता है। इस उपन्यास की पात्र 'मीनाक्षी दलाल' बम्बई की मॉडर्न वेश्या कॉलगर्ल और वेश्यापुत्री है जो उच्च शिक्षित होने के बावजूद वेश्यावृत्ति को अपनाती है। उसकी माँ भी इसी पेशे में थी लेकिन उसने मीनाक्षी को इस पेशे से सदैव दूर रखा। माँ की मृत्यु के पश्चात् उसके अंकल जिसे उसकी माँ संरक्षक के रूप में नियुक्त करके जाती है, मीनाक्षी के साथ गलत व्यवहार करता है। इसके बाद मीनाक्षी यह निश्चय करती है कि वह अब ऊँचे दाम पर अपना शरीर बेचेगी न कि मुफ्त में किसी की शैय्या बनेगी। इसी के साथ एक नई मीनाक्षी का जन्म होता है जो पत्रकार होने के साथ–साथ कॉल गर्ल भी है। वह समाज में सिर्फ वेश्या के रूप में अपनी पहचान नहीं चाहती बल्कि वह माँ भी बनना चाहती है ताकि वह अपने माँ के सपने को पूरा कर सके। जैसा कि–

''माँ अपनी सन्तान को एक साफ, सम्मानित जिन्दगी देना चाहती थी। लेकिन उसकी यह चाह पूरी नहीं हुई। मैं अब अपनी सन्तान को वही जिन्दगी दूँगी जो माँ मुझे देना चाहती थी। लेकिन इसके लिए पैसे की जरूरत होती है.....और मैं कहूँ कि मैं इस तरह अपनी सन्तान के लिए पैसा जोड़ रही हूँ।''[45]

इस प्रकार लेखक ने मीनाक्षी के माध्यम से एक ऐसी वेश्या को हमारे समक्ष रखा है जो आत्मनिर्भर एवं शिक्षित होने के साथ–साथ शरीर विक्रय को एक व्यवसाय के रूप में देखती है।

## मुरदाघर (1974)–

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुरदाघर' उपन्यास मुम्बई के रेलवे लाइन के किनारे अपना शरीर बेचने को मजबूर मैना, रोजी, हसीना, मरियम, चमेली, सुभद्रा की कहानी है। जवान से लेकर बूढ़ हो चुकी स्त्रियाँ गरीबी के कारण अपना शरीर का विक्रय करती हैं। कुली, टैक्सी ड्राइवर, मजदूर, चाय बेचने वाले एवं दूसरे के घर में नौकर इनके ग्राहक

हैं। इनकी स्थिति इतनी दयनीय है कि यदि एक दिन उन्हें ग्राहक न मिले तो वह अगले दिन भूखों मरने के लिए मजबूर हैं। यहाँ तक कि अपने शरीर को बेचने पर मात्र चवन्नी, अठन्नी, एक या दो रूपये मिलते हैं। यहाँ तक कि माँ बनने के दूसरे दिन से उन्हें फिर अपने धंधे में लगना पड़ा है जिससे वे अपना घर चला सके। यहाँ तक कि पुलिस भी उनको अपना शिकार बनाने से नहीं चूकती है।

लेखक ने महानगर और उसमें भी झुग्गी–झोपड़ियों में अपना जीवन व्यतीत करने वाली गरीब वेश्याओं का सटीक चित्रण किया है जो किसी से धोखा खाने या गरीबी के कारण इस पेशे को अपनाने के लिए मजबूर हैं।

## दशार्क (1985)–

'जैनेन्द्र' का उपन्यास 'दशार्क' की पात्र 'रंजना' घर की आर्थिक स्थिति खराब हो जाने के कारण वेश्यावृत्ति को अपना पेशा बनाती है। यद्यपि वह शिक्षित है यदि वह चाहती तो और भी कोई पेशा अपना सकती थी किन्तु वह सब कुछ सोच समझ कर इस पेशे को अपनाती है। 'रंजना' में अपने पेशे को लेकर व्यावसायिक ईमानदारी है। वह अपने हर ग्राहक को सन्तुष्ट करना अपना धर्म समझती है। इसलिए वह किसी भी अतिथि के आने से पहले उसकी पूरी जानकारी प्राप्त कर लेती है। जैसा कि–

'' उसकी चिंता रहती है कि हर अतिथि की गहरी आवश्यकताओं का उसे अनुमान हो। उसकी रूचियाँ उसके संस्कार आशाएँ–आकांक्षाएँ। उसका प्रण है कि वह सभी के प्रति सहायक हो। उसने पाया है कि सब अधूरे हैं और सब में चाह है। वह सबके काम आ सकती है।''[46]

वह शरीर से भ्रष्ट नहीं है। वेश्यावृत्ति को अपनाने का उसका प्रमुख उद्देश्य शारीरिक तृप्ति नहीं है बल्कि वह मानसिक तृप्ति चाहती है। वह जीवन को समग्रता देने के लिए वेश्या व्यवसाय को अपनाती है। वह सामान्य अर्थ में वेश्या नहीं है बल्कि वह वेश्या बनकर जीवन का प्रयोग कर रही है जिसका अपना घर है, नौकर है, स्त्री–पुरूष

सचिव हैं और फाइल है। इस प्रकार जैनेन्द्र  अपने अन्य उपन्यासों के समान दर्शाक में भी नए प्रयोग करते हैं जो वास्तविकता से काफी दूर है। लेखक ने रंजना नामक वेश्या पात्र को अलग रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है किन्तु क्या वास्तव में वेश्या ऐसी होती हैं, इस विषय में लेखक को स्वयं संदेह है।

## सलाम आखिरी (2002)–

मधु कांकरिया का सलाम आखिरी कलकत्ता के सोनागाछी रेडलाइट एरिया को आधार बनाकर लिखा गया है। उपन्यास की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उपन्यास की लेखिका एक स्त्री है और उन्होंने वेश्या जीवन की समस्याओं का अत्यन्त करीब से देखने का प्रयास किया है। लेखिका ने उपन्यास में वेश्याओं द्वारा वेश्यावृत्ति को अपनाने के पीछे प्रमुख कारण में आर्थिक कारणों को मुख्य कारण माना है। उपन्यास के अन्तर्गत लेखिका ने वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने के संबंध में भी विचार किया है किन्तु उसके संबंध में कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है।

## आज बाजार बंद है (2004)–

मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित 'आज बाजार बंद है' देवदासी प्रथा को आधार बनाकर लिखा गया है। पार्वती नामक वेश्या को जो दलित वर्ण से आती है, को देवदासी प्रथा के नाम पर सवर्णों द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर किया जाता है। आगे चलकर देवदासी बनाने के बाद उसे शहर में एक दलाल द्वारा बेच दिया जाता है। यहाँ आकर पार्वती की मुलाकात सुमीत से होती है जो उसके संघर्ष में साथ देता है। जिसके फलस्वरूप वह स्वयं को एवं अन्य स्त्रियों को वेश्या बनने से बचा लेती है।

## क्या खरीदोगे मुझे (2005)–

मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखित 'क्या खरीदोगे मुझे' 2005 ई0 में प्रकाधित हुआ। यह उपन्यास मुम्बई के महानगरीय परिवेश को आधार बनाकर लिखा गया है। यह उपन्यास 'सरिता' नामक वेश्या को आधार बनाकर लिखा गया है। उपन्यास के अन्तर्गत

लेखक ने वेश्या जीवन के संदर्भ में अनेक प्रश्न उठाए हैं जो पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करते हैं।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द के पूर्व से स्वातंत्र्योत्तर युग तक अनेक उपन्यास लिखे गए हैं जो वेश्या जीवन एवं उनकी समस्याओं का अत्यन्त सटीकता के साथ वर्णन प्रस्तुत करते हैं। इनमें से कुछ उपन्यास यद्यपि वेश्या जीवन पर केन्द्रित नहीं है बल्कि वे किसी पात्र के विकास हेतु उपन्यास में भी आए हैं लेकिन उन पात्रों के द्वारा भी वेश्यावृत्ति की समस्या एवं उसके कारणों को समझा जा सकता है।

## सन्दर्भ–


1. डॉ0 बालकृष्ण गुप्त, हिन्दी उपन्यास सामाजिक सन्दर्भ, अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1978, पृ07।

2. किशोरीलाल गोस्वामी, स्वर्गीय कुसुम, सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन, 1889, पृ0 136।

3. डॉ0 शारदा अग्रवाल, द्विवेदीयुगीन हिन्दी उपन्यास, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1967, पृ0 108–109।

4. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, अप्रैल 1954, पृ0 180।

5. देवकीनन्दन खत्री, काजर की कोठरी, राष्ट्रभाषा संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1992, पृ0 71।

6. पं0 गिरिजानन्दन तिवारी, विद्याधरी, भारत जीवन प्रकाशन, काशी, 1904, पृ0 28।

7. लज्जाशर्मा मेहता, आदर्श हिन्दू भाग–3, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1928, पृ0 218।

8. चन्द्रशेखर पाठक, वारांगना रहस्य, प्रथम भाग, पाठक एण्ड कम्पनी, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, 1916, पृ0 4।

9. प्रेमचंद, सेवासदन, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1981, पृ0 34।

10. वही, पृ0 46।

11. वही, पृ0 150।

12. वही, पृ0 216।

13. वही, पृ0 245।

14. जयशंकर प्रसाद, कंकाल, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, नवाँ संस्करण, 2016 वि0, पृ0 30।

15. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, माँ, गंगा पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, छठीं आवृत्ति, 1958, पृ0 387।

16. ऋषभचरण जैन, वेश्यापुत्र, हिन्दी पुस्तक कार्यालय, दिल्ली, 1929, पृ0 95।

17. वही, पृ0 114।

18. वही, पृ0 152।

19. डॉ0 रत्नाकर पाण्डेय, उग्र और उनका साहित्य, नागिरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण सं0 2026 वि0, पृ0 117।

20. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', शराबी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली–6, 1930, पृ0 81।

21. डॉ0 रत्नाकर पाण्डेय, उग्र और उनका साहित्य, नागिरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण सं0 2026 वि0, पृ0 119।

22. वहीं, पृ0 125।

23. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, अप्सरा, गंगा पुस्तक माला प्रकाशन, लखनऊ, आठवाँ संस्करण, 1962, पृ0 12।

24. वही, पृ0 15।

25. भगवती प्रसाद वाजपेयी, पतिता की साधना, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग, चतुर्थ संस्काण, 1956, पृ0 18।

26. वही, 240।

27. ऋषभचरण जैन, चम्पाकली, जैन एण्ड सन्स, नई दिल्ली–2, चतुर्थ संस्करण, 1984, पृ0 30।

28. वही, पृ0 66।

29. उषादेवी मित्रा, जीवन की मुस्कान, सरस्वती प्रेस, बनारस, चतुर्थ संस्करण, 1948 पृ0 120।

30. वही, पृ0 205–206।

31. इलाचन्द्र जोशी, पर्दे की रानी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृतीय संस्करण, सं0 2008 पृ0 128।

32. वही, पृ0 187।

33. भगवतीचरण वर्मा, तीन वर्ष, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, सं0 2006 पृ0 262।

34. इलाचन्द्र जोशी, प्रेत और छाया, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, सं0 2004, पृ0 398।

35. यशपाल, दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1983, पृ0 5।

36. वही, पृ0 46।

37. डॉ0 सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972, पृ0 219।

38. वही, पृ0 85।

39. डॉ0 रामदरश मिश्र (संपादक), हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष, गिरनार प्रकाशन, गुजरात, प्रथम संस्करण, 1984, पृ0 298।

40. रांगेय राघव, घरौंदा, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली–6, प्रथम संस्करण,1967, पृ0 256।

41. वही, पृ0 260।

42. चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2016, पृ0 6।

43. अमृतलाल नागर, सुहाग के नूपुर, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, छठा संस्करण, 2011, पृ0 192।

44. शैलेश मटियानी, डेरेवाले, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृ0 115।

45. देवेश ठाकुर, इसीलिए, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ0 सं0 58।

46. जैनेन्द्र, दशार्क, पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 1991, पृ0 सं0 14।

# विवेच्य सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास और वेश्या जीवन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जिस प्रकार देश की सभी स्थितियों में परिवर्तन हुआ, उसी प्रकार साहित्य में भी हुआ। इस काल में आकर हिन्दी उपन्यासों में भी अलग–अलग प्रवृत्ति का उदय हुआ। इन युग के उपन्यासों में मध्य वर्ग के चित्रण ऐतिहासिक पुनरावलोकन, तत्कालीन राजनीतिक दशा एवं व्यक्तिगत जीवन का विशेष रूप से वर्णन किया गया।

''जिस प्रकार उत्तर छायावादी युग में कविता के क्षेत्र में कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ जन्मीं, उसी प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग में आख्यान–साहित्य में भी मनोवैज्ञानिक, यथातथ्यवाद, घोर–नग्न यथार्थवाद, अवचेतनवाद, प्रतीकवाद की प्रवृत्तियों का समावेश हुआ।''[1]

प्रेमचन्दपूर्व उपन्यासों में जहाँ आदर्श को महत्व प्रदान किया गया वहीं स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास यथार्थ की ओर उन्मुख हुए। और ऐसा होना सही भी है क्योंकि उस समय समाज में लगातार अनेक परिवर्तन हो रहे थे। जहाँ एक तरफ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लगातार साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे तो दूसरी तरफ हिन्दू कोड बिल, जमींदारी प्रथा उन्मूलन, वेश्यावृत्ति उन्मूलन, निर्धनता, बेकारी एवं शरणार्थियों की समस्या भारत में विद्यमान थी जिसका प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर भी पड़ा। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समय में अवसरवाद को भी बढ़ावा मिला और स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जो सपने देश को स्वतंत्र कराने वाले सेनानियों ने देखे थे वह धीरे–धीरे बिखरते प्रतीत होने लगे थे। 1947 की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद जो सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक निर्माण कार्य होना था, वह आज भी शेष है। शासक और शासित का भेद आज भी यथावत है।[2]

अवसरवादी प्रवृत्तियों ने मध्यवर्ग को घेरना प्रारंभ कर दिया। इसके अतिरिक्त शोषक एवं समाज विरोधी तत्वों को खुलकर देश को लूटने का अवसर प्राप्त हुआ। जिस

प्रकार भारतीय परिस्थितियों में बदलाव हो रहा था ठीक उसी प्रकार वेश्याओं की दशा एवं उनके स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहा था। यद्यपि उस समय तक केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा कई अधिनियम पारित किए जा चुके थे। किन्तु उनकी दशा पहले से अब और भी ज्यादा दयनीय हो चुकी थी क्योंकि कोठे बंद हो जाने पर भी देह व्यवसाय एवं शोषण लगातार जारी है। अधिनियमों के पारित हो जाने के बावजूद कम होने के स्थान पर देह व्यवसाय में और ज्यादा वृद्धि हुई है। अब वे आदर्शवादी वेश्याएँ एवं कोठे तक सीमित न होकर एस्कार्ट्स एवं कॉल गर्ल के रूप में गली–मोहल्ले से लेकर होटल एवं घरों तक पहुँच चुकी हैं। यहाँ तक कि वे स्वयं को सेक्स वर्कर्स घोषित किए जाने की मांग कर रही हैं। आधुनिक भारत में जिस तरह से वेश्यावृत्ति के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आया है, उस पर प्रकाश डालते हुए 'अनिल यादव' ने अपनी पुस्तक 'नगरवधुएँ अखबार नहीं पढ़तीं' है, में कहा है कि–

''ग्लोबल दौर के प्लास्टिक मनी वाले रईसों को अब हाथ में गजरा लपेट कर धूल, सीलन और कूड़े से बजबजाती बदनाम बस्ती में जाने की कतई जरूरत नहीं थी। उन्हें अपनी पसंद के रंग, साइज और भाषा की कॉलगर्लें होटलों, फार्महाउसों और ड्राइंगरूमों में ही मिल जाती थीं। इनमें से कई अपने कस्बों, शहरों या प्रदेश की सुंदरी प्रतियोगिताओं की विजेता थीं। मिस लहुराबीर से लेकर मिस नार्थ इंडिया तक बस एक फोनकाल की दूरी पर सजी–धजी इंतजार करती रहती थीं।''[3]

प्राचीन काल में तवायफों के कोठे शहर के बीचोंबीच हुआ करते थे जिसकी अपनी एक तहजीब थी। कोठे की अपनी एक तहजीब हुआ करती थी जहाँ बड़े–बड़े रईस, हुक्काम एवं जमींदारों का आना जाना था। कोठे के माध्यम से नृत्य एवं संगीत के अनेक शैलियों का विकास हुआ। किन्तु वर्तमान समय में स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। आज इस पेशे में तहजीब की जगह विद्रूपता ने ले ली है। भयानक गरीबी एवं लड़कियों की बढ़ती तस्करी ने इस पेशे का स्वरूप बदल दिया है। आज वेश्याओं सस्ते

दामों पर अपना शरीर बेंचने के लिए मजबूर है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन के इसी बदलते स्वरूप को लेखकों ने पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया है। विवेच्य सामाजिक एवं यथार्थवादी उपन्यासों के अन्तर्गत 'सलाम आखिरी', 'मुरदाघर', 'दो बूँद जल', 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा', 'आज बाजार बंद है' एवं 'दशार्क' उपन्यासों के माध्यम से वेश्या जीवन के उन हिस्सों से परिचित कराया गया है जो अंधेरी गलियों में कहीं खोए हुए हैं। ये वे गलियाँ हैं जहाँ बाजार, ग्राहक और विक्रेता के साथ वेश्यावृत्ति का साम्राज्य फैला हुआ है और रोज न जाने कितनी मासूमों का सौदा होता है। विवेच्य उपन्यासों के द्वारा वेश्या जीवन के यथार्थ का वर्णन इस प्रकार है–

## (क) महानगरों में वेश्या जीवनः स्वरूप एवं समस्याएँ–

'वेश्यावृत्ति' को नगर जीवन की एक कुरूप घटना कहा जाए तो गलत न होगा। प्राचीन काल की प्रतिष्ठित गणिकाएँ एवं कलावंतियां अब राजा महराजाओं तक सीमित न होकर सड़कों पर उतर आई हैं। अब कोई भी व्यक्ति जो पैसे खर्च करने में सक्षम है वेश्याओं के साथ संबंध रखने का अधिकारी है। इस कारण प्राचीन काल में जहाँ गणिकाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था वहीं आज वे केवल सस्ते एवं ऊँचे दामों पर मिनटों के हिसाब से शरीर बेचने के लिए मजबूर हैं और समाज में घृणा की पात्र हैं। 'क्षमा गोस्वामी' ने अपनी पुस्तक 'नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास' में नगरों व्याप्त वेश्यावृत्ति की समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि–

''वास्तव में वेश्यावृत्ति नगरों की भयंकर सामाजिक समस्या बनती जा रही है। विश्व के सभ्य कहलाये जाने वाले अनेक नगर–पेरिस, स्विट्जरलैण्ड, वेनिस आदि तो वेश्यावृत्ति के नंगे अड्डे हैं। भारतीय नगरों में इस समस्या का स्वरूप कम उग्र नहीं है।..... निर्धनता, बेरोजगारी, पारिवारिक विघटन, औद्योगिक क्षेत्रों में स्त्रियों की तुलना में पुरूष–संख्या में वृद्धि, अधिक से अधिक धनार्जन की आकांक्षा तथा पूंजी का आधिक्य

आदि ने सम्मिलित रूप से इस समस्या को एक निश्चित युग की प्रघटना बना दिया है।''[4]

इस प्रकार अनेक कारणों से वेश्यावृत्ति की समस्या भारत के अनेक नगरों में तेजी से फैलती जा रही है। साथ ही यहाँ हर तरह की वेश्या एवं वेश्यालय मिल जाएगें जहाँ ग्राहक अपनी हैसियत के अनुसार यौन संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। 'मधु कांकरिया' का 'सलाम आखिरी' एवं 'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित' का 'मुरदाघर' ऐसे उपन्यास हैं जो महानगरों में व्याप्त वेश्या जीवन को आधार बनाकर लिखे गए हैं। इन उपन्यासों में अभिव्यक्त वेश्या जीवन का यथार्थ इस प्रकार है–

भारत के बड़े–बड़े महानगरों में जहाँ चारों तरफ भीड़–भाड़, चौड़ी सड़के, चमचमाती कारें और मॉल्स देखकर यह लगता है कि भारत विकास की ओर अग्रसर है और वह दिन दूर नहीं जब वह विकसित देशों की कतार में शामिल हो जाएगा। साथ ही सरकार की इंडिया शाइनिंग का सपना भी सच हो जाएगा। लेकिन अगर महानगरों की चमक–दमक से हटकर एक ऐसी भी दुनिया है जिसका अपना एक अलग इतिहास है–

''ये वे दरवाजे हैं शहर के जो खुलते ही उस दुनिया में ले जाते हैं जिसके होने एवं जीवित रहने के विधान–वे नहीं है जो आप अपने घरों में देखते–सुनते हैं या अपनी पुस्तकों में पढ़ते हैं। सभ्यता के अनुशासन से परे, इस दुनिया के विधान दूसरे हैं, जीने की शर्तें अलग हैं।''[5]

यहाँ हर रोज न जाने कितनी आत्माओं का दमन होता है। महानगरों में वेश्या जीवन के स्वरूप को अगर देखना एवं उसका अध्ययन करना हो तो उसके लिए 'सलाम आखिरी' नामक उपन्यास की यह पंक्तियाँ ही भारत के महानगरों की सच्चाई को बयान कर देगीं–

''यह दुनिया कलकत्ता महानगर के विभिन्न दरवाजों–सोनागाछी, बहु बाजार, कालीघाट, बैरकपुर, खिदिरपुर आदि में खुलती है। यहाँ जीवन के कुरूप से कुरूप एवं भयंकर से भयंकर नग्न रूप मिल जाएँगे क्योंकि यहाँ संस्कृति, मर्यादा एवं परम्पराओं का कोई डर नहीं है। बन्धन नहीं है। इस रूप के बाजार का रूपविहीन जीवन अपने चरम रूप में आपके समक्ष खुलते थान की तरह बेशर्मी से खुला हुआ है। इन सभी लालबत्ती इलाकों में सबसे प्राचीन, सबसे स्थापित, बदनाम, खासी आबादीवाला इतिहास और विरासत वाला इलाका है सोनागाछी।''[6]

यह है हमारे देश के महानगरों की सच्चाई। इस उपन्यास की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह एक स्त्री लेखिका 'मधु कांकरिया' द्वारा लिखा गया है और वह इसकी स्वयं प्रत्यक्षदर्शी भी हैं। साथ ही इस उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह पुरूषों को समर्पित करके लिखा गया है। 'महेश दर्पण' ने इस उपन्यास को पुरूषों के लिए लताड़ मानते हुए कहा है कि–

'' 'सलाम आखिरी' को समर्पित किया है मधु कांकरिया ने पुरूषों के लिए, तो यह ठीक भी है। दरअसल यह लताड़ पुरूष की उस आदिम लालसा के प्रति ही है जो स्त्री को वस्तु में तब्दील कर डालती है। यही नहीं पुरूष की नीच पौरूष भी यहीं सर्वाधिक एक्सपोज होता है।''[7]

'सलाम आखिरी' 'कलकत्ता' के 'सोनागाछी' नामक रेड लाइट एरिया को आधार बनाकर लिखा गया है जो पूरे विश्व में सबसे प्राचीन और स्थापित वेश्याओं की मंडी के रूप में प्रसिद्ध है। 'मधु कांकरिया' ने बंगाल में वेश्यावृत्ति के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि–

''यह सोनागाछी है। मध्य कलकत्ते का ऐतिहासिक लालबत्ती इलाका जहाँ सत्रहवीं शताब्दी के ढलते वर्षों से ही सामन्ती जमींदार, सेठ, रईस, कलाप्रेमी, रसिक और बौद्धिक

वर्ग कई–कई आकर्षणों में बँधे यहाँ की कामिनियों, नगर–वधुओं, सर्वभोग्या बाईजियों और वेश्याओं की महफिलों को रोशन करते हैं।''[8]

इस प्रकार लेखिका के उर्पयुक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि सत्रहवीं शताब्दी में वेश्याओं की स्थिति काफी अच्छी थी और उच्च वर्ग के लोग इनके कोठों पर आकर शान बढ़ाते थे। यद्यपि वर्तमान समय में अन्य महानगरों की वेश्याओं के मुकाबले सोनागाछी की वेश्याओं की स्थिति बहुत अच्छी है। यहाँ की वेश्याएँ अपने नियमों के अनुसार पेशा करती है। किन्तु अब कोठों की जगह चकलाघर एवं नृत्य–संगीत में निपुण तवायफों की जगह कतार में खड़ी लाइनवालियों ने ले ली है जो मात्र बीस–बीस रूपये में कतार में खड़ी होकर अपनी देह परोसती मिल जाएगी। प्रसिद्ध लेखिका 'गीताश्री' ने अपनी पुस्तक 'औरत की बोली' में कलकत्ता के सोनागाछी रेड लाइट एरिया की स्थिति का उल्लेख करते हुए कहा है कि–

'' कोलकाता में 'सोनागाछी' सबसे बड़ी वेश्या बस्ती है। यहाँ वेश्याओं का क्लास या वर्ग है। सबसे ऊंचे 'क' वर्ग की वेश्याएं जबान और सुंदर होती हैं और उनके कमरों में अच्छे फर्नीचर होते हैं और सफाई भी होती है। इस वर्ग में कोई भी लड़की ज्यादा दिनों तक नहीं टिकती, क्योंकि आए दिन नई लड़कियां इस वर्ग में शामिल होती रहती हैं। इस वर्ग से निष्कासित लड़की पहले 'ख' वर्ग और फिर 'ग' वर्ग में पहुंचती है। निचले वर्ग की लड़कियों को आमतौर पर छोटा कमरा मिलता है जहाँ साफ–सफाई मुश्किल से ही देखी जा सकती है, वेश्याएं बारी–बारी से एक ही कमरे को अपने–अपने ग्राहकों के साथ इस्तेमाल में लाती हैं। यहाँ पैसे पर सेक्स का कारोबार जल्दी–जल्दी निबटाया जाता है, ताकि ज्यादा से ज्यादा ग्राहकों को संतुष्ट किया जा सके।''[9]

लेखिका के अनुसार बंगाल में वेश्यावृत्ति का उदय काफी पहले ही हो गया था। लगभग 1690 के आस पास वेश्यावृत्ति की शुरूआत मानी जाती है। आरंभ में अंग्रेजों से

पूर्व पुर्तगालियों के मनोविलास के लिए यहाँ के नवाबों ने अन्य भेंटों के साथ–साथ अनेक सुन्दर कन्याओं को भी भेंट किया था। इसके बाद अंग्रेजों के काल में भी यह प्रथा चलती रही। बंगाल का गवर्नर हेरी वेरेलस्ट अपनी रंगीनियों के कारण इतिहास में प्रसिद्ध है। इसके साथ सोनागाछी कभी अपने रूप के साथ–साथ कला के बाजार के रूप में भी विख्यात था। सोनागाछी की अधिकांश गलियों, दुर्गा चरण मित्रा स्ट्रीट, अविनाश कविराज स्ट्रीट, नीलमणि मित्र स्ट्रीट, इमाम बक्स लेन आदि कला बाजार के रूप में विशेष रूप से विख्यात हैं। किन्तु आगे चलकर धीरे–धीरे इन गलियों से कला का बाजार विलुप्त होकर देह व्यवसाय के रूप में शेष रह गया है। यह गलियाँ अब जिस्म के व्यापार एवं प्रेम के झूठे व्यापार के रूप में प्रसिद्ध हैं। बंगाल में रहते हुए भी यह बंगाली समाज एवं संस्कृति से पूर्णतया भिन्न है। यहाँ एक अलग तरह का समाज है जिसकी अपनी एक अलग संस्कृति, भाषा एवं पहचान है। यहाँ भारत के साथ–साथ बांग्लादेश एवं नेपाल सहित अनेक देशों से लड़कियाँ तस्करी करके लाई जाती हैं और बाद में उन्हें यहाँ वेश्यावृत्ति में ढकेल दिया जाता है। उसके बाद शुरू होता है उनके शोषण का कभी न खत्म होने वाला चक्र। इसी शोषण का चित्रण लेखिका ने अपने उपन्यास में अत्यन्त सटीकता के साथ किया है। साथ ही वेश्या जीवन के बहाने पुरूष जाति के नीच पौरूष एवं ब्राह्मणवादी मानसिकता पर भी लेखिका ने जोरदार प्रहार किया है–

''क्या कहा.....? मोहम्डन भी है, तब तो हम जरूर जाएँगे.....उसे पवित्र करने। यही तो जीत होगी हमारे ब्राह्मणत्व की।''[10]

लेखिका ने उपन्यास के अन्तर्गत समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा वेश्या जीवन को अत्यन्त नजदीकी से देखा है इसलिए उनका यह मानना है कि भारत की वेश्याओं एवं वेश्यालयों की स्थिति अन्य देश के वेश्यालयों एवं वेश्याओं के मुकाबले अत्यन्त दयनीय है। वेश्या जीवन को आधार बनाकर लिखी गई 'अलेक्जेंडर कुप्रिन' की 'गाड़ी वालों का कटरा' विश्वप्रसिद्ध पुस्तक है जिसमें वेश्या जीवन को अत्यन्त गहराई से देखा गया है

और रूसी चकलाघरों की वास्तविक स्थिति को बयान किया गया है। 'मधु कांकरिया' ने भी अपने एक मित्र के कहने पर पुस्तक पढ़ी जरूर है किन्तु यह पुस्तक पढ़ने के पश्चात् लेखिका का यह मानना है कि भारत के लालबत्ती इलाकों की परिस्थिति रूसी चकलाघरों से अत्यन्त भयावह है। उनके अनुसार–

''मैं यह बात जोर देकर कहना चाहूँगी कि भारत में लालबत्ती इलाकों की स्थितियाँ कुप्रिन के चित्रण से न केवल भिन्न वरन् कहीं ज्यादा यांत्रिक, भयावह, कुत्सित एवं कुरूप हैं।.....आज वेश्याएँ बहुत ज्यादा हैं, ग्राहक कम हैं, इस कारण वेश्याएँ स्वयं को 20–20 रूपयों में मिनटों के हिसाब से नीलाम कर रही हैं। क्या कहा जाए इसे? सभ्यता का अंत या मनुष्यता का चरम पतन, कि आज देह की सजी दुकानों में देह एक डिपार्टमेंटल स्टोर बन गई है जहाँ नारी अपने अलग–अलग अंगों का घंटों और मिनटों के हिसाब से अलग–अलग सौदा कर रही हैं!''[11]

वेश्याओं के जीवन एवं उसकी मनःस्थिति को इस उपन्यास में लेखिका ने अत्यन्त समीप से देखा परखा है। काफी गहन अध्ययन के पश्चात् लेखिका इस तर्क पर पहुँची की अधिकांश वेश्या आर्थिक कारणों से इस व्यवयास में प्रवेश करती हैं।

''85 प्रतिशत वेश्यावृत्ति जीवन की चरम त्रासदी में भूख के मोर्चे के विरूद्ध अपनाई जाती है। 10 प्रतिशत वेश्यावृत्ति धोखाधड़ी से उपजती है, यह धोखाधड़ी प्रेम के झूठे वादे, नौकरी के प्रलोभन, शहरी चकाचौंध से लेकर एक उच्च और सम्मानित जीवन के सब्ज़बाग दिखाने तक होती है।''[12]

लेखिका ने उपन्यास को 28 उपकथाओं में विभक्त किया है और हर खंड के लिए अलग–अलग शीर्षकों का प्रयोग किया है। वेश्याओं के एक–एक मनोभावों एवं उसकी टीस की अभिव्यक्ति लेखिका ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से की है–

''लिपी–पुती देह। आँखों में भविष्यहीनता। चेहरे पर सस्ता और भड़कीला मेकअप। रँगे होंठ। सस्ती चमक के आभूषण। चटक और सस्ती पोशाकें। प्लास्टिक की चप्पलें। कहीं चमड़े की भी। प्रतीक्षा के लाखों कल्प। अठारह से लेकर चालीस–बयालीस की उम्र की लगभग सभी वारांगनाएँ। तरह–तरह की–बंगाली, नेपाली और आगरावाली। एक नजर में न हुस्न के जलवे। न अदाओं का जादू। न कला। न शृंगार। न साज, न आवाज। सिर्फ देह, मादा देह।''[13]

लेखिका द्वारा वेश्याओं के बाहरी सौन्दर्य के वर्णन मात्र से ही हम यह अंदाजा लगा सकते हैं कि उनकी दशा कितनी शोचनीय है। यह कहानी ऐसी वेश्याओं की है जो सोनागाछी रेड लाइट एरिया में रहती हैं और मात्र दस–बीस रू0 से लेकर सत्तर–अस्सी रू0 में अपने शरीर का सौदा करती हैं। यहाँ मिनट एवं घंटों के हिसाब से रेट तय होता है जिसे शॉर्ट रेट तथा लांग रेट कहते हैं। शॉर्ट रेट से तात्पर्य पाँच या दस मिनट से लेकर बीस से पच्चीस मिनट का अंतराल होता है जबकि लांग रेट में दो–तीन घंटे से लेकर पूरी रात तक का समय मिलता है। इसके अतिरिक्त सबसे प्रमुख बात यह है कि वेश्याओं की सफलता इस बात में मानी जाती है कि वे शॉर्ट रेट में तय होने के पश्चात् वह कितना अधिक समय एवं पैसा अपने ग्राहकों से वसूल कर पाती हैं। इसके अतिरिक्त ग्राहक के रेट तय हो जाने के बाद का दृश्य कुछ इस तरह का होता है–

''यदि ग्राहक एकदम नवागन्तुक नहीं है एवं इन गलियों का अनुभव सिद्ध विजिटर है और यदि वह शॉर्ट रेट पर आया है तो कमरे में घुसते ही वह फटाफट प्रेम प्रकरण के 'डाइरेक्ट ऐक्शन' पर आ जाता है। और यदि वह लाँग रेट पर है तो डाइरेक्ट एक्शन से पूर्व कुछ 'मंगलाचरण', कुछ नाटकीय भावुकता का 'छौंक'.....फिर 'टेक ऑफ' उतनी बार जितनी संख्या बाहर तय हुई थी।''[14]

मात्र दस रू0 से लेकर हजार रू0 के लिए कतार में लगी ये देह न जाने कितनी अतृप्त आकांक्षाओं को तृप्त करती हैं। और यह सिलसिला एक के चले जाने के पश्चात् समाप्त नहीं होता है बल्कि अगली अतृप्त वासना के लिए इंतजार करना पड़ता है क्योंकि एक देह काम की मारी है और दूसरी भूख की। और इन्हीं दोनों भूख की तृप्ति के लिए एक देह तैयार होती है बिकने के लिए और दूसरी खरीदने के लिए। जैसा कि– ''शार्ट ग्राहक के निपटते ही वह फिर स्वयं को ठीक–ठाक कर 'आराम हराम है' की तर्ज पर 'टिल फर्दर ऑर्डर' लाइन में खड़ी हो जाती है। अगले प्रेम निवेदन.....अगली देह के साथ हम–बिस्तर होने के लिए।''[15]

ये उनकी मजबूरी भी है क्योंकि यहाँ सब कुछ अर्थ और देह पर टिका है, प्रेम का तो दूर–दूर तक नामोनिशान भी नहीं है। अपनी जीविका चलाने के लिए लाइन में खड़े रहने के कारण इनको वेश्या की जगह 'लाइन वाली' के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ इनका अपना कोई नहीं हैं जो उनकी देखभाल करें, उनके दुख–सुख में साथ दे। इनका काम सिर्फ हर आने जाने वाले ग्राहकों को संतुष्ट करना है और उनकी यौन वासना की तृप्ति करना है।

''परिवार, समाज और सभी प्रकार की मर्यादाओं से कटी, सहिष्णुता की विश्वबैंक ये लाइनवालियाँ! अशिक्षित, अविकसित, अपरिपक्व और आत्मविहीन इन तंग गलियों के समान ही तंग दिमागवाली ऐसी हजारों लाइनवालियाँ!''[16]

हमारे समाज में वेश्याओं को 'बुरी औरत' का दर्जा दिया गया है। लोगों के दिल में इनको लेकर खौफ होता है। लेकिन क्या वास्तव में ये बुरी होती हैं या परिस्थितिवश उन्हें बुरा बनने के लिए मजूर किया जाता है? समाज में इन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु सच जानने का प्रयास कोई नहीं करता कि आखिर क्यों वह इस व्यवसाय को अपनाने के लिए मजबूर होती हैं? उपन्यास की प्रमुख पात्र सुकीर्ति भी जब

तक इस व्यवसाय की पूरी हकीकत नहीं जान पाती है तब तक वह भी वेश्याओं को बुरी औरत ही मानती थी। और ऐसा हो भी क्यों न, आखिर बचपन से ही अपनी माँ और अन्य लोगों से इनके बारे में बुरा ही सुनती जो आ रही थी। उपन्यास की प्रमुख पात्र महिला पत्रकार सुकीर्ति पेशे से पत्रकार है और लेखिका की प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आती है। वह अपनी एक सहकर्मिणी के तीन वर्ष पहले और उसके यहाँ काम करने वाली एक बाई की तेरह वर्षीय पुत्री के कुछ महीने पहले सोनागाछी रेड लाइट एरिया में खो जाने के कारण वह उन्हें इन गलियों में अक्सर ढूँढने के लिए आ जाती है। जब वह रेड लाइट एरिया जाती है तो उसके मन में यही सवाल होता है कि आखिर क्यों एक स्त्री इस व्यवसाय को अपनाती है? रेड लाइट एरिया का माहौल, तंग गलियाँ और वेश्याओं की समस्याओं को देखकर वह अत्यन्त व्यथित हो जाती है। जब वह इनके कारणों की पड़ताल करती है तो जो सबसे महत्वपूर्ण कारण निकल कर सामने आता है वह कुछ इस प्रकार से है–

''तुम्हें डर नहीं लगता, अपनी इज्जत को इस प्रकार पराए मर्द के हवाले करते.....''
''क्यों नहीं लगता है, बहुत लगता है.....एकदम शुरू–शुरू में तो बोटी–बोटी अकड़ गई थी....''
''तो फिर क्यों करती हो तुम ऐसा?''
''क्योंकि इससे भी ज्यादा डर एक और चीज है, उससे लगता है।''
''क्या है वह?''
''भूख.....!''[17]

भूख ही वह प्रमुख कारण है जो व्यक्ति को निम्न से निम्नतर कार्य करने के लिए मजबूर करती है। अधिकांश वेश्याएँ भी आर्थिक कारणवश इस पेशे को अपनाती हैं और जब वह इस पेशे योग्य नहीं रह जाती हैं तब वह एक घर खरीदकर उसमें स्वतंत्र चकलाघर चलाती हैं जिससे वह आगे की जिंदगी आराम से बिता सके। अगर एक

तरीके से देखा जाए तो यह सही भी है क्योंकि छोटी उम्र में ही वेश्यावृत्ति में ढकेल दिए जाने एवं कम शिक्षित होने के कारण इनके पास इस तरह के व्यवसाय अपनाने के अलावा कोई और उपाय शेष नहीं रह जाता है जिससे ये आगे अपना भरण पोषण कर सके। इसके अतिरिक्त इस पेशे को अपनाने के पश्चात् समाज इनको स्वीकार करने से इंकार कर देता है जिससे वह इस व्यवसाय से बाहर निकलने का साहस भी नहीं कर पाती हैं और मजबूरन इस व्यवसाय में लिप्त रहती हैं। अंत में वे इसी व्यवस्था का अंग बनकर रह जाती हैं। उपन्यास में मीना मैडम नामक एक ऐसी ही वेश्या पात्र है जिसने कई सालों से वेश्यावृत्ति छोड़ रखी है और अविनाश कविराज स्ट्रीट की गली के एक साधरण से फ्लैट के नीचे की मंजिल में दो–तीन कमरों के फ्लैट में वह अपना स्वतंत्र चकला चला रही है। गली के समृद्ध चकला होने के कारण अन्य के मुकाबले इसका रेट भी अन्य के मुकाबले थोड़ा ज्यादा है। मैडम मीना के अधीन छः वेश्याएँ कार्य करती हैं जो अठारह से तीस वर्ष के बीच की हैं। इनका परिचय लेखिका कुछ इस अंदाज में कराती है–

''छः लाइनवालियाँ इस चकले में। अधिया सिस्टम के अन्तर्गत मीना की जी–हुजूरी में। कच्ची कचनार नूरी। झिलमिल कृष्णा। हल्ला वेश्या रमा। पुराना चावल नलिनी। तेजपत्ता जूली। दरिद्रता की तरह दयनीय चम्पा। सिवाय जूली के अलसाए और आराम के मूड में।''[18]

यहाँ पर मीना स्वयं वेश्याओं के लिए ग्राहक जुटाती है और बदले में उनकी कमाई का पचास प्रतिशत अपने पास रखती है जिसे लाल बत्ती इलाकों की भाषा में 'अधिया सिस्टम' कहा जाता है। यहाँ रहने वाली वेश्याओं को अपने रोजमर्रा की जरूरतों के लिए अपने पास से खर्च करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त खाना यहाँ सामूहिक रूप से बनता है जिसके लिए प्रत्येक वेश्या से 35 रू0 लिया जाता है। अधिकांश वेश्याएँ आरंभ में अधिया सिस्टम के अन्तर्गत व्यवसाय करती हैं और कुछ वर्षों बाद वे स्वतंत्र

वेश्यावृत्ति पर उतर आती हैं। बाद में जब वह इस पेशे योग्य नहीं रह जाती हैं तब वह स्वतंत्र चकला चलाना प्रारंभ करती हैं। वेश्याओं में स्वतंत्र चकला चलाना स्वयं में बहुत बड़ी बात है क्योंकि कभी–कभी यह भी देखने में आता है कि वेश्याओं को अपने निश्चित ग्राहक भी नहीं मिल पाते हैं। इस कारण वेश्याओं को अपने ग्राहकों को हर तरीके से सहन करना पड़ता है और उनके साथ नम्र रहना पड़ता है जिससे उनकी रोजी–रोटी चलती रहे। यहाँ तक कि कभी–कभी वह अत्यन्त घिनौने और बदबूदार भी होते हैं लेकिन पेट की खातिर वेश्याओं को हर तरह के ग्राहक झेलने पड़ते हैं। वेश्यावृत्ति को जब समाप्त करने की बात की जाती है तब उस समय यह तर्क दिया जाता है कि अगर वेश्यावृत्ति समाप्त कर दी जाएगी तो उन लोगों की यौन इच्छा कैसे पूर्ण की जाएगी जो शारीरिक रूप से विकलांग हैं या जो देख नहीं सकते या जो बदसूरत हैं या बूढ़े आदि क्योंकि उनकी यौन संतुष्टि सिर्फ वेश्या ही पहुँचा सकती है क्योंकि वह इस कला में माहिर है।[19] लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इस तरह के लोगों की यौन वासना की पूर्ति का बोझ वेश्या ही उठाएगीं? क्या यह उनके अधिकारों एवं इच्छाओं का दमन नहीं है?

प्रायः हर वेश्या नए–नए ग्राहकों की जगह निश्चित ग्राहकों में ज्यादा रूचि लेती हैं, चाहे वे जैसे भी हो। क्योंकि ये ग्राहक फिक्स्ड डिपोजिट की तरह उन्हें सुरक्षा प्रदान कर सके। मैडम मीना भी अपने चकले में रहने वाली हर वेश्या को वेश्यावृत्ति के सभी गुर सीखाती है जिससे उनके निश्चित ग्राहक बने रहे। इसी कारण जब वेश्या जूली अपने ग्राहक को मनमानी करने से रोक देती है तब वह ग्राहक उसे जोर से थप्पड़ लगा देता है। यहाँ तक कि कमरे से निकलने के बाद जब वह अपनी मैडम मीना से इसकी शिकायत करती है तो वह ग्राहक को कुछ कहने के बजाय मीना को ही डाँट लगा देती है क्योंकि वह इस धंधे के उसूल को बहुत अच्छे से जानती है। व्यावसायिक दृष्टि से यह सही भी है क्योंकि कोई भी सौदागर चाहे वह देह बेंचने वाला हो या कोई अन्य वस्तु अपने ग्राहकों को इतनी आसानी से खोना नहीं चाहता है। जूली के लिए मीना को

कहीं न कहीं सहानुभूति भी है लेकिन वह यह भी जानती है कि अगर जूली का ऐसे ही रवैया रहा तो शायद उसे आगे एक भी ग्राहक नहीं मिलेगें। क्योंकि–

''उसने नोट किया था कि खूबसूरत और छोटी उम्र की होने के बावजूद कोई भी ग्राहक जो एक बार जूली को ले जाता था दोबारा उसकी.....माँग नहीं करता था। एक ने तो दबंग होकर कहा था, बेजान माटी है, न मीठी, न तीती, न हिलती, न डुलती।''[20]

इस प्रकार हर वेश्या को अपने ग्राहक को पैसे के हिसाब से पूरी संतुष्टि प्रदान करनी होती है और वह भी बिना किसी विद्रोही भाव के। तभी उसका एवं उसके परिवार का पालन–पोषण संभव हो सकेगा और चकले में उसको शरण मिली रहेगी। इसके अतिरिक्त चकलाघरों की एक और विशेषता सुकीर्ति को पता चलती है वह यह कि छुकरी यानि नाबालिग लड़की की मांग चकलाघरों में बहुत होती है। यह चोरी से लाई जाती हैं और बाद में उन्हें चकलाघरों में बेच दिया जाता है। प्रायः उनका रेट बहुत हाई होता है क्योंकि ग्राहकों के बीच उनकी सबसे ज्यादा मांग होती है। एक बार मोटी रकम में खरीदे जाने के पश्चात् उनकी सारी कमाई चकलाघर की मालकिन के पास जाती है। इस तरह धीरे–धीरे सुकीर्ति के सामने वेश्या जीवन की न जाने कितनी सच्चाईयाँ सामने आती है जो उसे यह सोचने पर मजबूर कर देती है कि आखिर क्या होगा इन वेश्याओं का? समाज का अंग होते हुए भी उनका अपना एक अलग समाज है जहाँ सिर्फ देह, भूख और पैसे की भाषा बोली जाती है और स्वतंत्र चकलाघर की स्थापना उनका मुख्य उद्देश्य है। शायद इसका प्रमुख कारण यह है कि–

''अधिकांश के दिमाग में एक ही कीड़ा है कि चूँकि उन्होंने स्कूल का मुँह नहीं देखा, इस कारण उनके लिए सम्मानित जीवन के सारे रास्ते बन्द हो चुके हैं।''[21]

सुकीर्ति जब मीना, रमा, नलिनी, कृष्णा, नूरी के अतीत के बारे में पता चलता है तब उसके अंदर उन सबके प्रति सहानुभूति जाग्रत हो जाती है। इन सभी वेश्या पात्रों

द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाए जाने के पीछे प्रमुख कारण आर्थिक ही रहा है। अगर वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं शिक्षित होती तो शायद वे इस पेशे को कभी नहीं अपनाती। मैडम मीना के अतीत के बारे में जानने के पश्चात् सुकीर्ति स्वयं से यह प्रश्न करती है कि–

''लोग कहते हैं भंगी पैदा नहीं होते, बना दिए जाते हैं कोड़े मार–मार कर.....पर क्या यही वेश्या जीवन का भी सच नहीं? इनमें से कौन थी जिसने चाहा था ऐसा जीवन?''[22]

सुकीर्ति जब सोनागाछी, खिदिरपुर, कालीघाट एवं बहुबाजार की गलियों से होकर आने के बाद अत्यन्त बैचेन हो जाती है इसलिए वह अपने मित्र मेघेन को अपने घर बुलाती है। वह उसके सामने इन गलियों की सच्चाईयाँ उजागर करती है। विचारों के आदान–प्रदान के दौरान मेघेन उसे वेश्यावृत्ति एवं वेश्यागामी पुरूषों के विषय में भी बताता है। वह प्राचीन काल एवं वर्तमान समय में व्याप्त वेश्यावृत्ति के स्वरूप की तुलना करते हुए सुकीर्ति को बताता है कि प्राचीन काल में वेश्याओं की स्थिति वर्तमान समय के मुकाबले बहुत अच्छी थी। साथ ही उस समय की उच्चकोटि की कलावती वेश्याएँ जहाँ वासना का शमन करती थीं वहीं कला का भी उच्च कोटि का आनन्द देती थीं। उनकी सम्भाषण कला, रसिक मिजाजी, हाजिरजवाबी एवं नृत्य–संगीत का लुत्फ उठाने रईस, शौकीन एवं सुसंस्कृत व्यक्ति खुलेआम बिना किसी अपराधबोध के जाते थे। लेकिन आगे चलकर औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण के कारण कला एवं अदाकारी सिमटती चली गई और शेष रह गई सिर्फ देह। मेघेन अपने एक मित्र के बारे में सुकीर्ति को बताता है जो अक्सर रेड लाइट एरिया में जाता है और उसके वहाँ जाने का एकमात्र उद्देश्य सिर्फ और सिर्फ मनोरंजन है। इसके अतिरिक्त उसका यह भी मानना है कि अगर वह नहीं जाएगा तो उससे वेश्यावृत्ति पर रोक नहीं लगाई जा सकती है क्योंकि अन्य व्यक्ति तो उसके पास अवश्य जाएगा। यहाँ तक कि स्त्रियों के बारे में उसकी सोच कितनी निकृष्ट है इस बात का पता मेघेन को दिए गए इस उत्तर से मिलता है–

''तुम्हें अपराध–बोध नहीं होता वहाँ जाते हुए?''

कमीना जबाव देता है, ''नहीं, बिकाज आई पे फॉर इट।'' (क्योंकि मैं इसके लिए देता हूँ।)

''यूँ भी मुझे वह आदमी कम जानवर ज्यादा नजर आता है। उसके दिमाग में सिर्फ औरत ही औरत है। पर औरत के दिल और दिमाग में क्या है, उससे कुछ लेना–देना नहीं है। उसे बस मादा चाहिए। और वह वहाँ भी इक्की–दुक्की के पास नहीं, घूम–घूम कर बारी–बारी से सबके पास जाता है।''[23]

सुकीर्ति जब मेघेन के दोस्त के विषय में जानकर उसके मन में यह प्रश्न उठता है कि आखिर कोई व्यक्ति किसलिए वेश्याओं के पास जाता है? जब वह मेघेन से इसके पीछे का कारण पूछती है तो वह उसको बताते हुए कहता है कि–

''तो जाहिर है कौन जाता है वेश्याओं के पास, आज के परिदृश्य में। वे ही जो क्षणिक देह–पीड़ा से पीड़ित हैं। जिन्हें अपने स्नायुतन्त्र के कसाव और तड़कती नसों के खिंचाव को सम पर लाने के लिए 'कुछ' चाहिए। परिष्कृत बोध, नैतिक विवेक या आत्मचुभन जैसी बातें इनके जेहन में मर चुकी होती हैं। रोटी के बाद इनकी सबसे बड़ी जरूरत यही है–सेक्स। ऐसे ही लोग आज के परिदृश्य में जा रहे हैं वहाँ जिनकी माँग भी एकदम दरिद्र स्तर की है–सिर्फ गोश्त, ठीक जानवर की तरह और यह भी सही है कि वे इस स्तर पर जानवर होकर ही जाते हैं, क्योंकि आदमी और जानवर में एक ही अन्तर होता है कि 'मैन कैन अवाइड इट बट एनिमल कांट।''[24]

मेघेन की उपर्युक्त बात से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान समय में मानव कितना संवेदनहीन हो चुका है जिसे केवल स्त्री देह से ही मतलब है। वो क्या सोचती है, क्या समझती है एवं क्या चाहती है उससे इन पुरूषों का कोई सरोकार नहीं। ऐसे संबंध तथा मानव को किस नाम से संबोधित किया जाए जहाँ प्रेम एवं इंसानियत ही शेष नहीं रह गई है। प्रेम एवं यौन तृप्ति मात्र एक क्रय–विक्रय तक सीमित होकर रह गई है।

'बटरोही' जी ने अपने लेख 'हिन्दी उपन्यास में देह व्यापारः स्त्री की नजर से' में ऐसे रिश्तों को कीट–पतंगों से भी निकृष्ट माना है–

''अपने जीवन काल में औरत और मर्दों के मैंने भी अनेक रूप देखे हैं, मगर इस रूप के (जो मेरे देखते–देखते और न चाहते, एक 'समाज' बन चुका था) मेरे लिए मनुष्य जाति से अलग कुछ और ही था, जिसे पशु–पक्षी या कीट–पतंगों के समाज की तरह भी रेखांकित नहीं किया जा सकता।''[25]

ऐसे समाज की निर्मिति के पीछे शायद प्रमुख कारण यह है कि वहाँ जाने वाला हर वेश्यागामी पुरूष संवेदनाहीन हो चुका है और उसके अंदर स्त्री जाति के लिए सम्मान भी शेष नहीं रह गया। तभी उसे इस बात का अपराधबोध नहीं होता। दूसरी ओर वेश्याएँ भी इस पेशे को मजबूरीवश अपनाती हैं इस कारण वह अपने हर आने वाले ग्राहक से घृणा करती हैं। यद्यपि यह सत्य है कि ऐसे समाज एवं वातावरण में सिर्फ मृत आत्मा और जीवित शरीर की कल्पना ही की जा सकती है। किन्तु लेखिका ने उपन्यास के अन्तर्गत ऐसी वेश्याओं का भी चित्रण किया है जिन्होंने अभी भी अपनी आत्मा के सौन्दर्य को बचाकर रखा हुआ है। उपन्यास में ऐसा ही एक चरित्र है– गायत्री, जो स्वयं फ्लाइंग वेश्या है। कलकत्ता में वेश्यावृत्ति का एक स्वरूप फ्लाइंग वेश्या के रूप में हमारे समक्ष आता है। कोलकाता के दूर दराज इलाकों में बसने वाली स्त्रियों को यहाँ 'फ्लाइंग सेक्सवर्कर' कहा जाता है। 'फ्लाइंग सेक्सवर्कर' यानी 'उड़न यौनकर्मी'। ये यौनकर्मी यहाँ सिर्फ नौकरी करने आते हैं।[26] वह पास के गाँव मागराघाट से सुबह ग्यारह–बारह बजे तक आती थी और शाम ढले ही चली जाती थी। पति के उकसाने एवं अपने बच्चों का पेट पालने के खातिर वह इस पेशे को अपनाती है। कुछ ही दिन पहले उसने अपनी गली की एक बारह वर्ष की लड़की को जबरन वेश्या बनने से रोका था जिसके कारण उसे काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। सुकीर्ति को भी उसके विषय में पता चलता है और वह उससे मिलने आती है। गायत्री से मिलने एवं उससे बात करने के दौरान उसे यह

सुनकर आश्चर्य होता है कि एक वेश्या को भी अपने इज्जत की परवाह होती है और इसके लिए उसे पति नामक खूँटे से बंधे होने का छल करना पड़ता है–

''गायत्री वही जवाब देती, जो सत्य था कि पति उसे छोड़ सकता है, पर वह नहीं क्योंकि उसके गाँव में स्त्री का इज्जत तभी मिलती है जब उसके पीछे कोई पुरूष हो। सुकीर्ति को ध्यान आया, उसने कई वेश्याओं को बिना किसी के साथ विवाह किए भी लाइन से बाहर रहते हुए सिन्दूर लगाते देखा था, शायद इसलिए कि सामाजिक यथार्थ और अनुभव ने उन्हें समझा दिया था कि अनावश्यक जिल्लत और अपमान से बचने के लिए जरूरी है कि वे किसी पुरूष के खूँटे से बँधे होने का छल करें।''[27]

गायत्री सुकीर्ति का अपने ग्राहकों के विषय में भी बताती है जिनमें से अधिकतर झाकावाले, मुटिया, ठेले गाड़ीवाले और टैक्सी ड्राइवर जैसे लोग होते हैं। ये अत्यन्त गरीब होने के साथ–साथ शराबी, घिनौने एवं बदबूदार होते हैं जो शार्ट रेट के लिए वेश्याओं के पास आते हैं। शार्ट रेट वाले ग्राहकों के साथ वेश्याएँ ज्यादा समय नहीं व्यतीत करती हैं बल्कि उन्हें–उन्हें जल्दी–जल्दी ऐसे ग्राहकों को निपटाना होता है। गायत्री आगे बताती है कि रेट के हिसाब से वेश्याएँ ग्राहकों को अपनी देह सौंपती हैं। वे अपनी शरीर को दो भागों में बाँटकर रखती हैं अर्थात् पूरा पैसा दोनों भाग, कम पैसा सिर्फ एक भाग। इसके अतिरिक्त गायत्री जैसी फ्लाइंग वेश्याओं के पास खुद के घर नहीं होते हैं इस कारण रोज के हिसाब से उन्हें कमरे किराये पर लेने होते हैं। वहाँ की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय है। जैसा कि–

''तो कई बार जब दोनों लाइनवालियों के ग्राहक एक साथ आ जाते हैं तो बीच कमरे में ही डोरी बाँधकर पर्दा टाँगकर दोनों तरफ चटाइयाँ या दरियाँ बिछा दी जाती हैं।..... हमारे लिए यह सब ऐसा ही है जैसा कि सरकारी अस्पतालों में आपने देखा होगा, आसपास दो डॉक्टर और बीच में लकड़ी का पार्टीशन। फर्क यही है कि यहाँ डॉक्टर

नहीं हम वेश्याएँ रहती हैं और बाहर लाइन में खड़े रहते हैं सेक्स रोगी। कई बार ऐसा भी होता है कि एक लाइनवाली भीतर है और उसी का दूसरा ग्राहक आ गया है तो वह बाहर खड़ा धैर्य के साथ अपनी बारी का इन्तजार करता रहता है।''[28]

गायत्री की बातें सुनकर सुकीर्ति यह सोचने के लिए मजबूर हो जाती है कि क्या प्रेम का व्यापार भी इतना मैकेनिकेली होता है? अगर ऐसे प्रेम को समाज में पाप समझा जाता है तो इसके लिए जिम्मेदार केवल वेश्याओं को क्यों ठहराया जाता है? क्या इस पाप के भागीदार वे लोग नहीं जो वेश्यागामी है? साथ ही बिना प्रेम के देह भोग को व्यभिचार माना गया है तो जो लोग बिना श्रम फाटके से आया पैसा क्या व्यभिचार नहीं है? लेखिका ने अपने उपन्यास में केवल वेश्या जीवन के यथार्थ को नहीं बल्कि शेयर बाजार के सच को भी पाठकों के समक्ष रखा है। उन्होंने शेयर बाजार के उन सटोरियों को भी वेश्याओं की श्रेणी में रखा है जो बिना श्रम के हजारों रूपए कमाते हैं। जैसा कि–

''एक तरफ सट्टा बाजार एक तरफ देह बाजार। क्या दोनों का ही मूल तत्व एक नहीं? दोनों जगह अविचार। अतिरेक.....एक जगह आत्मारहित, प्रेमरहित, देह भोग। दूसरी तरफ श्रम रहित, सिद्धान्त हीन अर्थ। जूआ। एक मापदंड देश की अर्थव्यवस्था का तो एक मापदंड सांस्कृतिक जीवन का।''[29]

उपन्यास के अन्तर्गत लेखिका ने वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता प्रदान किए जाने पर प्रश्न उठाया है। आज वेश्याएँ स्वयं को श्रमिक वर्ग के अन्तर्गत लाने की मांग कर रही हैं जिससे वे भी सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके एवं अपने मूलाधिकारों का प्रयोग कर सके। लेखिका वेश्याओं से जुड़े इस प्रश्न पर विस्तृत चर्चा नहीं की है किन्तु उनके विचारों से यह प्रतीत होता है वे इसके समर्थन में कदापि नहीं हैं। उनका यह मानना है कि इस समस्या को एक दिन में समाप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि

अधिकांश वेश्याओं ने आर्थिक कारणों से इस पेशे को अपना रखा है। उनके पास न तो कोई संरक्षक है और न ही पर्याप्त शिक्षा। कई वेश्याओं ने इस पेशे को छोड़कर अन्य पेशे के द्वारा अपना जीवन चलाने की कोशिश भी की। किन्तु समाज उन्हें अभी भी अपनाने को तैयार नहीं है। जैसे ही लोगों को पता चलता है कि वे लाईनवालियाँ हैं वैसे ही उन्हें काम से या उनके बच्चों को स्कूल से निकाल दिया जाता है। इस प्रश्न पर लेखिका स्वयं कहती है कि–

''देखो, यह समस्या आज इतनी व्यापक और इस कदर समाज के अन्दर जड़ जमा चुकी है कि मान लो आज एक रात में ही किसी चमत्कारिक ढंग से वेश्यावृत्ति को रोक भी दिया जाए, तो ये वेश्याएँ भूखी मर जाएँगी, न कोई शिक्षा इनके पास, न कोई विकल्प और न ही किसी का संरक्षण इनके पास। आज निन्यानबे प्रतिशत वेश्याएँ पेट की मारी हैं। शायद ही इनमें कोई ऐसी हो जो तबीयत की मारी हो। सिर्फ इतना भर कह देना कि इनका उन्मूलन होना चाहिए, समस्या की जड़ों को नहीं, वरन् सिर्फ उनके पत्तों और शाखाओं को देखना है।''[30]

यहाँ तक कि स्वयं सुकीर्ति जो उपन्यास में लेखिका के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है, वह भी वेश्या पिंकी के द्वारा गर्भपात के लिए सहायता मांगे जाने पर मदद करने से पहले कई बार सोचती है। क्योंकि उसे भी यह डर है कि कहीं समाज भी उसे वेश्या की दृष्टि से न देखने लगे। इस कारण यदि वेश्याओं को देह व्यवसाय का दर्जा दे दिया जाएगा तो इससे समस्या का हल नहीं होगा बल्कि ये समस्याएँ और बढ़ेगी जिसके परिणामस्वरूप न जाने कितनी पिंकी और रेशमी जैसी वेश्याएँ आगे बनाई जाएगी जो तीस–पैंतीस साल की आयु में ही अनेक यौन रोगों से संक्रमित होकर घृणित जीवन जीने के लिए मजबूर होंगी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'सलाम आखिरी' के माध्यम से लेखिका ने वेश्या जीवन के दुख एवं यथार्थ को अत्यन्त गहराई से देखा एवं पाठकों के समक्ष

रखा है। साथ ही वेश्या जीवन से जुड़े तमाम पहलुओं की ओर लेखिका ने प्रकाश डाला है जिस पर लोगों का ध्यान कम गया है। आलोच्य उपन्यास के अन्तर्गत लेखिका ने वेश्यावृत्ति के बदलते स्वरूप पर प्रकाश डाला है जो आज कोठे से बाहर निकलकर पार्लरों, होटलों एवं घरों तक पहुँच गई है। कथानक के बीच में बौद्धिक विमर्श के दौरान कहीं–कहीं असंगति देखने को मिलती है जिसकी ओर संकेत करते हुए 'महेश दर्पण' ने अपने लेख 'छोड़ दिए गए विषय पर सोचने को मजबूर करता है सलाम आखिरी' में लिखा है कि–

''अपनी तमाम जानकारियों को उपन्यास में भर देने के लालच से खुद को बचा नहीं पाई हैं रचनाकार। बीच–बीच में अनेक कथाएं आती जाती रहती हैं, लेकिन वे उपन्यास की गति को तो तोड़ती ही हैं, अपनी संगति भी नहीं बिठा पाती। लेकिन यह एक सार्थक अध्ययन जरूर है जो छोड़ दिए गए विषय पर सोचने को मजबूर करता है।''[31]

महानगरीय वेश्या जीवन को आधार बनाकर लिखा गया 'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित' का 'मुरदाघर' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास है। बम्बई महानगर में रहते हुए भी यहाँ की वेश्याएँ महानगर के मुख्य प्रवाह से कटी हुई हैं क्योंकि वे निर्धनता से अभिशप्त हैं। प्रायः स्त्री आर्थिक तंगी एवं परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए मजबूर होती है। 'आर0 ई0 एल0' ने इस बात का समर्थन करते हुए अपनी पुस्तक '*Social Disorganization*' में कहा है कि अधिकांश विद्वानों ने यह माना है कि स्त्रियों के द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाए जाने का प्रमुख कारण आर्थिक ही रहा है।[32] इलियट एवं मेरिल ने वेश्यावृत्ति के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि–इस विषय पर बहुत से लेखकों ने यह अनुभव किया है कि आर्थिक आवश्यकता ही प्रमुख कारण थी, जिसके लिए स्त्रियों ने सेक्स को बेचना प्रारंभ किया।[33]

आलोच्य उपन्यास की वेश्याएँ 'मैनाबाई', 'रोजी', 'चंदू', 'हसीना', 'सुभद्रा', 'मरियम' आदि भी अपना शरीर बेचना नहीं चाहती हैं लेकिन गरीबी और भूख इस उपन्यास की

हर उम्र की स्त्री को शरीर बेचने के लिए मजबूर करती है। शरीर बेचना उनकी चाहत नहीं बल्कि विवशता है। लेखक ने इन गरीब रंडियों की दयनीय स्थिति एवं विवशता का वर्णन इस प्रकार किया है–

''बदबू और पसीने वाली रंडियाँ.....अँधेरे में डूबी काली चमड़ी पर थोपती हैं ढेर–सा पाउडर। होंठो पर लाल रंग। मगर सूख जाते हैं गजरे। दूसरा किनारा.....बहुत दूर। कुछ बाकी नहीं रहा अब। इस तरफ भटको। थक जाओ। बैठ जाओ अँधेरे कोनों में। देखो उस किनारे की रोशनी को जो बहुत दूर। हारी हुई रंडियाँ देखती हैं उस रोशनी को। देती हैं गालियाँ एक दूसरे को।''[34]

जवान 'हसीना', 'रोजी' एवं 'मरियम' से लेकर कंकालवत बूढ़ी 'बशीरन' जैसी वेश्याएँ भी इस व्यवसाय में लिप्त हैं। जीने के सारे रास्ते बंद हो जाने पर उनके पास यही विकल्प शेष रह जाता है। उनके जीवन के उद्देश्य समाप्त हो चुके हैं अगर वह कुछ हैं तो सिर्फ एक जिंदा लाश। 'डॉ0 रामविनोद सिंह' ने इस उपन्यास के यथार्थ पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि–

''निश्चय ही वेश्या–जीवन के निर्मम यथार्थ को अधिक गहराई और तल्ख के साथ पहली बार, इस उपन्यास में देखा गया है। जिन्दा रहने की इच्छा ने ही युवती से लेकर कंकाल–मात्र बनी औरतों में भी सजावट के साथ ग्राहकों के सामने अपने को पेश करती हैं। यद्यपि जिन्दगी जीने का यह बहुत ही घटिया तरीका है, तथापि हमारी सामाजिक व्यवस्था ने जीवन–साधनों का ऐसा वितरण किया है कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग जिन्दा लाश बनकर मुरदाघर में निवास कर रहा है।''[35]

स्थिति यह है कि इस उपन्यास की वेश्या पात्र मात्र चवन्नी, अठन्नी, एक या अधिकतम दो रू0 के खातिर अपना शरीर बेचने के लिए मजबूर है। यहाँ तक कि

कभी–कभी स्थिति यह हो जाती है कि अगर रात में उन्हें कोई ग्राहक न मिले तो अगले दिन उनके पास चाय पीने के लिए भी पैसे नहीं रह जाते हैं। कुली, मजदूर, ड्राइवर, रसोईया और चाय व शराब बेचने वाले दुकानदार उनके ग्राहक हैं। इन वेश्याओं की स्थिति इतनी खराब है कि ये ग्राहकों के लिए आपस में ही लड़ जाती हैं। मैनाबाई और बशरीरन में एक–दूसरे के ग्राहकों को लेकर हमेशा झगड़ा होता रहता है और कभी–कभी यह इतना बढ़ जाता है कि गाली–गलौच एवं मार–पीट की नौबत तक आ जाती है। जैसा कि–

''बशीरन! साली कुत्ती की अउलाद! टापा–आपा क्या बोलती! मेरे से बात कर। नईं जाती थी तू दौड़–दौड़ के उधर। बाबू डिरैबर मेरे कने आता था तो तू कायकू मरती थी बीच में? बोल छिनाल! कायकू आती थी? मैं कभी आई क्या तेरे बीच में? जभी शेरू मेरे कू पाँच रूपिया देता था.....तू कायकू तैयार हुई दो रूपिया में? बोल ना! अभी दे ना जवाब! लगाऊँ तेरे थोबड़े पे चप्पल?''[36]

उपन्यास की हर वेश्या पात्र की बस यही कहानी है कुछ अपने प्रेमी से धोखा खाकर इस व्यवसाय में आ गई और कुछ गरीबी एवं अपने पति की बेकारी के कारण इस पेशे को अपनाने के लिए मजबूर हैं। यहाँ तक कि इन वेश्याओं का पुलिस एवं कानून प्रशासन से भी विश्वास उठ चुका है। पुलिस की धाड़ में पकड़ी गई वेश्याओं में जब मैनाबाई नई छोकरी को अपना घर का पता बताकर वापस चले जाने के लिए बोलती है तो उसके पीछे उद्देश्य सिर्फ उसे इस पेशे में जाने से रोकना था। क्योंकि वह जानती थी कि 'सरकारी नारी निकेतन' सिर्फ वेश्याएँ तैयार करने के कारखाने हैं। जहाँ अरक्षित लड़कियों को सुरक्षा एवं सुधार के नाम पर रखा जाता है और बाद में किसी आदमी को उसका रिश्तेदार बनाकर बेच दिया जाता है। वह उसे समझाती हुई कहती है कि– ''मेरी बात कू समझ ले। तू पता नईं बताएँगी तो ये लोक तेरे कू होम में भेज

देंगा। एक बार होम में गई.....तो बन जाएँगी पूरी रंडी। कोई भी आएँगा....ले जाएँगा तेरे कू रूपिया देके। बेच देंगा ये लोक तेरे कू। उधर कागद पर लिख देंगा.....तेरा भाई ले गया.....तेरा बाप ले गया। समज गई क्या? ये लोक जो धाड़ मारता है तो कायके वास्ता मारता है?''[37]

इस तरह पुलिस–प्रशासन किसी लड़की को वेश्या बनने से रोकने के बजाय स्वयं वेश्यावृत्ति में ढकेलने के लिए मजबूर करता है। यहाँ तक कि स्वयं पुलिस वाले वेश्याओं को अपना शिकार बनाते हैं। 'गीताश्री' ने अपनी पुस्तक 'औरत की बोली' में पुलिस प्रशासन की पोल खोलते हुए लिखा है कि–

"कितनी बार लड़कियाँ वेश्यालयों से छुड़ाई तो गईं पर थानों में अपनी अस्मत बचाने में नाकाम रहीं। दुखदायी यह है कि वेश्याओं के बलात्कार को बलात्कार नहीं माना जाता। सेक्स श्रमिक निरंतर शिकायत करती हैं कि पुलिस उनकी मदद नहीं करती। पुलिस में शामिल कुछ भ्रष्ट लोग कभी हमसे त्यौहारी चाहते हैं तो कभी सेक्स।"[38]

मलिन बस्ती में रहने वाली वेश्याओं के साथ उनकी अवारा संतानों का चित्रण वेश्यावृत्ति की समस्या का और अधिक दुरूह बना देता है। इन वेश्याओं से उत्पन्न होने वाले बच्चों की दशा भी अत्यन्त शोचनीय हैं क्योंकि वेश्यावृत्ति की समस्या वर्तमान पीढ़ी के साथ–साथ आगे आने वाली पीढ़ी का भी सर्वनाश कर देती है। 'राजू', 'गोपू', 'अन्ना', 'गन्या' आदि वेश्या संतानें सुबह होते ही भूख मिटाने के लिए होटलों एवं ढाबों के पीछे फेंके गए सड़े एवं बदबूदार जूठन के लिए आपस में एक–दूसरे से एवं कुत्तों से मुकाबला करते हैं। जैसा कि–

''जाग पड़ते हैं ऊँघते हुए कुत्ते भी....दौड़ पड़ते हैं। कौवे भी आ जाते हैं....चिल्लाते हैं। भिन–भिन....उड़ने लगीं मक्खियाँ। फेंक दिए ताश खेलने वालों ने.....दौड़ने लगे। छोटे

लड़के मार रहे हैं पत्थर कुत्तों को.....हटते नहीं कुत्ते। उड़–उड़कर वहीं बैठ जाते हैं कौवे।.....हटाते जाओ जल्दी–जल्दी। कुछ नईं।.....हाँ! एक मच्छी.....आधी खाई हुई..... अचानक दिख जाती है।.....दौड़ पड़ते हैं सब।.....तेरी माँ की.....हट रे.....तू हट साला भेनचोद।''[39]

इस तरह वेश्या संतानें छोटी उम्र में पढ़ने के बजाय खाने की मोहताज हैं। इसके लिए वे कुत्ते, बिल्ली, कौवे तक से भूख की खातिर लड़ने के लिए तैयार है। आखिर सरकारी प्रयासों के बावजूद वेश्यापुत्री वेश्या बनने एवं वेश्यापुत्र जुआरी, शराबी, गुंडे एवं चोर बनने के लिए मजबूर हैं। इन सबके पीछे प्रमुख कारण शायद व्यवस्था का लचीलापन एवं सरकारी प्रयासों का सही ढंग से कार्यान्वयन न होना है। इसके अतिरिक्त आलोच्य उपन्यास में वेश्या मरियम की नवजात शिशु भी हैं जिनके पैदा होते ही उनकी मृत्यु की आकांक्षा की जाती है क्योंकि मरियम को यह डर है कि वह अगर बच्चे की देखभाल करेगी तो धंधा कैसी करेगी और खाएगी क्या। इसी कारण वह अपने नवजात पुत्र को एक पाइप में बंद करके मर जाने के लिए छोड़ देती है। जैसा कि–

''गोल पाइप में रोता जाता है काला बच्चा। किसी काले मजदूर की औलाद! गालियाँ बकती है मरियम.....कायकू आया तू? साला मरदूद! मेरा जिंदगानी हराम करने कू? कोन बुलाया था तेरे कू? अभी मैं तेरे कू देखू कि धंदे कू जाऊ। हरामी की अउलाद!''[40]

यद्यपि यह सच है कि जीवन की विवशता ने मरियम को अपने नवजात शिशु को पाइप में छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया है किन्तु उसके अंदर भी कहीं न कहीं ममता अभी शेष है। केवल मरियम में ही नहीं बल्कि उपन्यास की प्रमुख वेश्या पात्र मैनाबाई और हसीना में मानवता शेष है और वे एक अच्छे जीवन एवं वेश्या व्यवसाय से मुक्त होने के लिए लगातार छटपटा रही हैं। दोनों के पति भी लगातार प्रयासरत हैं कि वे दोनों

अपने परिवार को अच्छी जिंदगी प्रदान कर सके। साथ ही अपनी पत्नियों को इस व्यवसाय से निकाल सके। जैसा कि–

''शुरू हो रही है नई जिंदगानी.....शाम के वक्त। तैयार हो रहा है पोपट। निकल जाएगा अभी सपने की तलाश में। वलसाड़.....वापी.....मुंबई। आखिरी चांस.....जो ले जागा नई दुनिया में। फिर पुरानी दुनिया छूट जाएगी पीछे। दीवार के उस पार सफेद रोशनी..... तैरकर आ जाएगी पास। रोजी देख रही है रास्ता। हसीना बांध रही है पोटली। सब लोग बांध रहे हैं। चले जाएँगे उस पार। पोटलियाँ बगल में। शुरू कर देंगे नई जिंदगी.... .नया वक्त। कभी लौटकर नहीं देखेंगे उस तरफ....जहाँ कभी था पुराना वक्त.....सड़ा हुआ लिबलिबा मिकदार। जा रहे हैं पोटलियाँ दाबे.....जहाँ एक सुबह है....उजाला है.....जहाँ चमकती है खूबसूरत धरती।''[41]

किन्तु इसके बावजूद व्यवस्था की मार उन्हें चोरी करने के लिए बाध्य करती है। अपने सपनों को पूरा करने के चक्कर में पोपट चोरी करते हुए रेल से कटकर मर जाता है और दूसरी तरफ जब्बार अपनी पत्नी के साथ आगे अच्छा जीवन व्यतीत करने के प्रयास में चोरी करता है और पुलिस को चोरी किए गए माल के विषय में कुछ नहीं बताता। उसकी यह प्रतिज्ञा रहती है कि कारागार से निकलने के बाद वह अपनी पत्नी एवं बच्चे के साथ एक अच्छी जिंदगी व्यतीत करेगा। इसी कारण कारागार में उसकी यंत्रणापूर्ण पिटाई होती है जिसके फलस्वरूप पुलिस की मार से उसके जीवन का अंत हो जाता है। इस प्रकार जब्बार एवं पोपट की मृत्यु के साथ उनके सपनों का अंत हो जाता है वहीं दूसरी तरफ अपने पति की मौत मैनाबाई और हसीना के सपनों का अंत कर देती है। यह घटना उन्हें पुनः वेश्यावृत्ति नामक अंधकार में ढकेल देती है जहाँ से वह निकलना चाहती थी। शायद यही उनकी नियति है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'सलाम आखिरी' एवं 'मुरदाघर' भारत के महानगरों में व्याप्त वेश्या जीवन के यथार्थ एवं उनकी त्रासदी को बयान करते हैं। इन

उपन्यासों में अभिव्यक्त यथार्थ केवल कलकत्ता एवं मुम्बई की नहीं बल्कि समस्त भारत में व्याप्त वेश्यावृत्ति की समस्याओं का चित्रण करता है।

## (ख) विस्थापन की समस्या एवं वेश्या जीवन का यथार्थ–

स्वतंत्र भारत में केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा बनाए गए अधिनियम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 24 सितम्बर 1955 को सामाजिक एवं नैतिक स्वास्थ्य विज्ञान समिति की कमेटी के द्वारा अपनी रिपोर्ट सितम्बर 1955 में प्रकाशित की गई। इसी की सिफारिशों को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने 1956 में *'Suppression of immoral traffic in women and girls act, 1956'* पारित किया। इसे 1 मई 1957 से सम्पूर्ण देश में एक साथ लागू किया गया।[42] इस अधिनियम में वेश्या एवं वेश्यावृत्ति को परिभाषित किया गया। इसके अनुसार कोई भी स्त्री जो धन या वस्तु के बदले में अवैध यौन–संबंध के लिए अपने शरीर को अर्पण करती है, वह वेश्या है और अपने शरीर को इस प्रकार यौन–संबंध के लिए अर्पण करना 'वेश्यावृत्ति है।[43] इसके साथ–साथ वेश्याओं के साथ रहना, उन पर नियंत्रण करना, किसी कार्य के लिए बाध्य करना या लड़कियों को वेश्यावृत्ति हेतु बाध्य करना या उन्हें किसी एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेश्यावृत्ति हेतु ले जाने पर कैद एवं जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम में वेश्यावृत्ति में लिप्त वेश्याओं के पुनर्वास हेतु उपबंध भी किए गए हैं। उनके सुधार हेतु सुरक्षा गृहों की स्थापना का प्रावधान हैं।[44]

इस प्रकार 'सीटा एक्ट' के तहत स्त्रियों की दशा में सुधार हेतु विभिन्न प्रावधान किए गए हैं किन्तु क्या इन प्रावधानों से वेश्याओं की स्थिति वास्तव में सुधर गई है या और ज्यादा खराब हो गई है? क्योंकि कानून तो बना दिए गए हैं लेकिन इन कानूनों के अनुसार गलती हमेशा महिलाओं की ही होती है। समाज या कानून कभी यह देखने का प्रयास नहीं करता है कि देह बेंचने वालो के साथ–साथ उसको खरीदने वाला भी सजा

का भागीदार है इसलिए उसे भी कड़ी सजा मिलनी चाहिए। लेकिन हमारे यहाँ सजा हमेशा वेश्याओं को मिलती है और उपभोग करने वाला हमेशा बचकर निकल जाता है। 'लुइज़ ब्राउन' ने अपनी पुस्तक 'एशिया का सेक्स बाजार' में वेश्यावृत्ति संबंधी कानूनों के सही ढंग से कार्यान्वयन न होने का समर्थन करते हुए कहा है कि–

''वास्तव में, कानून की किताबों में जो लिखा है और कानूनों को जिस तरह लागू किया जाता है उसमें कोई साम्य नहीं है। वेश्यावृत्ति के कानून जब लागू किए जाते हैं तब भी उनका इस तरह विश्लेषण किया जाता है कि औरतों को खलनायिका बनाया जाता है। मर्दों को व्यभिचारिणी औरतों का शिकार बताया जाता है।''[45]

सरकार द्वारा इस प्रकार के कानून बना तो दिए जाते हैं किन्तु इस पर निर्भर रहने वाले किस तरह से प्रभावित होते हैं उस पर कम ही लोगों का ध्यान जाता है। ऐसे ही विषय को आधार बनाकर 'लक्ष्मीनारायण लाल' ने 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा' नामक उपन्यास लिखा है जिसमें वेश्या जीवन की समस्या और उससे जुड़े हर एक पहलू को लेखक ने अत्यन्त सजीवता के साथ उद्घाटित किया है। लेखक ने उपन्यास में वेश्या बनने के कारणों के पीछे प्रमुख कारण 'अर्थ' को ही माना है। 'डॉ0 भगवतीशरण मिश्र' ने लक्ष्मीनारायण लाल के मत का समर्थन 'हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार' में बड़ी चम्पा एवं छोटी चम्पा के वेश्यावृत्ति अपनाने के प्रमुख कारणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि–

''वेश्या कोई स्त्री यों ही नहीं बनती। इसके पीछे कई कारण होते हैं जिनमें महत्वपूर्ण होती है पेट की आग। इसे बुझाने के सारे प्रयासों में असफल हो जाने के पश्चात् ही कोई नारी वेश्यालय की शरण लेती है। अब तो वेश्यागीरी ही उसके जीने का एकमात्र साधन रह जाता है। जब यह भी चला जाता है तो वह किस आधार पर जीवन–यापन करे?''[46]

स्त्रियाँ यदि स्वयं आत्मनिर्भर हो तो शायद एक सीमा तक इस समस्या को कम किया जा सकता है। लेकिन पूर्णतया समाप्त करना संभव नहीं है। उपन्यास के अर्न्तगत सरकारी प्रयासों का भी वर्णन किया है जिसके अनुसार वेश्यावृत्ति की समस्या हल किया जाना था। इसके लिए 'सीटा एक्ट' बनाकर सभी वेश्याओं को उनके कोठे से विस्थापित कर कहीं और बसने का आदेश दिया गया किन्तु यह किसी ने नहीं सोचा कि वे यहाँ से कहाँ जाएगी। जैसा कि–

''कुछ एक महीने का समय। कहाँ चार सौ वर्ष, कहाँ केवल तीस दिन। राजा का हुक्म। सरकार का फरमान। रंडियाँ अब से रंडियाँ नहीं रह सकती। उन्हें शादीशुदा होकर इस सराय से अलग अपना घर बसाकर रहना होगा। रूप–जीवाओं को शरीर का व्यापार बंद कर केवल नृत्य और गान–कला में रहना होगा। दिलरूबा, बाजार की ये परियाँ घर और समाज में अब सर्वथा दूसरे ढंग से रहेंगी। ये भोगांगनाएँ, तवायफें अब से सम्मानित, मर्यादित स्त्री.....नारी का रूप पाएँगी।''[47]

यद्यपि यह सच है कि वेश्यावृत्ति का उन्मूलन होना चाहिए लेकिन केवल एक सरकारी आदेश मात्र से यह संभव हो सकेगा? वेश्यावृत्ति छोड़ने के पश्चात् वे क्या करेगीं, कहाँ जाएगी इस प्रश्न का उत्तर शायद सरकार के पास भी नहीं है। इसके अतिरिक्त अगर उन्हें एक जगह से विस्थापित भी कर दिया जाएगा तो क्या वे कहीं अन्यत्र यह व्यवसाय नहीं करेंगी या जो वेश्यागामी है वे वेश्याओं के पास जाना छोड़ देगें? क्योंकि जब तक समाज में देह के खरीददार मौजूद रहेगें यह व्यवसाय चलता रहेगा। 'डॉ0 भगवतीशरण मिश्र' के अनुसार–

''परिणाम यह होता है कि वह शरीर का व्यापार करना तो बद नहीं करती, अंतर इतना ही होता है कि वेश्यालय से बेदखल हुई रूपजीवाएँ पूरे समाज में फैल जाती हैं। समाज में उनका शरीर खरीदने वालों की कमी नहीं होती। फलतः कदाचार जो मात्र एक स्थान

अर्थात् वेश्यालय में केन्द्रित होता है वह पूरे समाज में कैंसर की तरह फैल जाता है। जो भ्रष्ट नहीं हुए रहते वे भी अवसर सामने पाकर पतित हो जाते हैं।''[48]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'सेवासदन' में वेश्यावृत्ति के सामधान हेतु एक उपाय यह भी सुझाया था कि वेश्याओं को शहरों के मुख्य स्थान से दूर रखा जाए जिससे युवक एवं युवतियों के बीच इस प्रवृत्ति का विस्तार न हो सके। अपने इस प्रयत्न को वह समर्थन उपन्यास में पद्मसिंह और विट्ठलदास के द्वारा चलाए गए आन्दोलन के माध्यम से देते हैं। आन्दोलन के साथ–साथ कई जनसभाओं का भी आयोजन होता है जिससे इस विषय पर सामान्य लोगों की सोच जानी जा सके। लेकिन यह आन्दोलन ज्यादा सफल नहीं हो पाता है क्योंकि वेश्याओं की बस्ती अगर शहर से बाहर भी स्थापित कर दी जाए फिर भी कुत्सित प्रवृत्ति को वहाँ जाने से कैसे रोका जा सकता है? यह प्रश्न विचारणीय है। 'लक्ष्मीनारायण लाल' ने अपने उपन्यास में इस विषय पर विचार नहीं किया है लेकिन उन्होंने उपन्यास की वेश्याओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास अवश्य किया है। उपन्यास की प्रमुख वेश्या पात्र 'बड़ी चम्पा' अपनी प्रेमी पर विश्वास करके उसकी गृहिणी बनना स्वीकार कर लेती है और उसके साथ विवाह करके वह बड़ी चम्पा से गंगाबेली बन जाती है। वह उसके गाँव देईपारा आकर अपने पुराने संस्कारों को मिटा देती है और सद्गृहिणी के रूप में अपना जीवन व्यतीत करने लगती है। लेकिन उसका पति फूलबाबू जो उसे अपनी पत्नी बनाकर लाया था वह उसे वेश्या के रूप में ही देखना चाहता है। बड़ी चम्पा ने अपनी भावी जिंदगी को लेकर जो स्वप्न देखे थे वे सब भंग हो चुके थे और वह पुनः उसी जिंदगी में वापस लौट आती है जिसे वह त्याग चुकी थी। उसके मन में बार–बार यह प्रश्न आता है कि क्या वेश्या औरत नहीं होती है क्या? वह स्वयं को दोष देते हुए कहती है कि–

''यह सब मेरे एहसास का, मेरी नासमझी का कसूर है। वह मेरी समझ की सरासर गलती थी। मैं पत्नी बनाकर नहीं लाई गयी थी। मैं वही बड़ी चम्पा थी, जिसे बड़ी चम्पा ही रहना होगा।''[49]

इस तरह जीवन की विडम्बना को सहते–सहते अंततः वह अपने पति फूलबाबू का घर छोड़कर चली जाती है और अंततः मृत्यु को प्राप्त होती है। बड़ी चम्पा के माध्यम से वेश्या जीवन की त्रासदी के संदर्भ में 'डॉ भगवतीशरण मिश्र' ने ठीक कहा है–

''इस परिस्थिति का एक पक्ष यह भी होता है कि कुछ वेश्याएँ अगर कोई मिल जाए तो पत्नी बनकर घर बसाना भी चाहती है पर उनका भूत उनके इस जीवन को भी अभिशप्त कर देता है। पति की नजरों से सदा आशंका और अविश्वास ही झलकते रहते हैं। बड़ी चम्पा ने पत्नी बनकर रहने का प्रयास अवश्य किया किन्तु जिस व्यक्ति से उसने संबंध स्थापित किया वह उसे एक संस्कारी पत्नी के रूप में कम और एक रूपसी भोग्या के रूप में अधिक देखना चाहता है। पत्नी का कोई अधिकार तो उसे मिलता नहीं और वह यहाँ भी अपने को वेश्या से अधिक नहीं पाती।''[50]

छोटी चम्पा बड़ी चम्पा से बिल्कुल इतर है। वह स्वतंत्र विचारों वाली स्त्री है जो अपनी इच्छानुसार जीवन जीना चाहती है। उसने प्रांरभ से ही यह स्पष्ट कर दिया था कि वह किसी की स्त्री बनकर नहीं रहेगी। उसकी दृष्टि में वेश्या धर्म पतिव्रता धर्म से बिल्कुल कमतर नहीं है। वह अपने व्यवसाय के प्रति पूर्ण निष्ठावान है। जैसा कि–

''मैं वेश्या हूँ, वेश्या ही रहूँगी। मुझे सुहाग से कोई दिलचस्पी नहीं, मेरा उससे कोई सरोकार नहीं। सुहाग मर्द का एक फरेब है महाराज! एक ऐसा जाल जिसमें औरत एक बार फँसकर ताजिन्दगी के लिए गुनहगार हो जाती है।''[51]

छोटी चम्पा ने बड़ी चम्पा की भी स्थिति देखी थी इस कारण वह स्वतंत्र होकर अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह महंत सतीनाथ और उनके गुरू के धर्म को पाखंड मानते हुए उनका विरोध करती है और अहिल्या की पूजा करती है। जिसके कारण उसको गाँव तक छोड़ना पड़ता है। लेकिन इसके बावजूद भी वह अपने जीवन

एवं कष्टों से पराजित नहीं होती और उनका दृढ़ता के साथ मुकाबला करती है। उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने अन्य विस्थापित वेश्या की स्थिति का भी वर्णन किया है। छोटी चम्पा की मुलाकात मगहर बाजार में सराय के कल्लन और वहीं की दो वेश्याएँ श्यामा और गौहरजान से होती है जो वेश्यावृत्ति को त्यागकर गैरकानूनी ढंग से गांजा और चरस के व्यापार करने लगे हैं और बाद में पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिए जाते हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि सरकार द्वारा सीटा एक्ट एवं वेश्याओं की बस्ती को उजाड़ने का जो उद्देश्य था क्या वह सफल हो सका? उपन्यास में लेखक स्वयं बताते हैं कि सराय से उखाड़े जाने के बाद वेश्याएँ फिर से गोरखपुर में आकर वेश्यावृत्ति आरंभ कर देती हैं और जो इस पेशे को छोड़ देती हैं वह या तो कोई और गैरकानूनी पेशा अपना लेती हैं या पत्नी बनने के बावजूद वेश्या ही रहती हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा' के माध्यम से लेखक ने वेश्या जीवन के यथार्थ को उद्घाटित करते हुए यह बताया है कि वेश्या सदैव वेश्या ही रहती है। वह न तो किसी की पत्नी ही बन सकती है, न प्रेमिका और न बेटी। साथ उनका उद्देश्य पाठकों को यह भी बताना था कि सरकारी आदेश पारित करने के साथ–साथ उन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं जैविक कारणों को पूर्णतया समाप्त करने की आवश्यकता जो उसको बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

## (ग) देवदासी प्रथा और वेश्या जीवन–

भारत में प्राचीन काल में देव–देवियों से कन्याओं के विवाह की प्रथा प्रचलित रही है। ऐसी कन्या जिनका विवाह देवी–देवताओं के साथ किया जाता था उनके लिए 'जोगिनी' या 'देवदासी' नाम प्रचलित था। देवदासी का सीधा अभिप्राय है 'सर्वेंट ऑफ

गॉड' अर्थात् देव की दासी या पत्नी। इस प्रथा के अनुसार किसी महिला के संतान न होने पर या किसी कन्या का विवाह न होने पर या किसी दैवीय आपदा की स्थिति में यह मनोकामना रखी जाती है कि जो भी संतान (पुत्र या पुत्री) होगी उसे देवता के चरणों में समर्पित कर दिया जाएगा। मान्यता पूरी होने पर बालक या बालिका का विवाह देवी–देवता से करा दिया जाता और यह मान लिया जाता था कि वे देवार्पित हो गए हैं व उनके शरीर में देवी का संचार हो गया। आगे चलकर इस प्रथा के अन्तर्गत कन्याओं को और उनमें भी दलित कन्याओं को विशेष रूप से अर्पित किया जाने लगा।[52] इन देवदासियों का प्रमुख कार्य देवता की सेवा करना एवं मंदिर में नृत्य–गान करना था। किन्तु आगे चलकर मंदिर के पुजारी एवं उनको क्रय करने वाले गाँव के रहीस उनका उपभोग करते। देवी सेवा के नाम पर अर्पित कन्या 'देवदासी' से 'भोगदासी' बन जाती है और गाँव छोड़कर बड़े शहर के वेश्यालयों में शरण लेने के लिए मजबूर होती है।[53] 'महाराष्ट्र', 'कर्नाटक', 'गोआ', 'आन्ध्र प्रदेश', 'राजस्थान', 'तमिलनाडु' आदि प्रदेशों में अनेक देवदासियाँ मिलती हैं। अंधविश्वास के नाम पर देवदासी प्रथा में ढेकले जाने के पश्चात् जब वे उपभोग के योग्य नहीं रह जाती तब उन्हें कोठों पर बेच दिया जाता या उन्हें भीख मांगने के लिए छोड़ दिया जाता।

हिन्दी में देवदासी प्रथा को आधार बनाकर 'मोहनदास नैमिशराय' ने 'आज बाजार बंद है' नामक उपन्यास लिखा है। यद्यपि यह सच है कि दलित कन्याओं के देवदासी बनने के पीछे प्रमुख कारण आर्थिक कारण रहे हैं किन्तु अंधविश्वास एवं सवर्ण मानसिकता को भी देवदासी प्रथा के प्रमुख कारणों में गिना जाता है। इस उपन्यास के अन्तर्गत दलित वेश्या 'पार्वती' के माध्यम से देवदासी प्रथा एवं वेश्या जीवन के दर्द को बयान किया है। पिता की मृत्यु के पश्चात् माँ ने उसका पालन–पोषण किया था किन्तु गरीबी एवं एवं दलित होने के कारण सवर्णो द्वारा उसे देवदासी बनने के लिए मजबूर किया जाता है और यही से उसके शोषण का चक्र आरंभ हो जाता है। अपने देवदासी बनने की व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए वह कहती है–

''वह अपनी मर्जी से कहाँ बनी देवदासी? उसे तो बस बना दिया गया था देवदासी नहीं भोगदासी। उस समय उसके भीतर उतनी समझ भी कहाँ थी। एक अजीब–सा सम्मोहन होता था देवता और देवदासियों के प्रति।.....जिस मंदिर में उनकी जाति के लोगों का प्रवेश नहीं उसी में पूजा–पाठ कीर्तन, भजन नृत्य अच्छा लगता था। मंदिरों में चढ़ावा भी खूब आता था।.....तब इन सबका उसे ज्ञान न था।''[54]

यद्यपि देवी सबके लिए एक समान होती है किन्तु इस प्रथा के अन्तर्गत दलित वर्ण को विशेष रूप से बलि चढ़ाया गया। सवर्ण समाज के लोग भी भक्ति करते एवं मनोकामना रखते हैं किन्तु वे अपनी कन्याएँ दान करने के बजाय बैल एवं बकरी जैसे मवेशियों का दान किया करते थे। जबकि दलितों से मात्र कन्याओं की मांग की जाती थी। पार्वती भी सुमित को अपनी देवदासी बनने की कथा सुनाते हुए यह प्रश्न बार–बार उठाती है कि आखिर देवदासी के नाम पर दलित कन्या की क्यों बलि दी जाती है? साथ ही वह जाति प्रथा की उन बुराईयों पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है जिसके अनुसार दलितों को छूना एवं उनका मंदिर में प्रवेश करना गलत है किन्तु दलित कन्या को देवदासी बनाने एवं उपभोग करने में कोई बुराई नहीं है। जैसा कि वह स्वयं कहती है–

''देवदासी को कोई भी रखे, देवता कुपित नहीं होते थे। पर दलित समाज की कोई लड़की देवदासी न बने तब वे नाराज हो जाते थे। देवदासी को विवाह करने की मनाही थी, पर देवदासी के साथ दस–दस लोग संभोग करें, न पत्थर के देवताओं को एतराज था और शंकराचार्यों को।.....''[55]

शोषण का यह चक्र केवल मंदिर तक सीमित नहीं रहता है बल्कि वह मंदिर के बाद वेश्यालय में आरंभ होता है और लगातार जारी रहता है। पार्वती जब मंदिर से बंबई लाई जाती है तो उसे एक पल के लिए यह लगता है कि अब यहाँ उससे शोषण से

मुक्ति मिल जाएगी। किन्तु यहाँ आकर वह और बुरी तरह फँस जाती है। वह आगे अपनी स्थिति बताते हुए कहती है कि–

''मुझे नए शहर भेज दिया गया। इसी बाजार में मेरा नाम पार्वती देवी था। मुझे देवी–देवताओं से नफरत हो गई थी। इसलिए अपने नाम के साथ भी देवी लगाना मुझे स्वीकार न था। पार्वती, सिर्फ शिव की नहीं सभी की थी। अब मैं सिर्फ पार्वती थी। कई बार दलाल से मार खाई थी। पुलिस अफसरों के घर भी पहुँचाई गई थी। उनकी भाषा में उस समय मैं नया माल थी। नये देह की तलाश सभी को होती है।''[56]

पार्वती अभी जिस कोठे में रहती है उसमें उसके अलावा और भी वेश्याएँ रहती हैं। उस कोठे में रहने वाली हसीना, फूल, मुमताज हर वेश्या की एक अलग कहानी है। उस कोठे की प्रमुख शबनमबाई हैं जो स्वयं एक वेश्या थी एवं उम्र बढ़ जाने के कारण इस पेशे को त्यागकर अन्य वेश्याओं की कमाई से अपना जीवन व्यतीत कर रही है। एम0 ए0 इतिहास से करने के बावजूद वह आज वेश्या व्यवसाय में है क्योंकि उसके प्रेमी ने उसे धोखा देकर छोड़ दिया था। समाज की गंदगी साफ करना ही उनकी नियति है और समाज को भी उनसे इसी की उम्मीद है।

उपन्यास के अन्तर्गत लेखक पर अम्बेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस कारण लेखक ने उपन्यास के अंत में वेश्याओं को अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत दिखाया है। उनके अंदर अपनी इस स्थिति एवं पुलिस के अफसरों द्वारा किए जाने वाले ज्यादतियों के प्रति आक्रोश का भाव भी है। जैसा कि–

''शाम होते–होते बाजार की रंडियों में एक नया बदलाव आ गया था। आज वे अपने–अपने छज्जों पर सजधज कर नहीं बैठी थी बल्कि संघर्ष के लिए अपने–आपको

तैयार कर रही थीं। कोई कोठा ऐसा न बचा था जहाँ कि रंडियों के भीतर आक्रोश न था। कुछ ने तो थाने पर जाकर नारेबाजी की थी।''[57]

पार्वती के द्वारा वेश्यावृत्ति छोड़े जाने पर अन्य वेश्याओं के अंदर चेतना जाग्रत होती है और अपने को राष्ट्र की बेटियाँ बताते हुए पार्वती की गिरफ्तारी एवं वेश्यावृत्ति के विरोध में सड़क पर उतर आती हैं। जैसा कि–

''अंधेरे से उजाले की ओर वेश्याओं के कदम बढ़ने लगे थे। सेक्स वर्कर्स के बीच चेतना आने लगी थी। यह तो आश्चर्य था। दलालो और भड़वों के लिए यह खबर जितनी दुःखद आश्चर्यजनक थी उससे कहीं अधिक पुलिस थाने में हड़बड़ाहट पैदा करने वाली थी।''[58]

इस प्रकार लेखक ने उपन्यास के माध्यम से वेश्या जीवन के दर्द एवं यथार्थ का चित्रण किया है। साथ ही यह बताने का प्रयास भी किया है कि समाज से अगर वेश्यावृत्ति को दूर करना है तो उसके लिए वेश्याओं को स्वयं प्रयास करना होगा और उसके लिए संघर्ष भी करना होगा। इसके अतिरिक्त सरकार को भी प्रयास करना होगा तभी वेश्यावृत्ति जैसे अभिशाप को समाज से दूर किया जा सकेगा।

## (घ) वेश्या माँ तथा वेश्या जीवन–

वेश्यावृत्ति का सबसे ज्यादा प्रभाव पारिवारिक जीवन पर पड़ता है। वेश्यावृत्ति अपनाने के पश्चात् वेश्याओं का अपना कोई पारिवारिक जीवन शेष नहीं रह जाता। क्योंकि कोई भी सभ्य पुरूष वेश्या को अपनी पत्नी नहीं बनाना चाहता है। इसके अतिरिक्त वेश्याओं व दलालों के बच्चे भी अपने माता–पिता का अनुसरण कर वेश्यागामी हो जाते हैं या देह व्यवसाय में लिप्त हो जाते हैं या सामाजिक दबाव के कारण वे कुंठा

के शिकार भी हो जाते हैं। आर्थिक तंगी एवं वेश्यापुत्र या पुत्री होने के कारण बहुत से बच्चे शिक्षा तक ग्रहण नहीं कर पाते हैं जिसके फलस्वरूप वे चोरी करने या अपने माता–पिता का वंशानुगत व्यवसाय अपनाने के लिए मजबूर होते हैं। लेकिन कुछ ऐसी भी वेश्याएँ होती हैं जो अपने बच्चों को इस पेशे से दूर रखकर उनकी अच्छी शिक्षा एवं देखभाल का प्रबंध करती हैं।

'शैलेश मटियानी' का 'दो बूँद जल' ऐसी ही वेश्या माँ रेशमा के दारूण जीवन की अभिव्यक्ति है जो लगातार अपने बच्चों का भविष्य बनाने के लिए प्रयासरत है। वह दिल्ली के कुतुब रोड की एक बस्ती में रहती है और यही रहकर देह व्यवसाय करती है। सरकार के फरमान पर बस्ती से विस्थापित हो जाने के बाद वह नोखेलाल के घर पर रहना पसंद करती है। सरकार की ओर से उसे 'नारी निकेतन' भी जाने का विकल्प दिया जाता है किन्तु अपने बच्चों की शिक्षा एवं नारी निकेतन की स्थिति जानते हुए उसने नोखेलाल के विकल्प को चुना क्योंकि उसके सामने सिर्फ अपने उदर–पोषण की नहीं, बल्कि अपने बच्चों को भी खर्च भेजने की समस्या है। साथ ही वह सरकारी नारी निकेतन की स्थिति भी अच्छे से जानती थी इसलिए सरकार द्वारा भेजी गई औरतों के दबाव बनाने के बावजूद वह वहाँ रहने से इंकार कर देती है क्योंकि वह औरतें भी सरकारी नारी निकेतन की स्थिति को अच्छे से जानती हैं। जैसा कि–

''.....और, तब उन सरकारी औरतों में से एक ने–जिसने अपना जूड़ा बहुत ही प्रतीकात्मक ढंग से कस रखा था–हँसते हुए यही कहा था कि 'अरे, ऊपर की कमाई करने वाली तो नारी निकेतन में भी कर ही सकती है।''[59]

सरकारी कर्मचारी द्वारा नारी निकेतन की स्थिति बताई गई है वह काफी हद तक सही भी है क्योंकि नारी निकेतन को प्रायः फ्री में समाज सेवा का स्थान माना जाता है। यहाँ वेश्याओं की स्थिति सुधरने के बजाय और दयनीय हो जाती हैं। स्वयं वेश्याएँ भी

ऐसे नारी निकेतन को मजाक के तौर पर लेती है। कई नारी निकेतन की सुपरिटेंडेंट द्वारा नेताओं, अफसरों और बड़े–बड़े अमीरजादों को लड़कियाँ सप्लाई की जाती हैं। उपन्यास की वेश्या पात्र रेशमा नारी निकेतन में होने वाले इन कार्यों से अच्छे से परिचित है। नारी निकेतन की अपेक्षा नोखेलाल का घर देह व्यवसाय चलाने के लिए उसे अधिक सुरक्षित लगता है। अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा एवं इस व्यवसाय से दूर रखने के लिए वह उन्हें अल्मोड़ा में अपने भाई के पास रखती है और समय–समय पर उनके लिए खर्च भेजती रहती है। लेकिन इतना होते हुए भी समाज रेशमा के पुत्र सुरेन्द्र एवं पुत्री को पूरी तरह से अपना नहीं पाता है। रेशमा के बच्चों पर बार–बार यह व्यंग्य किया जाता है कि वे एक वेश्या की संतान हैं। यहाँ तक कि सुरेन्द्र के शिक्षक भी उस पर व्यंग्य किए बिना नहीं रह सकते। सुरेन्द्र जो वास्तव में अपनी माँ के विषय में अनभिज्ञ है, अपनी माँ को लोगों द्वारा किए जाने वाले व्यंगय के विषय में बताते हुए पत्र में लिखता है कि–

''सच्ची इजा, उस समय मेरे को बहुत जबरदस्त गुस्सा आता है, जिस समय मेरे मास्टर लोग–और उनकी देखा–देखी लड़के लोग भी–मुझसे तेरे बारे में पूछने लगते हैं, 'क्यों रे सुरिया, आजकल तेरी महतारी कहाँ है? क्या धंधा कर रही है? अक्सर मास्टर लाग इस तरह की बातें भी करते हैं, खास करके हेडमास्टर शिव बल्लभ, जिन्होंने मुझे बचपन से देख रखा है। कहते हैं, तेरा नाम लेकर के कि 'बड़ा रंगीन डांस करती थी रेशमा! साक्षात् जिंदा डांस दिखाती थी!''[60]

आखिर समाज क्यों वेश्या की संतानों को अपनाना चाहता? प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'सेवासदन' में सुमन नामक वेश्या के माध्यम से वेश्या की संतानों को शिक्षित एवं संस्कारित बनाने का प्रयास करते हैं। इसके लिए वह एक सेवासदन नामक आश्रम की स्थापना भी करते हैं। किन्तु यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि क्या वेश्याओं की बच्चियों को संस्कारित करने और शिक्षित करने मात्र से उनका उद्धार हो जाएगा? क्या सभ्य समाज इन बेटियों को अपनाएगा? प्रेमचंद इस विषय में शायद स्वयं सशंकित थे

इस कारण जब सुभद्रा इनके विवाह की बात सुमन से करती है तब वह वे सुमन के माध्यम से यह शंका व्यक्त करते हैं कि–

''यह तो टेढ़ी खीर है। हमारा कर्त्तव्य है कि, इन कन्याओं को चतुर गृहिणी बनने योग्य बना दें। उनका आदर समाज करेगा या नहीं, मैं नहीं कह सकती।''[61]

जब तक समाज में वेश्याओं के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं आएगा तब तक रेशमा के बच्चों या सेवासदन में रहने वाली बच्चियों का भविष्य अधर में ही रहेगा। रेशमा का पुत्र सुरेंदर वेश्या पुत्र होने के साथ–साथ हरिजन भी है, इस कारण लोगों द्वारा उसका और भी तिरस्कार किया जाता है। प्रश्न यह है कि आखिर हर जगह वेश्याओं को ही दोषी क्यों ठहराया जाता है जबकि वेश्यागामी पुरूषों पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाता? रेशमा को वेश्या होने का सच अपने बच्चों से भी छुपाना पड़ता है क्योंकि उसे डर है कि सच्चाई जानने के पश्चात् कहीं उसके बच्चों भी उससे रिश्ता न तोड़ ले। इसी कारण वह उनसे मिलने भी नहीं जाती है क्योंकि वह जानती है कि कुतुब रोड और नोखेलाल की झोपड़ी से बाहर के समाज में वह सिर्फ एक वेश्या की तरह ही जी सकती है, माँ की तरह नहीं। अपने जीवन के आखिरी क्षणों में वह, जब अपने पुत्र को सारी सच्चाई बता देती है उसके बाद भी वह उसके सामने जाने से कतराती है। एक माँ की इससे ज्यादा विडम्बना और क्या हो सकती है कि जीवन के आखिरी क्षणों में वह अपने बच्चों से न मिल पाए। और वह भी मात्र इसलिए कि वह एक वेश्या माँ है जो समाज में साथ–साथ नहीं रह सकते।

## (ड.) दाम्पत्य जीवन एवं वेश्यावृत्ति–

बेरोजगारी, विलासी प्रवृत्ति एवं नौकरी की दशाएँ आदि कारक औरतों को वेश्या बनने के लिए मजबूर करते हैं। जैनेन्द्र का दशार्क उपन्यास भी इन्हीं कारकों को आधार

बनाकर लिखा गया है। यह जैनेन्द्र को अंतिम व अपने में एक अनोखा उपन्यास है। जिसके अन्तर्गत लेखक ने प्रेम और घृणा, राजनीति दर्शन, भाग्य तथा पुनर्जन्म आदि का भी समावेश किया है। 'दशार्क' की विशेषता बताते हुए 'डॉ0 बच्चन सिंह' ने कहा है कि–

'' 'दशार्क' जैनेन्द्र है और जैनेन्द्र 'दशार्क'। जैनेन्द्र ने अपने प्रत्येक उपन्यास में बद्धमूल धारणाओं को तोड़ा है। यह धारणा है स्त्री–पुरूष या पत्नी और पति के संबंध में पारम्परिक रीति–नीति और जड़ विचार। वे बार–बार घर का निषेध करते हुए भी घर की वापसी का समर्थन करते हैं। घर का निषेध और घर की वापसी के बीच लंबा अंतराल पड़ता है। इस अंतराल को पाटने के लिए वे जिन विधियों का प्रयोग करते हैं वे विश्वसनीय हैं या नहीं, यथार्थ हैं या नहीं, यह दूसरा प्रश्न है पाठकों के विचारों को झकझोरने की उनमें अद्‌भुत शक्ति है।''[62]

'दशार्क' के अन्तर्गत लेखक ने वेश्याओं के परम्परागत स्वरूप एवं धारणाओं को तोड़ते हुए वेश्या जीवन के नए स्वरूप को पाठकों के समक्ष पेश किया है। उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने रंजना के माध्यम से वेश्या को अलग ढंग से परिभाषित किया है। उनके अनुसार वेश्या पुरूषत्व के शमन का साधन नहीं बल्कि अंतरात्मा की तृप्ति का साधन है। वे आगे कहते है कि वेश्या केवल स्त्री ही बल्कि पुरूष भी हो सकता है जो दूसरों को ठगने एवं उनको धोखा देने का प्रयास करता है। जैसा कि–

''मैं कहना चाहती हूँ, आपके जरिये से सारी दुनिया को, कि वेश्या कहकर जिस स्त्री जाति के एक बड़े वर्ग को समाज ने उच्छिष्ट बना डाला है, तो ऐसे उसने उसकी अमित संभावनाओं से सिर्फ अपने को वंचित ही किया है। कहना चाहती हूँ कि दुनिया सोचे कि मैं, तुम और हम सब इस उस तरह से एक दूसरे से पैसा झटकते हैं तो क्या उसी कारण हम ठग और वेश्या नहीं हैं? पूछती हूँ कि वेश्या स्त्री ही क्यों हो सकती है? मर्द क्यों नहीं हो सकता है?''[63]

'जैनेन्द्र' का उपन्यास 'दशार्क' की पात्र 'रंजना' भी घर की आर्थिक स्थिति खराब हो जाने के कारण वेश्यावृत्ति को अपना पेशा बनाती है। यद्यपि उसका पति लेक्चरर है उसकी अच्छी तनख्वाह भी है किन्तु बड़े घर की पत्नी के सारे शौक पूरे करने के कारण उसे जुए की लत लग जाती है और वह अपना सब कुछ खो कर हीनता ग्रंथि से ग्रस्त हो जाता है। जैसा कि–

''देखता हूँ चेहरे पर, कि वह छिपाना चाहती और दिखाना चाहती हैं कि मेरे खातिर इस घर में वह शहीद बन रही है।.....पति की दीन से दीन, हीन से हीन परिस्थिति में स्त्री ने सहारा दिया है और कहीं से दैन्य भाव पति में नहीं आने दिया है। यहाँ उल्टे यह है कि अपनी दृष्टि से, मुद्रा से, अपने व्यंग्य से मुझे बराबर बेधा और कौंचा जाता है कि मैं अपात्र हूँ। अयोग्य हूँ.....।''[64]

यद्यपि सरस्वती अपने पति का साथ नहीं छोड़ना चाहती बल्कि आर्थिक विपन्नता में भी उसका साथ देना चाहती है। वह अपने पुत्र आलोक की शिक्षा–दीक्षा एवं पति को सहायता देने के लिए स्वयं भी कोई पेशा करना चाहती है। वह अपने पति से कहती है कि–

''नहीं, मैं तुम्हें अकेला नहीं छोडूंगी। जब धन था, जमीन थी, जायदाद थी तब की बात और थी। तब सब तुम्हारे थे। अब अकेले हो और तुम्हारी बस मैं रह गई हूं। दोस्त सब उड़ गए हैं। तुम जानते हो, मैं जानती हूँ, कि कॉलेज में बातें हो निकली हैं। कमेटी के कुछ मेंबरों में असंतोष है। नौकरी पर आंच आ सकती है। ऐसे में मैं हरगिज, हरगिज तुम्हें नहीं छोड़ सकती.....बाप तो मेरे हैं बेवकूफ।''[65]

आगे चलकर आर्थिक स्थिति और खराब हो जाने के कारण अंततः वह वेश्या व्यवसाय अपनाने का निश्चय करती है और यही से सरस्वती की जगह रंजना का उदय

होता है। यदि वह चाहती तो और भी कोई पेशा अपना सकती थी किन्तु वह सब कुछ सोच समझ कर इस पेशे को अपनाती है। लेखक ने सरस्वती के वेश्या बनने के कारणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि–

''बेटे आलोक की शिक्षा–दीक्षा थी। पति का स्वार्थ और स्वास्थ्य था। लगाा सब उस पर है। वह छोड़ नहीं सकती, भाग नहीं सकती और सिर्फ सवाल के तौर पर उस सबको अपने चारों ओर लपेट कर, खुद घिरी रह कर, जी भी नहीं सकती।
उसने सोचा, और सोचा, और सोचा।
आखिर पत्नी का अंत हुआ और एक नव रमणी का आर्विभाव हुआ। उसी की ये कतिपय झांकियां हैं।''[66]

'रंजना' में अपने पेशे को लेकर व्यावसायिक ईमानदारी है। वह अपने हर ग्राहक को सन्तुष्ट करना अपना धर्म समझती है। यहाँ तक कि उसके पास हर ग्राहक की फाइल होती है और वह उसका अच्छे से अध्ययन करके उसी के अनुरूप स्वयं को परिवर्तित कर लेती है। इसलिए वह किसी भी अतिथि के आने से पहले उसकी पूरी जानकारी प्राप्त कर लेती है। फाइल का अध्ययन करके वह अपने ग्राहकों के व्यवहार एवं उनकी मानसिकता का अंदाजा लगा लेती है। जैसा कि–

''हर अतिथि की गहरी आवश्यकताओं का उसे अनुमान हो। उसकी रूचियाँ उसके संस्कार आशाएँ–आकांक्षाएँ। उसका प्रण है कि वह सभी के प्रति सहायक हो। उसने पाया है कि सब अधूरे हैं और सब में चाह है। वह सबके काम आ सकती है।''[67]

उसके यहाँ हर तरह के ग्राहक आते हैं, उनमें कोई स्मगलर है, कोई अफसर, कोई संवाददाता, कोई सेठ कोई सचिव, कोई राजनेता तो कोई अफसर। रंजना यह जानती है कि देह व्यवसाय में कोई स्वाद नहीं हैं किन्तु आर्थिक कारणों से उसने यह पेशा अपना

रखा है लेकिन उसे इस बात का कोई दुख नहीं है। सरकारी अधिकारी द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या उसे इस व्यवसाय को करने में शर्म नहीं आती है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वह कहती है कि–

''सुनती हूँ शर्म की जरूरत है। पर मुझे तो नहीं हुई। शर्म किसकी? शरीर की? पुरूष की? समाज की? राज की? नीति की?– किसकी शर्म।''
''शरीर बेचती हो और बातें बनाती हो।''
''बताइए और क्या है मेरे पास जो बेचूं। रूपया तो सबको चाहिए। कुछ देकर ही वह कमाया जाता है।''[68]

वेश्या व्यवसाय में होने के बावजूद वह अपनी कमाई का कुछ हिस्सा सामाजिक कार्य में लगाती है। वह इन पैसों से गरीब लड़कियों की शादी कराती है और उनके दहेज का प्रबंध करती है। इसके अतिरिक्त वह जरूरतमंदों की सहायता भी करती है। संवाददाता के यह पूछे जाने पर कि वह इन पैसों का क्या करती हैं, का उत्तर देती हुई रंजना कहती है कि–

''पहली बात तो यह कि सरकार के आयकर की चोरी करती हूँ। दूसरी यह कि मालूम हो गया कि मैं उसे खा नहीं सकती। ओढ़–बिछा नहीं सकती यानी कि ये सब जरूरतें जितनी है, उतनी ही रह जाती हैं। और आप यह भी जानते होंगे कि भूखे–नंगे इस भारत में ही हैं। तो क्या कोई और कितना भी पैसा उन करोड़ों भूखों–नंगों की जरूरत से ज्यादा हो सकता है? पर इसका ही मुझे पछतावा है। अतिरिक्त पैसे वहीं जाए, अवश्य यह मेरा प्रयास रहता है, पर मैं मानती हूँ कि इस अर्थ में मैं घोर पाप करती हूँ कि उन्हें दयनीय बनाती हूँ और स्वयं दानी बनती हूँ।''[69]

यहाँ तक कि वह कभी–कभी अपने ग्राहकों को उनके कर्त्तव्य का बोध भी कराती है। उसके यहाँ आने वाला अफसर जो कभी लेखक था, अपने पद से इस्तीफा देना

चाहता है। रंजना उसे ऐसा करने से मना करती है और अफसर उसे पूछता है कि तुमसे क्या मतलब, तब वह उसे समझाते हुए कहती है–

''मतलब है। मैं स्त्री हूँ। आपकी पत्नी स्त्री है, यह मतलब है। आप अपने नहीं हैं, घर गिरस्ती के हैं, बाल–बच्चों के हैं। किसी सनक में आप उनके भविष्य को मोहताज नहीं बना देंगे। मैं यहाँ क्यों हूँ, इसलिए कि पैसा जरूरी है। उस जरूरत के बदले भगवान न करें, किसी स्त्री को बाजार में आना पड़े। तन बेचने के काम में, डिप्टी साहब, बताती हूँ कि कोई स्वाद नहीं है।''[70]

यद्यपि रंजना एक ओर इस पेशे को समाज के लिए सही नहीं मानती है वहीं दूसरी ओर वह यह भी कहती है कि अगर समाज को साफ रखना है तो वेश्याओं का होना भी आवश्यक है। जैसा कि–

''घर की स्वच्छता के लिए मोरी चाहिए। समाज को आप स्वच्छ चाहते हैं तो उन स्वयं–सेविकाओं को रहने दीजिए जो मोरियाँ बन सकती हैं। संभालिए उनको जो अभागिन हैं, पर बड़भागिन हैं।''[71]

रंजना शरीर से ऊपर उठकर मनुष्य के आत्मिक धरातल को छूना चाहती है। उसके अनुसार स्त्री पत्नी बनकर भी अपने पति को पूर्णरूप से तृप्त नहीं कर पाती है। परन्तु वेश्या सभी की तृप्ति का साधन होती है। पुरूष वेश्या के पास इसलिए आता है कि उसे जो कुछ अपनी पत्नी से प्राप्त नहीं हो रहा, वह वेश्या से मिल सके। रंजना देह व्यवसाय को लोक सेवा के रूप में देखती है। उसके अनुसार शारीरिक तृप्ति से ज्यादा महत्वपूर्ण मानसिक तृप्ति है। जैसा कि–

''मेरा विवाह हुआ और सब ठीक था, पर बच्चा हुआ और उसके बाद मैं पति के लिए काफी नहीं रह गई.....यहां कोई तीसरा नहीं है और मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या पत्नी

आपके लिए काफी है? नीति–नियम की तरफ से नहीं, मन और तबीयत से काफी है? तो मन की इस गहरी जरूरत की पूर्ति के लिए हम जैसी आगे आती हैं, तो क्या लोकसेवा का भाव भी इसमें नहीं हो सकता?''[72]

रंजना के अनुसार वेश्या को पुरूष के प्रति पूर्णतया समर्पित होना चाहिए। उसके अनुसार तन की जगह मन देना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। भगिनी समाज में जब उस पर तरह–तरह के प्रश्न उठाए जाते हैं कि आखिर वह ऐसा कौन सा पेशा करती है जिसके कारण उसके पास पैसों की भरमार है। सभा में उठाए गए इस प्रश्न का उत्तर देती हुई वह कहती है कि–

''आप सोचती होंगी कि मैं क्या करती हूँ जो पैसा बहकर मेरे पास चला आता है। आप सब के पास तो उसकी चिन्ता इसलिए नहीं है कि दुकान–दफ्तर जाता और पति पैसा कमा ले आता है। पति को छोड़ बैठी यह मैं क्या करती हूँ.....डाक्टरी नहीं करती, वकालत नहीं करती, नौकरी नहीं करती। बस फिर क्या! स्त्री के पास यही सोचने को रह जाता है कि वह तन बेचती होगी। बात झूठ नहीं है। इस तन की मरद को प्यास है और बहुत सी औरतें वैसे जीती हैं। लकिन मैंने पाया कि तन से भी ज्यादा कुछ प्यास है जो मन की है।''[73]

जैनेन्द्र अपने अन्य उपन्यासों के समान दशार्क में भी नए प्रयोग करते हैं जो वास्तविकता से काफी दूर है। लेखक ने रंजना नामक वेश्या पात्र को अलग रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है जो शिक्षित और तर्क प्रवीण है। अपने माध्यम से दुनिया की गणिका वृत्ति को उजागर करती है। वह न तो रेड लाइट एरिया में रहकर अपना तन बेचती है और न ही कॉलगर्ल के रूप में घर–घर जाकर। जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों की नायिकाओं के समान रंजना वेश्या होते हुए भी शरीर एवं मन से बिल्कुल पवित्र है। वह

घर में ही रहकर अपने सभी ग्राहकों को संतुष्ट करने का प्रयास करती है और अंततः अनेक अनुभवों से गुजरने के पश्चात् वह घर लौटने का निश्चय करती है।

किन्तु जैनेन्द्र द्वारा सृजित रंजना नामक वेश्या पात्र यथार्थ के परे है। क्योंकि जैनेन्द्र स्वयं वेश्याओं के अस्तित्व को समाज के लिए आवश्यक मानते हैं। इस संबंध में मुनि का मत जैनेन्द्र के विचारों को अभिव्यक्त करता हुआ प्रतीत होता है। जैसा कि–

''मैं जानता हूँ कि घर की, परिवार की, विवाह की पवित्रता यदि सुरक्षित है तो इसलिए कि वेश्या अस्तित्व में है। यदि मुझे अभीष्ट है कि गार्हस्थ–धर्म अगर सुरक्षित रहे तो उस वेश्या के प्रश्न से मैं उदासीन नहीं रह सकता।''[74]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र ने वेश्या जीवन को लेकर एक नया प्रयोग किया है जो यथार्थ से परे होते हुए भी एक नया आइडिया है। रंजना ने जिस तरह वेश्यावृत्ति को गौरव की दृष्टि से देखा है, यथार्थ में वह कोसो दूर है। अधिकांश वेश्याएँ इस पेशे को मजबूरीवश अपनाती हैं। यदि उनके पास कमाई का अन्य साधन हो तो वे इस पेशे को कभी न अपनाए। स्वयं रंजना इस पेशे को बेस्वाद मानती है। जैनेन्द्र के द्वारा चित्रित वेश्या जीवन सामाजिक यथार्थ से दूर होकर उनके बौद्धिक एवं काल्पनिक मन की उपज अधिक प्रतीत होती है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यासों समय–समय पर वेश्याओं को आधार पर उपन्यास रचना की गई जिसके फलस्वरूप वेश्या जीवन के विविध स्वरूप उभरकर हमारे सामने आते हैं। उपन्यासकारों ने वेश्या के करूण संदर्भों को समूची संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। अंत में वेश्या जीवन के दर्द एवं यथार्थ की अभिव्यक्ति 'रजनी तिलक' की इन पंक्तियों के माध्यम से कर सकते हैं–

''चले आइए
धीरे से दरवाजा उढ़काकर
मैं दुख बांटती हूं
जी हां
मैं दुख बांटती हूं
तुम्हारी मुस्कुराहट के लिए
अपनी खुशी बेचती हूं
तन्हाई
मेरी क्या तन्हाई?
मैं तो सिर्फ तुम्हारे लिए
तुम्हारी तन्हाई के लिए जीती हूं
चले आइए बेझिझक
देहरी लांघकर
इस जालिम पेट के लिए
अपना रूप, अपना स्वाभिमान
अपनी अस्मत बेचती हूं''[75]

## संदर्भ ग्रंथ सूची–


1. डॉ0 शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, छठा संस्करण, 1973, पृ0 578।

2-*"It is surprising to note that M.P.s and M.L.A.'s who claim themselves to be social workers and are representatives of the people, demand extra privileges, behave as they please and go scot-free after an enquiry, because all cannot be proved and that which can be proved otherwise also.....present-day over privileged M.P.'s and M.L.A.'s making laws for the under-privileged."*
दृष्टव्य है, प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नाटकीय तत्व, ओम प्रकाश शर्मा प्रकाश,विक्रम प्रकाशन, दिल्ली, 1987, पृ0 सं0 99।

3. अनिल यादव, नगरवधुएँ अखबार नहीं पढ़तीं' अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, तृतीय संस्करण, 2015, पेज 21।

4. क्षमा गोस्वामी, नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं0 1981, पृ0 214।

5. मधु काँकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0 13।

6. वही, पृ0 13।

7. महेश दर्पण, लेख– दिए गए विषय पर सोचने को मजबूर करता है सलाम आखिरी, हंस पत्रिका, जून 2003, पृ0 90।

8. मधु काँकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0 20।

9. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 149।

10. वही, पृ0 14।

11. वही, आत्मकथ्य।

12. वही, आत्मकथ्य।

13. वही, पृ0 14।

14. वही, पृ0 17।

15. वही, पृ0 17।

16. वही, पृ0 18।

17. वही, पृ0 19।

18. वही, पृ0 22।

19. *For example if a blind or crippled person is unable to fulfil his sexual need, then the need of a sex worker is a must. The aged, invalid, ugly, imbecile, or sexual minorities may find it hard to gain a sexual partner. Again, sex work needs expertise and sex workers usually are experts in sex.*
Prabha Kotiswaran, Sexwork- Issue in contemporary Indian Feminism (edited), women unlimited publication, 2011, page 208.

20. वही, पृ0 23।

21. वही, पृ0 41।

22. वही, पृ0 37।

23. वही, पृ0 58।

24. वही, पृ0 59।

25. लेखक–बटरोही, लेख–'हिन्दी उपन्यास में देह व्यापारः स्त्री की नजर से', समयांतर, संपादक, पंकज बिष्ट, अंक जून 2012, दिल्ली।

26. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 149।

27. मधु कॉंकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0 69।

28. वही, पृ0 72।

29. वही, पृ0 84।

30. वही, पृ0 166।

31. महेश दर्पण, लेख– दिए गए विषय पर सोचने को मजबूर करता है सलाम आखिरी, हंस पत्रिका, जून 2003, पृ0 90।

32. दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ0 सं0 352।

33. इलियट, एम0 ए0 तथा मेरिल, एफ0 ई0, सोशल डिसऑरगेनाइजेशन, हार्पर एंड ब्रदर्स प्रकाशन, न्यूयॉर्क, 1961, पृ0 159।

34. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, पृ0 सं0 2011, पृ0सं0 9।

35. रामविनोद सिंह, आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास, अनुपम प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1980, पृ0 सं0 40।

36. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, पृ0 सं0 2011, पृ0सं0 10।

37. वही, पृ0 81।

38. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 42।

39. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, पृ0 सं0 2011, पृ0सं0 25।

40. वही, पृ0 95।

41. वही, पृ0 124।

42. डॉ0 सोती शिवेन्द्र चन्द्र, भारत में सामाजिक समस्याएँ, कनिष्का प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2002, पृ0 सं0 285।

43. वही, पृ0 285।

44. वही, पृ0 285।

45. लुइज ब्राउन, अनुवाद कल्पना शर्मा, यौन दासियाँ एशिया का सेक्स बाज़ार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2008, पृ0 सं0 164।

46. डॉ0 भगवतीशरण मिश्र, हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार,राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 371।

47. लक्ष्मीनारायण लाल, बड़ी चम्पा छोटी चम्पा, पीताम्बर बुक डिपो, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1973, पृ0 3।

48. डॉ0 भगवतीशरण मिश्र, हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 370।

49. लक्ष्मीनारायण लाल, बड़ी चम्पा छोटी चम्पा, पीताम्बर बुक डिपो, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1973, पृ0 91।

50. डॉ0 भगवतीशरण मिश्र, हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 370।

51. लक्ष्मीनारायण लाल, बड़ी चम्पा छोटी चम्पा, पीताम्बर बुक डिपो, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1973, पृ0 80।

52. According to K. Sudha-

*'The term commonlyused for these prostitutes are 'Jogini' or 'Devdasi'. In general, they entertain customers according to the wishes of the priests or family head. In the event of men curtailing the relation, the priest or the head of the family attaches them to other men. Thus, these women are constantly under the threat of exploitation and lead a life of sexual slavery. It is a custom practiced in the Southern part of India by the Scheduled Caste among the Hindus that worship Goddess Yellamma. Dedication as a devdasi or the devdasi cult provides a license for prostitution with religious sanction.'*

K.Sudha, Prostitution Laws, An Enigma And Some Dilemmas, Promilla &Co. Publishers, New Delhi, first edition 2016, page 94.

53. उत्तम कांबले, देवदासी, अनुवादक–किशार कांबले, संवाद प्रकाशन, मेरठ, प्रथम संस्करण 2008, पृ0 33।

54. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृ0 90।

55. वही, पृ0 91।

56. वही, पृ0 96।

57. वही, पृ0147।

58. वही, पृ0 136।

59. शैलेष मटियानी, दो बूँद जल, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2010, पृ0 111।

60. वही, पृ0 115।

61. प्रेमचंद, सेवासदन, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1981, पृ0 245।

62. डॉ0 बच्चन सिंह, कथाकार जैनेन्द्र, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 57।

63. जैनेन्द्र, दशार्क, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0 170।

64. वही, पृ0 2।

65. वही, पृ0 46।

66. वही, पृ0 6।

67. वही, पृ0 6।

68. वही, पृ0 19।

69. वही, पृ0 79।

70. वही, पृ0 24।

71. वही, पृ0 24।

72. वही, पृ0 21–22।

73. वही, पृ0 180।

74. वही, पृ0 59।

75. रजनी तिलक, कविता संग्रह– हवा सी बेचैन युवतियाँ, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ0 77

# विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यास और वेश्या जीवन

हिन्दी साहित्य में वेश्या जीवन को आधार बनाकर अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए हैं। इन उपन्यासों में 'चित्रलेखा', 'दिव्या', 'सुहाग के नुपूर' और 'वैशाली की नगरवधू' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। वर्तमान युग में जहाँ वेश्याओं की दशा अत्यन्त शोचनीय हैं वहीं ऐतिहासिक युग में गणिकाओं एवं नगरवधुओं आदि का समाज में विशेष स्थान था। 'मोनिका सक्सेना' ने अपनी पुस्तक 'Ganikas in Early India' में गणिकाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर विचार करते हुए कहा है कि प्राचीन काल में उनकी दशा अच्छी थी। यहाँ तक कि उनकी बौद्धिक एवं कलात्मक उपलब्धि के कारण समाज में उनको विशेष ख्याति प्राप्त थी और उनका निवास राज्य की राजधानियों एवं प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों जैसे उज्जैन, वैशाली, वाराणसी एवं पाटलिपुत्र के आस–पास होता था।[1] यद्यपि उन्हें समाज में विशेष स्थान प्राप्त था किन्तु इतना होते हुए भी उन्हें कुलवधुओं के समान सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी।

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत ऐतिहासिक युग में वेश्यावृत्ति एवं वेश्याओं की स्थिति का अध्ययन किया गया है। ऐतिहासिक युगीन वेश्या जीवन का अध्ययन करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ऐतिहासिक उपन्यास क्या होते हैं? अलग–अलग विद्वानों ने इसे अपने–अपने ढंग से इसे परिभाषित किया है। जिनमें से प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषा इस प्रकार है–

## (क) इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ–

'इतिहास' शब्द तीन शब्दों इति+ह+आस के संयोग से बना है जिसका अर्थ है ''यह इस प्रकार हुआ''। अतः 'इतिहास' शब्द का सामान्य अर्थ 'विगत घटनाओं का वृत्तान्त'

है।[2] अंग्रेजी में इतिहास के लिए 'History' शब्द प्रयुक्त होता है जो ग्रीक शब्द 'इस्तोरिया' से लिया गया है जिसका अर्थ है 'गवेषणा' या 'गवेषणा' से प्राप्त जानकारी।''[3] महाभारत के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से युक्त पूर्ववृत्त और कथा ही इतिहास है।[4] विष्णुपुराण में इतिहास को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'जिसमें आर्ष चरित्रों, कथाओं आदि की व्याख्या हो, जो देव और ऋषियों के चरित्र पर आधारित तथा भविष्य एवं भूत के धर्म से युक्त हो, वही इतिहास है।'[5]

प्रारंभ में जहाँ इतिहास का संबंध विशिष्ट एवं प्रभावशाली व्यक्ति से जोड़कर देखा जाता था। किन्तु आगे चलकर विद्वानों के इतिहास संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और अब व्यक्ति से आगे बढ़कर इसमें देश और समाज में होने वाले विविध परिवर्तनों, विचारों एवं सामान्य जन की दशा आदि को भी शामिल किया गया। वास्तव में आज का इतिहास सम्पूर्ण मानव जीवन की कहानी है।

## (ख) ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा–

विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से ऐतिहासिक उपन्यास को परिभाषित करने का प्रयास किया है जिनमें से कुछ परिभाषा इस प्रकार है–

'पॉल लेइसिस्टर' ने ऐतिहासिक उपन्यास का परिभाषित करते हुए कहा है कि–

'ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसकी कथा ऐसी वास्तविक घटनाओं अथवा चरित्रों द्वारा निर्मित होती है जिसकी कथा ऐसी वास्तविक घटनाओं अथवा चरित्रों द्वारा निर्मित होती है जिन पर ऐतिहासिकता की मुहर लग चुकी है।'[6]

'जॉन बुचन' के अनुसार–

'ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसमें लेखक के युग से भिन्न किसी युग के जीवन के पुनर्निर्माण तथा वातावरण की पुनर्स्थापना का प्रयत्न हो।'[7]

'जोनाथन नील्ड' का यह मानना है कि–

'ऐसे उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास के अन्तर्गत आते हैं जिसमें ऐतिहासिक तिथियों, घटनाओं अथवा व्यक्तियों का समावेश हो और जिन्हें हम पहचान सकें।'[8]

'अर्नेस्ट ई0 लेजी' के अनुसार–

'ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसकी घटनाएँ पूर्ववर्ती काल में प्रस्तुत की गई हों।'[9]

इस प्रकार अलग–अलग विद्वनों ने अपने–अपने ढंग से ऐतिहासिक उपन्यास को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

## (ग) ऐतिहासिक उपन्यासों में अभिव्यक्त वेश्या जीवन का यथार्थ–

हिन्दी के अनेक ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने वेश्या जीवन एवं उनकी व्यथा को आधार बनाकर उपन्यास लिखे हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में वेश्यावृत्ति का अलग स्वरूप देखने को मिलता है। उपन्यासकारों ने इतिहास प्रसिद्ध विभिन्न गणिकाओं को आधार बनाकर उपन्यास की रचना की है। इन उपन्यासों में वेश्या जीवन के साथ–साथ तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन की झलक भी देखने को मिलती है। साथ ही उस युग की वेश्याओं द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाए जाने के कारण भी भिन्न थे। ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस युग में वेश्यावृत्ति को राज्य का संरक्षण प्राप्त था। यहाँ तक कि वेश्याओं द्वारा अपनी आय का कुछ भाग कर के रूप में राज्य को अदा भी करना पड़ता था। राज्य का संरक्षण प्राप्त होने के कारण यह व्यवसाय गैर कानूनी नहीं माना जाता था। यही कारण है कि इस काल की वेश्याएँ वेश्यावृत्ति के अतिरिक्त अन्य कलाओं में भी पारंगत होती थी। इसके अतिरिक्त समाज में उनका महत्वपूर्ण स्थान था। जैसा कि–

''पूर्वकाल में नगरवधू अथवा गणिका सर्वगुण सम्पन्न होती थी। राजनीति, कला, विज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में उसका दखल रहता था। वरिष्ठ व्यक्ति तक उसका सान्निध्य पाने हेतु लालायित रहते थे। इन स्त्रियों को राज्याश्रय प्राप्त रहता और पूर्ण सुविधाएँ मिलती थीं।''[10]

इस तरह प्राचीन काल में नगरवधुओं की अच्छी स्थिति का प्रमाण मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वेश्या जीवन की समस्याओं का चित्रण मुख्य रूप से दो उपन्यासों 'अमृतलाल नागर' के 'सुहाग के नूपुर' एवं 'चतुरसेन शास्त्री' के 'वैशाली के नगरवधू' में मिलता है। प्रस्तुत उपन्यासों में वेश्या जीवन के यथार्थ को अत्यन्त सटीकता के साथ उजागर किया गया है। यद्यपि प्राचीन काल में वेश्याओं की स्थिति वर्तमान युग की वेश्याओं के मुकाबले बहुत अच्छी थी। उन्हें सामाजिक सम्पन्नता का सूचक माना जाता था। 'सुकुमारी भट्टाचार' जी ने अपनी पुस्तक 'Prostitution in ancient india' में प्राचीन काल में गणिकाओं की अच्छी स्थिति का उल्लेख किया है। समाज में उनकी अच्छी स्थिति थी जिसके फलस्वरूप प्रमुखतः राजा या धनी व्यापारी की ही उन तक पहुँच थी।[11]

यद्यपि प्राचीन काल में वेश्याओं की स्थिति अच्छी थी किन्तु वे आखिरकार थी तो वेश्या ही। समाज में उनका रहन–सहन अत्यन्त उच्च स्तर का था किन्तु उन्हें कुलवधू जैसा दर्जा प्राप्त नहीं था। वेश्या नारी होते हुए भी नारी की सम्पूर्ण गरिमा से वंचित है, वह समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करना चाहती है, किन्तु स्वार्थी पुरूष उसे मात्र विलास की वस्तु समझता है। वेश्या जीवन को आधार बनाकर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में 'चतुरसेन शास्त्री' का 'वैशाली की नगरवधू' 1948 ई0 में लिखा गया है। इस में लेखक ने यह बताया है कि प्राचीन काल में वेश्यावृत्ति समाज द्वारा रक्षित नहीं थी बल्कि उसे राज्य का संरक्षण भी प्राप्त था। बौद्ध काल में गणिकाओं की अच्छी स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही वह कला और संस्कृति की संरक्षक भी थी। इस काल में नगरों की शोभा में वृद्धि गणिकाओं के कारण होती थी। वैशाली नगर का भ्रमण करके लौटा हुआ एक श्रेष्ठि ने सम्राट बिम्बिसार को वहाँ के वैभव की सूचना इस प्रकार दी थी–

''महाराज वैशाली नगरी समृद्ध और ऐश्वर्य सम्पन्न है.....वहाँ अम्बापाली नाम की गणिका निवास करती है, जो परम सुन्दरी, रमणीया, नयनाभिराम सुन्दरावर्णा, गायन–वादन–नृत्य–विशारदा तथा अभिलषित बहुदर्शनीय है।''[12]

प्रस्तुत उपन्यास का संबंध भारतीय इतिहास के उस काल से है जब ब्राह्मण धर्म अपने कर्मकाण्ड एवं अंधविश्वास के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था और ब्राह्मण धर्म के विरूद्ध बौद्ध एवं जैन धर्म का उदय एवं प्रचार प्रसार बढ़ रहा था। 'वैशाली की नगरवधू' में लिच्छिवियों के वज्जी संघ की राजधानी वैशाली थी जो धन–धान्य से परिपूर्ण थी। नगर के युवक एवं सामंतगण विलासिता में डूबे हुए थे। वज्जी संघ का नियम था कि नगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कुमारी को बाध्य होकर नगरवधू का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इस कारण उसे वेश्या न कहकर जनपदकल्याणी के नाम से संबोधित किया जाता था।[13] इसी कानून के कारण अम्बपाली को बाध्य होकर नगरवधू बनना पड़ता है।[14]

वज्जि संघ के सामंतगणों का यह मानना है कि वह किसी एक पुरूष की पत्नी नहीं हो सकती है। उस पर सबका समान अधिकार है। 'सरला मुद्गल' ने अपनी पुस्तक 'आज की आम्रपाली' में कहा है कि–

''आम्रपाली का नगरवधू के लिए चयन इतिहासप्रसिद्ध है। नारी की विवशताओं की अवहेलना हम नहीं कर सकते हैं। उसका विषपान समाज को सुरक्षित रखे है। गणतंत्र राज्य में सर्वश्रेष्ठ सुंदरी का चयन किस प्रकार नगरवधू के लिए किया गया यह सर्वविदित है। सुंदर स्त्री को लेकर मगध कुमारों में परस्पर विवाद न रहे इसलिए उस सुंदरी को नगरवधू घोषित कर दिया जाए, यह मान्यता स्वीकार कर ली गयी।''[15]

बौद्ध जातकों– चीरवस्तु, विनयवस्तु आदि में आम्रपाली नामक गणिका का उल्लेख मिलता है। इन उल्लेखों के अनुसार अम्बपाली वैशाली के आम्रकुंज में सद्योजात शिशु के रूप में पाई गई थी। एक माली द्वारा पोषित होकर जब वह यथासमय यौवनावस्था में प्रवेश किया तब वैशाली के राजकुमारों के बीच उसके पाणिग्रहण को लेकर संघर्ष छिड़ गया।[16] अंत में सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि वह किसी व्यक्ति विशेष की

भोग्या या भार्या न होकर सर्वजन भोग्या बनाई जाय। इस प्रकार वैशाली को सर्वजन भोग्या बनाकर उसे 'स्त्रीरत्न' की उपाधि दी गई और उसे गणभोग्या घोषित किया गया। विनयवस्तु में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि अम्बपाली को विवश होकर निर्णय को स्वीकार करना पड़ा था। उसने गणनायक के समक्ष पाँच शर्तें रखी थी जिसे स्वीकार कर लिया गया था।[17] जातकों के अनुसार अम्बपाली का आतिथ्य महात्मा बुद्ध ने स्वीकार किया था और अपने संघ में शरण भी दी थी। किन्तु अपने संघ में शरण देने के बावजूद आम्रपाली का स्थान संघ के पुरूष भिक्षुओं से निम्नतर ही था।

उपन्यास की नायिका अम्बपाली वर्षकार और मातंगी की अवैध संतान है जो वज्जी संघ के शासन में पहरेदार सामंत महानामन् को एक आम्रवृक्ष के नीचे सफेद कपड़ों में लिपटी हुई मिलती है। इसलिए इस कन्या का नाम आम्रपाली रखा गया। वृद्ध पिता महानामन् अपनी पुत्री के अपूर्व सौन्दर्य को लेकर सदैव चिन्तित रहते थे। वे वज्जि संघ के उस विचित्र कानून से परिचित थे, इस कारण वह अम्बपाली के भविष्य को लेकर उद्विग्न थे। जैसाकि–

''बड़ा कारण था–बालिका का अप्रतिम सौन्दर्य। उन्हें भय था कि वज्जियों के उस विचित्र कानून के अनुसार उनकी कन्या विवाह से वंचित करके कहीं 'नगरवधू' न बना दी जाए। वज्जी गणतंत्र में यह विचित्र कानून था कि उस गणराज्य में जो कन्या सर्वाधिक सुन्दरी होती थी, वह किसी एक पुरूष की पत्नी न होकर 'नगरवधू' घोषित की जाती थी और उस पर संपूर्ण नागरिकों का समान अधिकार रहता था। उसे 'जनपद कल्याणी' की उपाधि प्राप्त होती थी। कन्या के अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर वृद्ध महानामन् वास्तव में इसी भय से राजधानी छोड़कर भागे थे, जिससे किसी की दृष्टि बालिका पर न पड़े। पर अब उपाय न था।''[18]

आम्रपाली अपूर्व सौन्दर्य, तेज, दर्प, यौवन, विवेक एवं साहस से युक्त है। लेखक ने अम्बपाली के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन उपन्यास के अन्तर्गत इस प्रकार किया है–

''अम्बपाली ने शुभ्रकौशेय धारण किया था। उसके जूड़ाग्रथित केशकुन्तल ताजे फूलों से गूंथे गए थे। ऊपरी वक्ष खुला हुआ था। देहयष्टि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखंड टुकड़े से यत्नपूर्वक खोदकर गढ़ी थी। उससे तेज, आभा, प्रकाश, माधुर्य, कोमलता और सौरभ का अटूट झरना झर रहा था। इतना रूप, इतना सौष्ठव, इतनी अपूर्वता कभी किसी ने एक स्थान पर देखी नहीं थी।''[19]

अम्बपाली के अपूर्व तेज एवं सौन्दर्य के कारण वैशाली के विधान के अनुसार उसे राज्य की सबसे सुन्दर स्त्री घोषित किया जाता है और नगरवधू बनने के लिए बाध्य किया जाता है जो सबके अधिकार की चीज है। इस संदर्भ में गणपति सुनंद वृद्ध से कहते हैं कि–

''वैशाली जपनद ने उसे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी निर्णीत किया है। इसलिए वज्जि गणतंत्र के कानून के अनुसार उसे यह परिषद 'वैशाली की नगरवधू' घोषित करना चाहती है और आज उसे ''वैशाली की जनपद कल्याणी' का पद देना चाहती है। गण सन्निपात की आज्ञा है कि वह आज से सार्वजनिक स्त्री की भांति जीवन व्यतीत करे, इसी से आज उसे संथागार में उपस्थित होकर अष्टकुल के गण–सन्निपात के सम्मुख शपथ ग्रहण करने की आज्ञा दी गई थी।''[20]

अम्बपाली अपने अस्तित्व एवं अधिकारों को लेकर अत्यन्त सजग है। वह वैशाली के इस धिक्कृत कानून को मानने से इंकार करती है जो एक स्त्री को अपना सतीत्व, मर्यादा, यौवन, रूप, स्त्रीत्व एवं देह अर्पण करने के लिए बाध्य करती है। उसका यह मानना है कि यह कानून स्त्री विशेष की स्वतंत्रता का हर प्रकार से हनन करता है। उसे प्रेम करने से रोकता और रूप के बाजार में अपना सौन्दर्य बेचने के लिए बाध्य करता है। इस कारण वह वैशाली के उस कानून का विरोध करते हुए कहती है कि–

''मैं सहस्त्र बार इस शब्द को दुहराती हूँ। यह धिक्कृत कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतन्त्र का कलंक है। मेरा अपराध केवल यह है कि विधाता ने मुझे यह अथाह रूप दिया। इसी अपराध के लिए आज मैं अपने जीवन के गौरव को लाँछना और अपमान के

पंक में डुबो देने को विवश की जा रही हूँ। आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे हैं। वह एक बार नहीं लाख बार धिक्कृत होने योग्य है।''[21]

अम्बपाली भी कुलवधुओं के समान जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह हर्षदेव के प्रति स्नेहभाव रखती है और उससे विवाह भी करना चाहती है। किन्तु जब उसे वैशाली की नगरवधू घोषित किया जाता है तो वह अत्यन्त खिन्न हो उठती है। कुलवधू बनने की सम्पूर्ण कोमल आकांक्षाओं को वैशाली के 'धिक्कृत्त कानून' पर निछावर करने से पूर्व देवी अम्बपाली गण से सप्तभूमि प्रासाद, नौ कोटि स्वर्णभार एवं प्रासाद के समस्त साधनों की मांग करती है। यद्यपि वह इस कानून को मानने के लिए बाध्य होती है किन्तु उसके मन में सम्पूर्ण समाज एवं पुरूष वर्ग के प्रति आक्रोश की भावना जल उठती है। साथ ही वह अपने नए जीवन के बारे में सोचकर सहम भी उठती है। जैसा कि–

''अब एक ओर उसके सामने कुलवधू की अस्पष्ट धुंधली आकृति थी और दूसरी ओर 'नगरवधू' बनकर सर्व–जनभोग्या होने का चित्र था एक ओर बंधन और दूसरी ओर उन्मुक्त जीवन। एक ओर एक व्यक्ति को मध्य बिन्दु बनाकर आत्मार्पण करने की भावना थी, दूसरी ओर विशाल वैभव, उत्सुक जीवन और महाविलास की मूर्ति थी। उसका विकसित साहसी हृदय द्वन्द्व में पड़ गया और उसने अपनी तीन शर्तें परिषद् में रख दीं। उसने सोचा, जब कानून की मर्यादा पालन करनी है तो फिर जीवन को वैभव और अधिकार की चोटी पर पहुंचना ही चाहिए और वैशाली के जिस जनपद ने उसे इस ओर जाने को विवश किया है, उसे अपने समर्थ चरणों से रौंद–रौंदकर दलित करना चाहिए।''[22]

अम्बपाली के हृदय में वैशाली के प्रति द्वेष तथा हिंसा की भावना थी। वह मन ही मन वज्जी संघ के नाश की कामना करने लगी। वह वैशाली के पुरूषों से इस बात का बदला लेने का प्रण करती है। वह कहती है–

''मैं वैशाली के स्त्रैण पुरूषों से पूरा बदला लूंगी। मैं अपने स्त्रीत्व का पूरा बदला लूंगी। मैं अपनी आत्मा का हनन करूंगी और उसकी लोथ इन लोलुप गृद्धों को उन्हीं की प्रतिष्ठा और मर्यादा के दामों पर बेचूंगी।''[23]

वह स्त्रियों की पराधीनता एवं उनके प्रति होने वाले सामाजिक अन्याय का विरोध करती है। उसका यह मानना है कि जो जनपद स्त्री की पराधीनता पर हस्तक्षेप करता है और उन्हें नगरवधू बनने के लिए बाध्य करता है, ऐसे जनपद का तुरन्त सर्वनाश हो जाना चाहिए। वह स्वयं को जबरदस्ती नगरवधू बनाए जाने का विरोध करते हुए कहती है कि–

''जहाँ स्त्री की स्वाधीनता पर हस्तक्षेप हो उस जनपद को जितना लहू में डुबाया जाय उतना ही अच्छा है।''[24]

अम्बपाली द्वारा लगातार जब इस धिकृक्त कानून का विरोध किया जाता है तब गणपति उसे अपना कर्त्तव्य समझाते हुए वैशाली जनपद के कल्याण की याचना करते हुए कहते हैं कि–

''मैं केवल सौदा नहीं कर रहा हूँ देवी, मैं तुमसे कुछ बलिदान भी चाहता हूँ, जनपद–कल्याण के नाते। सोचो तो, इस समय वैशाली का जनपद किस प्रकार चारों ओर से संकट में घिरा हुआ है। शत्रु उसे ध्वस्त करने का मौका ताक रहे हैं अब तुम्हीं एक ऐसी केन्द्रित शक्ति बन सकती हो, जिसके संकेत पर वैशाली जनपद के सेट्ठिपुत्रों और सामन्तगणों की क्रियाशक्ति अवलम्बित होगी। तुम्हीं उनमें आशा, आनन्द, उत्साह और उमंग भर सकोगी। तुम्हीं इन तरूणों को एक सूत्र में बांध सकोगी।''[25]

अंततः वह गणपति के निवेदन एवं जनपद के कल्याण हेतु इस धिकृक्त कानून को स्वीकार कर लेती है। लेखक ने अम्बपाली को जहाँ एक ओर अहं भाव से युक्त रखा है वहीं दूसरी ओर उसमें स्त्रीत्व का भाव भी है। 'डॉ0 भगवतीशरण मिश्र' के अनुसार–

''वह वैशाली के गण परिषद से अपनी तीन शर्तों को मनवाने के पश्चात् वह नगरवधू बन जाती है किन्तु उसके चरित्र की पराकाष्ठा यह है कि वह सामन्तपुत्रों, सेट्ठि–पुत्रों एवं अन्य नागरिकों के प्रणय निवेदन को अपने कौशल से ठुकराती रहती है। उनके मध्य वह अपनी मुस्कान तो बिखेर देती है, उन्हें शरीर का दान नहीं करती।''[26]

वह नारी की मर्यादा को महत्व देती है। वह किसी की पत्नी बनने की आकांक्षा भी रखती है। वह उदयन एवं सोमप्रभ के प्रति आकर्षित भी होती है। किन्तु वह यह जानती है कि वह नगरवधू है इसलिए उसे प्रेम करने का अधिकार भी नहीं है। मगध के राजा बिम्बिसार जब आम्रपाली के समक्ष अपने प्रेम का निवेदन करते हैं तो वह उनके प्रणय निवेदन को अस्वीकार करने में एक क्षण नहीं लगाती है। वेश्या जीवन की व्यथा को व्यक्त करते हुए वह कहती है कि–

''नहीं, देव नहीं। जैसे वेश्या होना मेरे लिए अभिशाप है, वैसे ही सम्राट होना आपके लिए। प्रेम के राज्य में प्रवेश करना हम दोनों ही के लिए निषिद्ध है। हम लोग प्रेम का पुनीत प्रसाद पाने के अधिकारी ही नहीं रहे।''[27]

आगे चलकर मगध सम्राट बिम्बिसार उसे वेश्या जीवन छोड़ने का बात कहते हैं तब वह उनको यह स्पष्ट रूप से कह देती है कि वेश्या व्यवसाय को उसने अपनी इच्छा से नहीं अपनाया है। बल्कि सामाजिक दायित्व की पूर्ति हेतु उसे यह व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य किया गया है। जैसा कि–

''इस.....गर्हित वेश्या–जीवन को? सम्राट यही कहना चाहते हैं? परन्तु यह संभव नहीं है, देव! जैसे मैं अपनी इच्छा से वेश्या नहीं बनी हूँ, उसी प्रकार आप भी आप भी अपनी इच्छा से सम्राट नहीं बने। हम समाज के बंधनों और कर्त्तव्यों के भार से दबे हैं, बचकर निकलने का कोई मार्ग ही नहीं है।''[28]

अंततः वह बिम्बिसार से इस शर्त कि, उनके औरस से अम्बपाली के गर्भ द्वारा जो संतान उत्पन्न होगी वही मगध का भावी सम्राट होगा, के आधार पर वह मगध सम्राट से

संबंध स्थापित करती है और एक प्रेमिका एवं पत्नी के समान उनकी देखभाल करती है। आगे चलकर वह मगध सम्राट बिम्बिसार के पुत्र की माँ बनती है और उसे बिम्बिसार को समर्पित कर देती है। बिम्बिसार अम्बपाली के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मगध का भावी सम्राट घोषित करता है। इधर अम्बपाली अपना सब कुछ त्यागकर बौद्ध धर्म की शरण में चली जाती है। उपन्यास के अंत में लेखक ने उसे जनकल्याणी के रूप में प्रस्तुत किया है जो अंत में समस्त वैभव त्यागकर बौद्ध भिक्षुणी बनकर वैशाली राज्य का कल्याण करती है। 'डॉ0 भगवतीशरण मिश्र' ने अम्बपाली के चरित्र की विशेषता का उल्लेख करते हुए कहा है कि–

''अम्बपाली का चरित्र सब मिलाकर एक महिमामयी श्रेष्ठ नारी का है जो अद्वितीय सौन्दर्यशालिनी और ऐश्वर्यशालिनी होने पर भी अपने चरित्र पर कोई दाग नहीं लगने देती। वह अपने जीवन में एक तलवार की धार पर ही चलती है और अंततः एक अद्‌भुत त्याग का परिचय देते हुए अपना सर्वस्व छोड़ कर बौद्ध भिक्षुणी बन इतिहास–पृष्ठों में अपना नाम स्वर्णांकित कर जाती है।''[29]

इस प्रकार लेखक ने आम्बपाली के चित्रण द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति एवं वेश्याओं की दशा पर प्रकाश डाला है। साथ ही यह भी बताया है कि तत्कालीन समाज में वेश्याओं की स्थिति वर्तमान समय की तुलना में बहुत अच्छी थी। उन्हें समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी और वे धन–वैभव से युक्त थी जो आज की वेश्याओं में देखने को नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त अम्बपाली के नगरवधू बनने का सबसे प्रमुख कारण उसका अपूर्व सौन्दर्य एवं वैशाली जनपद का कल्याण करना है। वह आज की वेश्याओं के समान गरीबी व किसी अन्य कारणवश इस पेशे को नहीं अपनाती। बल्कि जनपद द्वारा उसे बाध्य किया जाता है।

'सुहाग के नूपुर' 1960 ई0 'अमृतलाल नागर' द्वारा रचित दक्षिण भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर रचा गया है। लेखक ने उपन्यास के अन्तर्गत

ऐसे समाज का वर्णन किया है जो श्रेष्ठियों एवं राजा महाराजाओं द्वारा पोषित विविध कलाओं से युक्त था। यह उपन्यास महाकवि इंलंगोवन द्वारा रचित तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' की कथावस्तु पर आधारित होने के बावजूद एक स्वतंत्र रचना है। 'डॉ सुदेश बत्रा' ने अपनी पुस्तक 'अमृतलाल नागर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त' में सुहाग के नुपूर के कथा की मौलिकता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि–

''ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान सामाजिक समस्याओं का छायांकन नागरजी ने 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में किया है। वे इतिहास के प्रखर अध्येता हैं और सुदूर अतीत में अपनी कल्पनाओं को दृष्टि प्रदान करने वाले सिद्धहस्त कलाकार हैं। अतः दक्षिण के महाकवि 'इलंगोवन' रचित महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' की सरसता, सजीवता और यथार्थता को उन्होंने अपने ही ढंग से 'सुहाग के नुपूर' उपन्यास में उतार दिया है। प्राचीन दक्षिण भारतीय सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित होते हुए भी इसका कलेवर समस्त भारतीय संस्कृति के मानदंडों, नैतिक मूल्यों और परम्पराओं से युक्त है।''[30]

शिल्लपदिकारम् तमिल भाषा की प्रसिद्ध रचना है जिसमें लोकजीवन के यथार्थ का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया गया है। 'नीलकंठ शास्त्री' ने इस कृति की प्रशंसा करते हुए कहा है कि शिल्लपदिकारम् एक अद्वितीय रचना है।–अनेक अर्थों में सम्पूर्ण तमिल साहित्य में अनुपमेय है और दृश्यों का जैसा सुस्पष्ट चित्रण तथा छन्दों का दक्षतापूर्ण प्रभाव इसमें है जैसा अन्य किसी रचना में नहीं है।'[31]

'शिलप्पदिकारम्' की प्रचलित कथावस्तु को लेखक ने नवीन दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। 'शिल्लपदिकारम्' का अंत जहाँ दुखद है वहीं सुहाग के नूपुर का अंत सुखद है। क्योंकि 'शिल्लपदिकारम्' में कथानक के अंत में नायक–नायिका दोनों की मृत्यु हो जाती है और प्रमुख नगर 'कावेरीपट्टनम' व 'मदुरा' दोनों नष्ट हो जाते हैं वहीं दूसरी ओर 'सुहाग के नूपुर' में नायक–नायिका दोनों कथानक के अंत में जीवित रहते हैं और मदुरा के बजाय केवल 'कावेरीपट्टनम' का नाश होता है। उपन्यास के 'निवेदनम्' में स्वयं 'अमृतलाल नागर' ने 'सुहाग के नूपुर' को एक स्वतंत्र रचना माना है। जैसा कि–

'' 'शिलप्पदिकारम्' की मूल कथावस्तु अति प्राचीन काल से इस देश के साहित्य में प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। घिसी–पिटी 'थीम' होने पर भी पॉपुलर उपन्यास के लिए मुझे वह अच्छी लगी। मैं अपने दृष्टिकोण से उसमें नवीनता देख रहा था।''[32]

अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' में नगरवधू की पीड़ा एवं विवशता को चित्रित किया है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद इसका प्रतिपाद्य वेश्या बनाम कुलवधू जनित नारी पीड़ा को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है। 'डॉ0 हेमराज कौशिक' के अनुसार–

''नागर जी ने माधवी, नागरत्ना, चेलम्मा तथा पेरियनायकी के चरित्रों के माध्यम से किसी वेश्या या पत्नी विशेष की व्यथा कथा नहीं कही है अपितु नारी मात्र की पीड़ा को मुखरित किया है। इसीलिए उन्होंने नारी व्यथा को सामान्यीकृत धरातल पर प्रस्तुत किया है।''[33]

उपन्यास की प्रमुख वेश्या पात्र माधवी, चेलम्मा, पेरियनायकी आदि परिस्थितिवश वेश्या बनने के लिए मजबूर हुई है। ये कहीं न कहीं से लूटी गई, चुराई गई या बेची जाने के कारण वेश्या बनने के लिए मजबूर की गई हैं। चेलम्मा वेश्याओं की इस करूण दशा पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि–

''हो सकता है कि तू, मैं, तेरी अम्मा और वे सब अभागिनें जो अपने अबोध बचपन में लूटी, चुराई और बेची जाकर परिस्थितिवश वेश्या बनती हैं, किसी–न–किसी बड़े कुलीन और बड़े धनाधीश की ही पुत्र हों, परन्तु अब हमारा उस अनजाने की कुलीनता से क्या लेना–देना! हम उनके आचरण क्यों अपनाएँ! हम वेश्या हैं, हमें वेश्या ही रहना चाहिए।.... ''[34]

एक ओर जहाँ इन नगरवधुओं में वेश्या के समान हाव–भाव कुशलता एवं प्रेम का नाटक या जादू करने की प्रवीणता है वहीं दूसरी ओर कुलवधू के समान समर्पण की भावना भी है। वे कुलीन स्त्रियों की भांति पातिव्रत्य धर्म का आचरण करना चाहती है

किन्तु तथाकथित पित्तृसत्तात्मक समाज उन्हें इसकी आज्ञा नहीं देता है। अपने इस दर्द को चेलम्मा माधवी के समक्ष अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि–

''वेश्या बनकर भी मैंने चाहा था कि कुलीनों जैसा आचरण करूँ। कोई पुरूष मेरी बाँह गह ले और मैं आजीवन उसे अपना ही मानूँ, पतिव्रता की भाँति उसे केवल अपना बनाकर रखूँ। यह हठ मुझे खा गया।.....मैं बड़ी मार खाकर वेश्या बनी हूँ बेटी! और उस मार की ही प्रतिक्रिया में अपना समय आने पर मैं क्वार की धूप की तरह तपी थी। मेरे तेज को कोई सहन न कर पाया। न अम्मा, न मेरे प्रेमी और न मैं स्वयं ही। इसलिए आज तेरे तेज को देखकर तेरे भविष्य के लिए मैं डर गई हूँ। जाड़े की धूप–सी सुहावनी बन मेरी बिटिया!''[35]

चेलम्मा सदैव माधवी को पुरूषों जाति के दुहरे नैतिक मूल्यों के सदैव सचेत करती रहती है। वह माधवी को उसके कल्पनालोक से बाहर निकाल कर यथार्थ की भूमि पर लाना चाहती है क्योंकि वह माधवी के जिद का परिणाम अच्छे से समझती है। वह माधवी को स्पष्ट शब्दों में यह समझाती है कि कोवलन उसके पैरों में कभी भी सुहाग के नूपुर कभी नहीं डालेगा किन्तु माधवी इसे मानने के लिए तैयार नहीं होती।

उपन्यास में लेखक ने प्राचीन काल में वेश्याओं के दो वंजिवर्गों 'इलङ्गाइ' तथा 'वलङ्गाइ' का उल्लेख किया है। इन दोनों वर्गों में कुलीनता और अकुलीनता का भेद पाया जाता था। इसमें राजम्मा नामक वेश्या का संबंध वंश परंपरा से प्रतिष्ठित वंजिकुल से था। वेश्या समाज में उसका वही स्थान था जो कावेरीपट्टनम के धनी–मानी कुल में मासात्तुवान और मानाइहन का था। जबकि इसके विपरीत 'पेरियनायकी' की गणना अकुलीन वेश्याओं में की जाती थी। माधवी 'पेरियनायकी' की पोष्य पुत्री है उसे बचपन में ही पेरियनायकी ने ही खरीद लिया था। वेश्याओं के कुलीन एवं अकुलीन दोनों वर्गों में सदैव बड़े सेठों से आश्रय प्राप्त करने की सदैव होड़ लगी रहती थी जिससे वृद्ध होने पर उनका जीवन अच्छे से व्यतीत हो सके। पेरियनायकी विदेशी व्यापारी पान्सा के आश्रय में अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत कर देती है। यद्यपि वह स्वयं नगरवधू है किन्तु वह कुलवधू

के समान एक पुरूष व्रत का निर्वाह करती है। साथ ही वह माधवी को भी किसी एक व्यक्ति के प्रति निष्ठावान होने के लिए प्रेरित करती है। किन्तु माधवी पेरियनायकी की बात को अनसुना कर प्रारंभ से ही कुलवधू के अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती है। माधवी का आक्रोश एवं अंतर्द्वन्द समस्त वेश्यावर्ग की पीड़ा का प्रतिनिधित्व करता है। जैसा कि–

''नागर जी ने वेश्या नारी के जीवन के करूण संदर्भों को समूची संवेदना के साथ प्रस्तुत करने के अतिरिक्त कुलवधू की कारूणिक परिस्थितियों तथा जीवन दशाओं को भी उतनी ही संवेदना से प्रस्तुत किया है। जहाँ माधवी समाज के कर्णधारों के अत्याचारों का लक्ष्य बनती है वहाँ कुलवधू कन्नगी पति के अत्याचारों से अपमानित और पीड़ित होती है।''[36]

अमृतलाल नागर ने वेश्या जीवन का चित्रण अत्यन्त संतुलित दृष्टि से किया है। उपन्यास की कथावस्तु कावेरीपट्टनम् के दो प्रमुख व्यापारी सेठ मासात्तुवान के पुत्र कोवलन और मानाइहन की पुत्री कन्नगी को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। मासात्तुवान के पुत्र कोवलन की ख्याति अपने पिता के समान देश के साथ–साथ विदेशों में फैली हुई है। मानाइहन अपनी पुत्री कन्नगी का विवाह कोवलन से करना तय करते हैं और दोनों सेठ अपनी दोस्ती को रिश्तेदारी में बदल देते हैं। किन्तु विवाह होने से पूर्व कोवलन की मुलाकात माधवी से हो जाती है और महाराज के वार्षिक नृत्योत्सव के महोत्सव में वे दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। महाराज के नृत्योत्सव में वह अपनी प्रतिद्वन्दी को परास्त करके महाराज के गले की मोती की माला प्राप्त कर राज्य सर्वश्रेष्ठ नर्तकी चुनी जाती है। माधवी नगर के धनी व्यापारी के पुत्र कोवलन से एकनिष्ठ प्रेम करती है और उसी के आधार पर कुलवधू का स्थान प्राप्त करना चाहती है। जैसा कि वह स्वयं कोवलन से कहती है–

''सप्तमी को धर्म, राज और समाज के अटल नियम मेरे आराध्य देव को मुझसे बरबस छीनकर किसी और के मन–मन्दिर की प्रतिमा बना देंगे, और मैं हाथ मलती ही रह जाऊँगी। मन से अपना प्राणपति बना चुकने पर भी मैं अधिकारपूर्वक जीवन–भर तुम्हें

अपना न कह सकूँगी। मैं स्त्री नहीं, वेश्या हूँ। स्त्री के नैसर्गिक रूप, गुण और मन को पाकर भी उसके अधिकारों से वंचित हूँ। मैं स्त्री नहीं, वेश्या हूँ।''[37]

कोवलन पूरे समाज के पुरूष मनोविज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है। वह एक ओर वेश्या के रूप में कला मर्मज्ञ एवं नगर की सबसे सुन्दर नारी के घुंघरूओं की मधुर ध्वनि से मनोविनोद की आकांक्षा करता है तो दूसरी ओर पत्नी के रूप में कन्नगी से विधिवत विवाह कर पत्नी के सुहाग के नूपुरों की झंकार से पारिवारिक मान–मर्यादा को बनाए रखना चाहता है। एक तरफ वह माधवी के सौन्दर्य से प्रभावित होकर कन्नगी का अपमान करता है वही दूसरी तरफ माधवी के एकनिष्ठ प्रेम के बावजूद वह उसे कुलवधू की गरिमा प्रदान करने में असमर्थ है। वह कुलवधू के रूप में अपनी पत्नी कन्नगी की भी उपेक्षा करता है। वह उसे सिर्फ दासी के रूप में देखता है। अपनी सुहागरात के दिन वह उससे प्रश्न करते हुए कहता है कि कौन हो तुम? और जवाब में कन्नगी के मुख से यह सुनकर कि वह उसकी 'दासी' है, अत्यन्त संतुष्ट होता है। कुलवधू एवं नगरवधू में अंतर स्पष्ट करते हुए वह स्वयं कहता है कि–

''यही सुनना चाहता था। पत्नी के रूप में पुरूष एक स्त्री को दासी बनाकर अपने घर लाता है, समझीं! साधारण स्त्रियाँ साधारण मोल पर हाट में बिकती हैं, ऊँचे कुलों की स्त्रियों को दासी बनाने के लिए सोने–रूपे की थैलियों का मुँह खुल जाता है, अन्तर केवल इतना ही है। जानती हो? बोलो।''[38]

विवाह की प्रथम रात्रि को ही कन्नगी को वह अपनी प्रेमिका माधवी के घर लेकर जाता है। जहाँ माधवी उसे नाचने के लिए अपने घुँघरू देती है किन्तु कन्नगी शांत भाव से उनको पहनने से इंकार करती हुई कहती है–

''बहन, मेरे देवतुल्य पति ने सुहाग के नूपुरों से मेरे पैरों को बांध दिया है। ये घुँघरू तुम्हारे ही पैरों में शोभा पाएंगे।''[39]

लेखक ने उपन्यास में हर जगह कुलवधू के पद को गरिमा प्रदान की है। एक तरह से लेखक यहाँ पतिव्रत संबंधी पुरातन मूल्यों का समर्थन करते हुए नजर आते हैं। अर्थात् पति चाहे जैसा भी हो किन्तु पत्नी का यह कर्त्तव्य है कि वह उसके प्रति सदैव ईमानदार रहे। लेखक की ऐसी मान्यता के पीछे का प्रमुख उनकी प्राचीन भारतीय संस्कृति में आस्था है। यद्यपि माधवी भी कोवलन के प्रति पातिव्रत्य धर्म का अनुसरण करती है, साथ ही उसके प्रति ईमानदार भी रहती है। किन्तु नागर जी उसे कन्नगी के समान कुलवधू का दर्जा देने में असमर्थ रहे।

उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने पुरूषों के दोहरे नैतिक चरित्र एवं अहंभाव को सामने रखा है जो स्त्रियों की शोचनीय दशा के प्रमुख कारण हैं। लेखक ने उपन्यास में वेश्या बनाम कुलवधू के द्वन्दों के माध्यम से कुलवधू एवं नगरवधू की समस्या पर प्रकाश डाला है। जहाँ एक ओर कुलवधू पति द्वारा प्रताड़ित है वही दूसरी ओर नगरवधू समाज द्वारा प्रवंचित है। वर्तमान युग की वेश्याओं की अपेक्षा उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी किन्तु समाज नगरवधू को हीन दृष्टि से देखता था। वेश्याओं का कर्त्तव्य केवल अपने स्वामी को प्रसन्न करना है। वह उनके लिए मात्र विलास की वस्तु हैं। इसी संदर्भ में कोवलन से पूछे गए प्रश्न का उत्तर सुन निराश होकर माधवी कोवलन से कहती है–

''मैं केवल खिलौना हूँ। प्रकृति से मानवी के सारे गुण पाकर भी मैं समाज के अधिकारों से वंचित हूँ। मेरे प्यार का उपहार तुम्हारा प्यार नहीं हो सकता....केवल विलास....कोरा विलास! वाह रे तुम्हारा न्याय.....''[40]

कुलवधू के समस्त गुणों से युक्त होने के बावजूद कोवलन का यह मानना है कि वेश्या भी सती हो सकती है पर वह वेश्या ही कहलाएगी। वह माधवी के लिए व्यवसाय और मान–प्रतिष्ठा को नहीं छोड़ सकता था। जैसा कि–

''हाँ, वेश्या भी सती हो सकती है, पर कहलाएगी वेश्या ही। तुम्हारे धर्मपिता पान्सा भी तुम्हारी अम्मा को अपनी पत्नी नहीं कहते।''[41]

अपने दोहरे चरित्र एवं मानवीय मूल्यों के कारण कोवलन न तो कन्नगी को प्रसन्न कर पाता है और न माधवी को। इन दोनों के बीच घूमता हुआ वह सदैव दुखी रहता है। अपने इस द्वन्द को कन्नगी के समक्ष प्रकट करते हुए वह कहता है कि–

''मेरी विवशता समझो देवी! मैं प्रेम के आकर्षण में तुम्हारी और माधवी की ओर समान रूप से खिंचा हुआ परिस्थितिवश दो भागों में फटने के लिए बाध्य हो गया हूँ। सुनते हैं शूली पर मनुष्य का अंग चिर–चिरकर भंग होता है। भाग्य ने मुझे भी प्रेम की शूली पर चढ़ाया है। मैं मायायुत और मायारहित प्रेम का समान रूप से उपासक हूँ। यह द्विविधा मुझे बहुत सताती है।''[42]

इसके साथ माधवी जब कोवलन से कन्नगी से विवाह करने का कारण पूछती है तो वह उसका उत्तर देते हुए कहता है कि विवाह संतान उत्पत्ति के लिए आवश्यक है। लेकिन उसके इस उत्तर पर वह उससे प्रश्न करती है कि क्या मैं तुम्हें संतान नहीं दे सकती? तब कोवलन उससे कहता है कि तुम्हारे कोख की संतान किसी कुलीन का कुलदीपक नहीं बन सकती। लेकिन कन्नगी कोवलन के बातों की परवाह किए बगैर एक सती की भांति अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करती है। वह मासात्तुवान के वंशवृक्षपट्ट पर अपनी पुत्री मणिमेखला का नाम अंकित करने एवं सुहाग के नूपुरों को प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयासरत रहती है। वह कोवलन से सुहाग के नूपुरों की मांग करती है क्योंकि उसकी पुत्री ने उसे पिता का पद प्रदान किया है। किन्तु कोवलन कन्नगी की कोमल भावनाओं का उपहास करते हुए कहता है कि–

''पिता विलासी, माँ रूपाजीवा। दोनों ने संतान की इच्छा से जिस बेटी को जन्म नहीं दिया, उसकी माँ सुहाग के नूपुर पहनने के योग्य नहीं और न उसका पिता ही पिता कहलाने के योग्य।''[43]

कितनी बड़ी विडम्बना है कि जहाँ वेश्याओं को स्त्री के अन्तर्गत भी नहीं रखा जाता वहीं दूसरी ओर उनसे उत्पन्न संतान को समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें प्रारंभ से ही सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। इस प्रकार कोवलन

एवं माधवी के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में वेश्याओं की आर्थिक स्थिति अच्छी थी किन्तु समाज में उनको वे सामाजिक अधिकार प्राप्त न थे जो कुलवधुओं को प्राप्त थे। वे सिर्फ वेश्या थी। पेरियनायकी वेश्याओं की इसी करूण दशा पर प्रकाश डालते हुए कहती है कि–

''पुरूष हमारे यहाँ आता ही क्यों है? इसीलिए न कि बाहर के रगड़े–झगड़े, घर का रोग–शोक, दुख–चिन्ता बिसारकर हमसे दो घड़ी का मनबहलाव पा जाए। यही विश्वास तो हमारे और हमारे पुरूष ग्राहकों के बीच की आधारभूत सन्धि है। यदि ऐसा न हो तो वह अपनी सात भाँवरों की ब्याहता को छोड़कर हमारे घर अपना मुँह काला कराने आएँ ही क्यों?....''[44]

लेकिन पेरियनायकी के समझाने पर भी माधवी सदैव वह कुलवधू की प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लालायित रहती है। वह मन ही मन कुलवधू की गौरव प्राप्त करने एवं अपनी पुत्री का प्रतिष्ठित कुल में विवाह कराने का मन ही मन संकल्प करती है। वह उन सामाजिक प्रतिष्ठाओं का विद्रोह करते हुए कहती है कि–

''राह चलते लोग जब छीटें कसते हैं तब बड़ी प्रतिष्ठा होती है मासात्तुवान के कुल की! और मेरी मणि का नाम यदि इनके वंशवृक्ष में अंकित हो जाएगा तो इनकी सात पीढ़ियों की नाक कट जाएगी! सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न उठ खड़ा होगा। वाह रे इनका खोखला दंभ! मैं भी अड़ जाऊँगी। मैं इनकी पैतृक हवेली में ही अपने बेटी के साथ जाकर रहूँगी। मासात्तुवान की पौत्री का विवाह किसी प्रतिष्ठित कुल में होगा। देखती हूँ कैसे नहीं होता!''[45]

कोवलन माधवी से अथाह प्रेम करता है। यहाँ तक कि वह उसे विधिवत विवाह करके अपनी पत्नी भी बनाता है। किन्तु वह कन्नगी से सुहाग के नूपुर लेकर उसे माधवी को देने में असफल रहता है। यहाँ तक कि वह माधवी की पुत्री मणिमेखला का विवाह किसी प्रतिष्ठित एवं उच्च कुल में किए जाने का विरोध भी करता है। जैसा कि–

''पुत्री अकेली तुम्हारी ही तो नहीं, अन्य वेश्याओं और दासियों की कोख से भी मेरी संतानें उत्पन्न हुई हैं। फिर उन सबके लिए भी ऐसी ही व्यवस्था करनी होगी। और यदि उन सबके लिए व्यवस्था हो तो सभी वेश्यापुत्रियों के लिए क्यों न हो?.....नहीं नहीं, इससे हमारे समाज का सम्पूर्ण क्रम ही नष्ट हो जाएगा। इसके लिए अभूतपूर्व क्रान्ति की आवश्यकता है जो मेरे द्वारा कदापि नहीं हो सकती।''[46]

समाज में प्रतिष्ठा एवं कुलवधू के अधिकारों को प्राप्त करने के लिए माधवी तन और मन से कोवलन की सेवा करती है। वह अपनी पुत्री को उसके पिता कोवलन की वंश परम्परा में स्थान दिलाना चाहती है और उसके सम्पत्ति की अधिकारिणी भी बन जाती है। यहाँ तक कि वह कोवलन की पत्नी कन्नगी को अनेक दुख देने के पश्चात् घर से भी निकाल देती है लेकिन इसके बावजूद वह सुहाग के नुपूर प्राप्त करने में असफल रहती है। जिसके फलस्वरूप वह कोवलन के साथ विश्वासघात करती है और उसे घर से बेदखल करती है। कन्नगी जब संपूर्ण शक्ति लगाने के बावजूद सुहाग के नूपुर प्राप्त करने में असफल रहती है तब वह कोवलन को धिक्कारते हुए त्याग देती है और एक अन्य राजपुरूष का आश्रय लेती है। जैसा कि–

''तो अब यों भी न बैठ पाओगे। मैं अब तुम्हें तुम्हारी चरम गति पर ही पहुँचाकर दम लूँगी। अपना सर्वस्व निछावर कर चुकने के उपरान्त अंत में मुझे तुमसे कुछ न मिला। तुम मुझे सती न बना सके तो अब मैं तुम्हें वेश्या बनकर ही दिखलाऊँगी। निकल जाओ मेरे घर से! उठो जाओ!''[47]

माधवी द्वारा घर से निकाले जाने के पश्चात् कोवलन वापस कन्नगी के पास शरण लेता है। वह अपनी पत्नी माधवी के साथ मदुरै में नए जीवन की शुरूआत करता है। जबकि इधर कन्नगी को राजपुरूष से भी विश्वासघात मिलता है। साथ ही वह उसे यह सबक भी सिखाता है कि वेश्या कभी कुलवधू के पद पर आसीन नहीं हो सकती है। जैसा कि–

".....हःह! यही तुम्हारा दंड था प्रिये! चलते समय महाराज ने मुझसे कहा था कि कुलवधुओं की प्रतिष्ठा के लिए समाज को नगरवधुओं की आवश्यकता रहेगी, केवल उन्हें उनकी मर्यादा में बाँध दो। महाराज परम न्यायी हैं।"[48]

यद्यपि राजपुरूष का यह व्यवहार वेश्या के ईर्ष्याभाव को दमित अवश्य करता है किन्तु वेश्या जीवन की समस्या एवं मूल कारणों हेतु कोई निदान प्रस्तुत नहीं करता। कुलवधू के प्रति सबकी सहानुभूति होती है जो उपन्यास में कन्नगी के प्रति देखने को मिलती है लेकिन वेश्याओं के प्रति समाज को कोई सहानुभूति नहीं होती जबकि वास्तव में उनकी स्थिति कुलवधू से ज्यादा दयनीय है। इसी कारण परिस्थितिवश वेश्या बनी माधवी अपने अधिकारों की मांग करते हुए समाज से यह प्रश्न करती है कि–

"मैं भी न्याय लूंगी। वेश्या बनाने के लिए डाकुओं, कुट्टनियों का जाल फैलाकर जब हमें व्यवसाय की वस्तु बनाया जाता है तब सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न क्यों लुप्त हो जाता है? मैं स्वेच्छा से वेश्या के यहाँ बिक कर नहीं आई थी। मैं भी सती हूँ, मेरे सम्मुख भी अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न है।"[49]

यहाँ माधवी सम्पूर्ण वेश्यावर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। हमारे समाज में वेश्याओं को केवल को धन का लोभी और विलास की वस्तु के रूप में देखा जाता है। इस कारण भले ही वह किसी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम रखे किन्तु उसे कभी पत्नी का दर्जा नहीं मिल सकता बल्कि वह हर जगह घृणा की पात्र बनती है। अमृतलाल नागर ने वेश्या जीवन की इस व्यथा को माधवी के माध्यम से सशक्त भाषा में प्रस्तुत किया है–

"मैं वेश्या हूँ। मानवमात्र से द्वेष करती हूँ।.......कोई कहता है, मुझे मानव मात्र से घृणा है, मैं समाज का नाश करती हूँ, कोई यह नहीं देखता कि वेश्या स्वयं अपने ही से घृणा करने पर बाध्य है, क्योंकि परम्परा से घृणा के संस्कारों में पाली जाती है। जो स्त्री किसी भी अन्य गृहिणी की तरह कामकाजी और जग संचालन का भार वहन करने योग्य थी, उसे पुरूषों की विलास–वासना का साधन मात्र बनाकर समाज में निकम्मा छोड़ दिया

जाता है फिर क्यों न वह समाज से घृणा करे? क्यों न पूरी लगन और सच्चाई के साथ समाज का सर्वनाश करे? उसे पूरा अधिकार है।[50]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि नगरवधू एवं कुलवधू दोनों ही रूप में नारी त्रस्त है। अपने संस्मरण 'ये काठेवालियाँ' के अन्तर्गत अमृतलाल नागर ने वेश्यावृत्ति के कुछ समाधान सुझाए हैं। उन्होंने वेश्याओं के विवाह का समर्थन किया है जिससे वे आगे चलकर सामान्य स्त्रियों की तरह जीवन व्यतीत कर सके। इसके अतिरिक्त उन्होंने वेश्याओं की शिक्षा का भी समर्थन किया है जिससे वे अन्य स्त्रियों के समान आत्मनिर्भर बन सके और गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। अगर 'सुहाग के नूपुर' की बात की जाए तो यहाँ पर लेखक ने वेश्याओं के प्रति सहानुभूति रखने के बावजूद वेश्यावृत्ति के उन्मूलन हेतु कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है। उन्होंने नगरवधू एवं कुलवधू के माध्यम से नारी जीवन की पीड़ा को पाठकों के समक्ष रखा है। उन्होंने कुलवधू की महिमा को कहीं भी कमतर न करते हुए वेश्या की समस्या हेतु समाज के सामने अनेक प्रश्न उठाए हैं। उन्होंने नगरवधू को प्रतिष्ठा दिलाए जाने के साथ–साथ यह प्रश्न भी उठाया है कि क्या किसी वेश्या की संतान का भविष्य भी वेश्या की भांति असुरक्षित रहेगा? 'सुहाग के नूपुर' में वेश्या के अधिकारों को लेकर जो प्रश्न उठाए गए हैं, उसके विषय में 'डॉ0 नागेश राम त्रिपाठी' ने अपनी पुस्तक 'अमृतलाल नागर के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन' में कहा है कि–

''नागर जी ने माधवी के माध्यम से पुरूष की दुरंगी नैतिकता को चुनौती दी है, उसके मिथ्या अभिमान का पर्दाफाश किया है इसलिए अपने क्रांतिकारी प्रश्नों के आह्वान में उसका व्यक्तित्व बड़ा प्रखर हो उठा है। उसके कर्त्तव्य और चुभते प्रश्नों–वचनों के माध्यम से लेखक ने कुलवधू बनाम वेश्या–समस्या को गहराई से सामने रखा है।''[51]

अपने अधिकारों के लिए लड़ने के बावजूद माधवी सुहाग के नूपुर प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाती और अंत में बौद्ध विहार में महास्थविर महाकवि इळंगोवन से कथा सुनने के

पश्चात् समस्त नारी जाति के दर्द को बयान करती हुई वह कहती है कि–

''सारा इतिहास सच सच ही लिखा है, देव! केवल एक बात अपने महाकाव्य में और जोड़ दीजिए– पुरूष जाति के स्वार्थ और दम्भभरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग नारी जाति पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरूष न तो स्त्री को सती बनाकर सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर। इसी कारण वह स्वयं झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है, महाकवि! उसके आँसुओं में अग्नि प्रलय भी समाई है और जल प्रलय भी।''[52]

अगर विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों के वेश्या पात्रों की बात की जाए चाहे वह 'सुहाग के नूपुर' की माधवी हो या 'वैशाली की नगरवधू' की अम्बपाली दोनों अपने अधिकारों को लेकर सचेत हैं। वह समाज के ऐसे कानूनों का खुलकर विरोध करती हैं जो उनके अधिकारों का हनन करता है। उनके अंदर भी कहीं न कहीं कुलवधू बनने की इच्छा है किन्तु उनकी यह इच्छा कभी पूरी नहीं हो पाती हैं। भले ही कुलवधू के समान वे अनेक गुणों से युक्त हो किन्तु हैं तो वह आखिर नगरवधू। जिनका काम लोगों को प्रसन्न करना एवं उनका मनोरंजन करना है। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में नगरवधुओं की संतानों की स्थिति पर विचार करे तो वह आज की वेश्या संतानों से ज्यादा भिन्न नहीं है। दोनों ही वेश्या पात्रों की संतानों को उनके पिता द्वारा अपनाया गया। यहाँ तक कि वैशाली की नगरवधू की अम्बपाली की संतान को उसके पिता द्वारा साम्राज्य का भावी सम्राट का दर्जा भी दिया जाता है किन्तु समाज में उनको हेय दृष्टि से देखा जाता है। उनकी स्थिति वर्तमान समय में वेश्या संतानों से ज्यादा भिन्न नहीं है। इस प्रकार हम यह देखते हैं प्राचीन काल में आर्थिक रूप से सशक्त होने के बावजूद कुलवधू एवं नगरवधू के भेद बना ही रहता है। चाहे वह अपने प्रियतम के प्रति कितनी भी समर्पित एवं पवित्र हो आखिरकार वह है तो सर्वभोग्या ही।

अंततः यह कहा जा सकता है कि दोनों उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर वेश्या जीवन का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। अम्बपाली एवं माधवी द्वारा उठाए गए प्रश्नों के माध्यम से उपन्यासकारों ने वेश्या जीवन की समस्या को अत्यन्त गहराई से पाठकों के समक्ष रखा है। साथ ही दोनों वेश्या पात्रों के माध्यम से न केवल वेश्यावृत्ति के कारणों एवं परिणामों को रेखांकित किया है बल्कि समाज में शोषित नारी का कारूणिक चित्र प्रस्तुत करके उनके अधिकारों की मांग की है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची–


1. *"A ganika was a social celebrity because of her intellectual and artistic accomplishments. As townships and cities arose and maritime trade flourished, towns and cities became centres housing prostitutes, attracting money from travelers. They are recorded to have lived in capital cities and large commercial centres such as Ujjain, Vaisali, Pataliputra. These centres boasted of rich merchants who spent millions in maintaining their splendid establishments and patronizing ganikas well-versed in the art of eroticism."*

Monica saxena, Ganikas in Early India: Its Genesis and Dimensions, Social Scientist, Vol.34, Nov-Dec, 2006, page- 9-10.

2. दृष्टव्य है, डॉ0 गोविन्दजी, हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास–प्रयोग, कल्पना प्रकाशन, मेरठ, प्रथम संस्करण, जुलाई 1947, पृ0 1।

3. वही, पृ0 1।

4. धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।

वही, पृ0 1।

5. आर्षादि बहुव्याख्यानं देवर्षिचरिताश्रयम्। इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भूतधर्मयुत्।।

वही, पृ0 1।

6. According to Paul Leicester-

*"An historical novel is one which grafts upon a story, actual incidents or persons well enough known to be recognized as historical element."*

दृष्टव्य है, वही, पृ0 100।

7. According to John Buchan-

*"A historical novel is simply a novel which attempts to reconstruct the life and recapture the atmosphere of an age other than that of the writer."*

दृष्टव्य है, वही, पृ0 100।

8. According to Jonathan Nield-

*"A novel is rendered historical by the introduction of dates, personages, or events to which identification can be readily given."*

दृष्टव्य है, वही, पृ0 100।

9. According to Ernest E. Leisy-

*"A Historical novel is a novel, the action of which is laid in an earlier time."*

दृष्टव्य है, वही, पृ0 100।

10. सरला मुद्गल, आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, पृ0 288।

11. *"The ganikas because of her youth, beauty, training and accomplishment belonged to a superior social status. With an extensive, elaborate and apprantely expensive education she could frequently named her price which as Buddhists texts testify was often prohibitive. She was patronized by the king who visited her sometimes, as also by the wealthy merchants. Because of her high fees none but most wealthy could approach her. She alone enjoyed a position where as long as her beauty lasted she could not be exploited."*

Sukumari Bhattacharji, Prostitution in Ancient India, Social Scientist, Vol. 15, Feb 1987, Page-43-44.

12. ई0 बी0 कावेल (अनुवादक), महावग्ग, 8'1'2, भाग1–6, क्रैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1907, पृ0 सं0 30 ।

13. *"The word janpadkalyani literally meant the most beautiful women. The digha nikaya, majjihima nakaya and the samyutta nikaya refer to her, Buddhists texts mention many affluent and powerful courtesans who fed the Buddha and his train and gave bgifts to the order. We thus hear of Ambapali giving such a feast to the Lord and his hundred thousand followers. She also gave away her big mango grove to the order."*

Sukumari Bhattacharji, Prostitution in Ancient India, social scientist, vol 15, feb 1987, page- 13-14.

14. *I had not even emerged out of my adolescence when my beauty became a matter of all round engrossment. My patrons claimed that my splendor was blinding and my dancing prowess unmatched. Later, as the Nagarvadhu of Vaishali, my exquisiteness was available for all who could affordits price, to drown their sorrows and wordly worries in."*

Anurag anand, The legend of Amarapali An enchanting sags buried within the sands of time, Srishti publication, New Delhi, Feb 2012, Page 3.

**15.** सरला मुद्गल, आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, पृ0 288।

16. डॉ0 गोविन्दजी, हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों मैं इतिहास–प्रयोग, कल्पना प्रकाशन, मेरठ, प्रथम संस्करण, जुलाई 1947, पृ0 303।

17. वही, पृ0 304।

18. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2016, पृ0 8।

19. वही, पृ0 13।

20. वही, पृ0 11।

21. वही, पृ0 14।

22. वही, पृ0 20।

23. वही, पृ0 20।

24. वही, पृ0 21।

25. वही, पृ0 22।

26. डॉ0 भगवतीशरण मिश्र, हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ0 60।

27. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2016, पृ0 97।

28. वही, पृ0 98।

29. डॉ0 भगवतीशरण मिश्र, हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ0 61।

30. 'डॉ सुदेश बत्रा', 'अमृतलाल नागर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त', पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2003, पृ0 108।

31. दृष्टव्य है, संगम युग साहित्य एवं संस्कृति, डॉ0 रामनिहोर पाण्डेय, अभय प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1988, पृ0 451।

32. अमृतलाल नागर, सुहाग के नूपुर, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2011, पृ0 7।

33. डॉ0 हेमराज कौशिक, अमृतलाल नागर के उपन्यास, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985, पृ0 168।

34. अमृतलाल नागर, सुहाग के नूपुर, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2011, पृ0 33।

35. वही, पृ0 33।

36. वही, पृ0 169।

37. वही, पृ0 49।

38. वही, पृ0 65।

39. वही, पृ0 70।

40. वही, पृ0 50।

41. वही, पृ0 70।

42. वही, पृ0 113।

43. वही, पृ0 115

44. वही, पृ0 57।

45. वही, पृ0 122।

46. वही, पृ0 130।

47. वही, पृ0 161।

48. वही, पृ0 182।

49. वही, पृ0 119।

50. वही, पृ0 168।

51. डॉ नागेशराम त्रिपाठी, 'अमृतलाल नागर के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन', वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 120।

52. अमृतलाल नागर, सुहाग के नूपुर, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2011, पृ0 192।

# विवेच्य उपन्यासों का शिल्प

प्रत्येक साहित्यिक रचना के दो पक्ष होते हैं– पहला भाव पक्ष और दूसरा कला पक्ष। भाव पक्ष का संबंध रचना की विषयवस्तु से होता है जिसमें लेखक ने क्या कहा है इस पर बल दिया जाता है, जबकि शिल्प पक्ष के अन्तर्गत लेखक ने अपनी बात या भावनाओं को कैसे कहा है, यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है। विवच्य उपन्यासों के शिल्प का अध्ययन करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि शिल्प क्या होता है? विद्वानों ने शिल्प को रचना, कला कौशल एवं क्रिया कौशल के अर्थ में स्वीकार किया है। 'सर मौनियर विलियम्स' ने शिल्प शब्द के पाँच अर्थ बताए हैं। उनके अनुसार कलात्मक कार्य चाहे यांत्रिक हो या ललित कला, काव्य, संगीत, अभिनय और नृत्य आदि किसी भी कलात्मक कार्य में कौशल और रूप, आकृति आदि शिल्प के विविध अर्थ हैं।[1] इस तरह शिल्प शब्द को रचना, क्रिया–कौशल एवं कला कौशल के अर्थ में स्वीकार किया जा सकता है। 'डॉ0 सुदेश बत्रा' के अनुसार–

''शिल्प' मात्र Expression नहीं है बल्कि वह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें साहित्य की विधाओं के अभिनव सौन्दर्य को संप्रेष्य, अनुभूतिगम्य और पाठकीय संवदेना का अंग बना देने की क्षमता है।''[2]

शिल्प के प्रमुख तत्वों में भाषा शैली, संवाद योजना, कथनोपकथन का विशेष महत्व होता है। शिल्प के इन्ही तत्वों के आधार पर विवेच्य उपन्यास के शिल्पों का वर्णन इस प्रकार है।

## (क) भाषिक संरचना–

भाषा केवल सम्प्रेषण का माध्यम ही नहीं होती है, बल्कि वह एक समूची संस्कृति की संवाहक एवं प्रतिनिधि भी होती है। उसमें एक समाज की परंपरा,

उपलब्धि, संस्कार, ज्ञान, सोच आदि सभी का समावेश होता है। 'राजेन्द्र यादव' का भाषा के विषय में यह मानना है कि–

''भाषा केवल अभिव्यक्ति ही नहीं, चिंतन प्रक्रिया भी है। हम शब्दों में ही सोचते और अनुभव करते हैं। भाषा, यानी जिंदगी खोखली, व्यर्थ, बेमानी, फिजूल और बेतुकी हो गई है–भाषा की अनुपस्थिति में सोचना किस तरह संभव होता, मेरे लिए कल्पनातीत है।''[3]

उपन्यास का मानव समाज एवं जीवन से अत्यधिक निकटता का संबंध होता है। अन्य विधाओं के समान उपन्यास में भी भाषा का महत्व इतना अधिक है कि उसके विषय को भाषा से पृथक् करके देखना अत्यधिक कठिन है। उपन्यास में लेखक भाषा के माध्यम से अपनी संवेदना, समाज तथा जीवन को अभिव्यक्त करता है। 'रोजर फाउलर' के अनुसार उपन्यास की संरचना तथा जो कुछ भी उसके माध्यम से संप्रेषित होता है, उपन्यासकार की भाषिक–संयोजना में प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित है।[4] इस कारण भाषा का स्पष्ट, सरल तथा प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक है। भाषा की सहजता, सुस्पष्टता एवं गंभीरता के अभाव में लेखकीय संवेदना का रूप खंडित हो जाता। विवेच्य सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास अपने शिल्प के कारण बेजोड़ बन पड़े हैं।

वेश्या जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति हेतु लेखकों ने विषयानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। ऐतिहासिक उपन्यासों के अन्तर्गत 'अमृतलाल नागर' के 'सुहाग के नुपूर' एवं 'चतुरसेन शास्त्री' के 'वैशाली की नगरवधू' की भाषा की बात की जाए, तो दोनों ही उपन्यासों की भाषा संस्कृतयुक्त तत्सम शब्दावली से युक्त है। यह दोनों उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं इस कारण इन उपन्यासों के वेश्या पात्रों की भाषा सभ्य है। उनमें एक प्रकार का आक्रोश होते हुए भी कहीं भी गाली–गलौच एवं असंस्कृत भाषा का प्रयोग देखने को नहीं मिलता है।

सबसे पहले अगर 'चतुरसेन शास्त्री' के 'वैशाली के नगरवधू' की भाषा की बात की जाए तो यह संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली से युक्त है। 'डॉ0 भगवतीशरण मिश्र' ने वैशाली की भाषिक संरचना की प्रशंसा करते हुए कहा है कि–

'' 'वैशाली की नगरवधू' आचार्य चतुरसेन शास्त्री की ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इसका भाषिक सौन्दर्य उच्च कोटि का है। अनेक अवान्तर कथाओं के बावजूद प्रमुख कथा कहीं से मार्ग–च्युत नहीं होती। उपन्यास आद्यन्त तत्सम शब्दावली की अपूर्व सौन्दर्य छटा बिखेर कर पाठक को चकित कर देता है। मानना पड़ेगा कि यह महार्घ कृति सामान्य नहीं, अपितु विशिष्ट पाठकों के लिए है।''[5]

अम्बपाली को जब वज्जि संघ के कानून के अनुसार नगरवधू घोषित किया जाता है तब वह इस कानून का जोरदार ढंग से विरोध करती है। वज्जि संघ के धिक्कृत कानून के प्रति उसके आक्रोश को लेखक ने अत्यन्त मर्यादित भाषा में प्रस्तुत किया है–

''मैं वैशाली के स्त्रैण पुरूषों से पूरा बदला लूंगी। मैं अपने स्त्रीत्व का पूरा सौदा करूंगी। मैं अपनी आत्मा का हनन करूंगी और उसकी लोथ इन लोलुप गृद्धों को उन्हीं की प्रतिष्ठा और मर्यादा के दामों पर बेचूंगी।''[6]

'वैशाली की नगरवधू' की भाषा में प्रसंगानुसार परिवर्तन भी देखने को मिलता है। लेखक ने जहाँ पर साधारण वर्णन प्रस्तुत किया है वहाँ उनकी भाषा सहज एवं सरल है किन्तु नगर, रूप व वैभव वर्णन तथा प्रवचनों की भाषा का स्वरूप संस्कृतगर्भित एवं आलंकारिक है। जैसा कि–

''राजबाला के संपूर्ण शरीर से स्वच्छ कांति प्रस्फुटित हो रही थी। उसका सद्यः स्नात हिमधवल प्रभापुंज गात्र, शरतकालीन मेघों से आच्छादित चन्द्रकला जैसा प्रतीत हो रहा था। वह मूर्तिमती स्वर्ग–मंदाकिनी सी, शंख से खोद कर बनाई हुई दिव्य प्रतिमा

सी प्रतीत हो रही थी। जैसे अभी अभी विधाता ने उसे चन्द्रकिरणों के चूर्ण कूर्त्तक से धोकर, रजतरस से आप्लावित करके, सिन्धुवार के पुष्पों की धवल कान्ति से सजा कर वहाँ बैठाया हो।''[7]

'अमृतलाल नागर' ने 'सुहाग के नुपूर' के अन्तर्गत दक्षिण भारत की कथा को आधार बनाया है, इस कारण उपन्यास में हिन्दी के साथ–साथ तमिल एवं संस्कृत के शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से देखने को मिलता है। उपन्यास के आरंभ में निवेदनम् के अन्तर्गत उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उपन्यास के अन्तर्गत मिली–जुली भाषा का प्रयोग किया गया है जिससे साधारण हिन्दी जाननेवाले पाठक पढ़ सके। अमृतलाल नागर जी की भाषा की विशेषता बताते हुए 'डॉ0 नागेश राम त्रिपाठी' ने कहा है कि–

''नागर जी के उपन्यास साहित्य की भाषा में हमें 'प्रेमचन्द' की सरल, सहज बोलचाल की भाषा, परम्परा का विकास लक्षित होता है। उसमें व्यापकता के साथ–साथ स्पष्टता और सहज आत्मीयता भी है।.....नागर जी की भाषा जीवन का पर्याय हो जाती है जबकि वे समय कुछ भी हो, प्राचीन अतीत ह्रासोन्मुख मध्यकाल या अनिश्चित वर्तमान और भविष्य–यथार्थ से सीधी उत्तेजना ग्रहण करते हैं।''[8]

नागर जी का भाषा संबंधी ज्ञान अत्यन्त व्यापक है। सुहाग के नूपुर में मिली–जुली भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। नागर जी तमिल भाषा से परिचित थे एवं संस्कृत भाषा में भी उनकी पर्याप्त रूचि थी, इस कारण उपन्यास में इन शब्दों का प्रयोग बहुलता में मिलता है। उनकी भाषा संबंधी बहुज्ञता के विषय में 'डॉ0 नागेश राम त्रिपाठी' ने कहा है कि–

'' 'नागर जी' बोली जाने वाली भाषा के परम पारखी रहे हैं। उनकी गणना हिन्दी के ऐसे लेखकों में की जाती है, जिनका भाषा संबंधी ज्ञान पर्याप्त व्यापक है। नागर जी में एक प्रधान गुण यह भी है कि वे किसी भी क्षेत्र या व्यक्ति की भाषा को उसके अविकल रूप में ही व्यक्त कर देते हैं। साथ ही नागर जी को विविध भाषाओं का पूर्ण

ज्ञान है। गुजराती नागर जी की मातृभाषा है। इसके अतिरिक्त उन्हें मराठी बंगला आदि भाषाओं की भी अच्छी जानकारी है। तमिल भाषा से भी वे परिचित है और संस्कृत भाषा में भी उनकी पर्याप्त रूचि है।''[9]

ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा सामाजिक उपन्यासों की भाषा यथार्थ के अधिक निकट हैं। जैनेन्द्र के 'दशार्क' को अगर छोड़ दिया जाए तो अन्य सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास जैसे– 'सलाम आखिरी', 'मुरदाघर', 'दो बूँद जल', 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा' एवं 'आज बाजार बंद है' में गाली–गलौच एवं अपशब्दों का अधिक प्रयोग मिलता है। सर्वप्रथम अगर जगदम्बा प्रसाद दीक्षित के उपन्यास 'मुरदाघर' की भाषा की बात की जाए तो इस उपन्यास की भाषा सार्थक एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने वेश्या जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त करने हेतु पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उपन्यास की भाषा में पस्त मनोबल की थरथराहट सर्वत्र विद्यमान है। अभावयुक्त जीवन व्यतीत करने वाली वेश्या पात्रों में आक्रोश व्याप्त है जो भाषा के माध्यम से उपन्यास में बीच–बीच में फूट पड़ता है। 'डॉ0 रामविनोद सिंह' ने उपन्यास की भाषा की विशेषता बताते हुए कहा है कि–

''तथ्य के यथार्थ चित्रण और भाषा–नियोजन में यह उपन्यास न केवल आठवें दशक के उपन्यासों में अपनी उपस्थिति का अहसास दिलाता है, बल्कि हिन्दी के उपन्यास में ही यह अपने लिए एक विशिष्ट स्थान निर्मित करता है।''[10]

यद्यपि रामविनोद जी यह मानते हैं कि यथार्थ की अभियक्ति हेतु लेखक द्वारा प्रयोग की गई भाषा बेजोड़ है किन्तु उसमें तथ्य की एकरसता के कारण भाषा भी कहीं–कहीं एकरस हो गई है। किन्तु इतना होने के बावजूद झुग्गी–झोपड़ में रहने वाले व्यक्तियों की मनसिकता एवं वेश्या जीवन के दर्द की अभिव्यक्ति में 'मुरदाघर' की भाषा सफल रही है। इस कारण 'डॉ0 राम विनोद सिंह' मुरदाघर की भाषा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि–

''हिन्दी उपन्यास की भाषा या तो काव्यात्मक है–अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' या दार्शनिक शुष्कता से त्रस्त जैनेन्द्र के उपन्यासों की भाषा, या पात्रोचित भाषा–विन्यास के नाम पर गाली–कोश तैयार किया गया है–राही मासूम रजा की तरह। लेकिन इसकी भाषा कहीं तो पात्रों के कारण काव्यात्मक है, कहीं प्रसंगगत सूचना के कारण रिपोर्ताज है तो कहीं भाषा अपनी सादगी, सहजता और प्रवाहशीलता से मंडित है। निश्चय ही इसकी भाषा अधिक श्लाघनीय है।''[11]

लेखक ने अपने उपन्यास में समाज के ऐसे तबके को आधार बनाया है जो अर्धशिक्षित या अशिक्षित हैं। इस कारण उनकी भाषा में अभद्रता एवं अशिष्टता के साथ–साथ उनमें गाली–गलौच एवं अपशब्दों का बाहुल्य देखा जा सकता है। उपन्यास के अन्तर्गत हर जगह ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक के पात्र बोल रहे हैं। पूरे उपन्यास में लेखक अनुपस्थित है। 'डॉ0 निर्मल कुमार वार्ष्णेय' ने मुरदाघर की भाषा संबंधी विशेषता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि–

''जैसा कि जाहिर है कि इस उपन्यास में इस उपन्यास के आदमी जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह एक अधूरी भाषा है, जिस भाषा का सुर–ताल, लय और बल गालियों में जाकर अर्थ पाता है। जाहिर है कि आदमी के टुच्चेपन के साथ ही भाषा में भी टुच्चापन आता है। इस अर्थ में ''मुर्दाघर'' की भाषा जिन्दगी के टुच्चेपन को प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत करती है।''[12]

'गोपाल राय' ने मुर्दाघर की भाषा को चित्रभाषा की संज्ञा दी है जो कहानी कहने के बदले पाठकों के समक्ष दृश्यों की श्रृंखला उपस्थित कर देती है। उनके अनुसार–

''मुर्दाघर की भाषा व्याकरण की दृष्टि से दुरूस्त और परिनिष्ठित भाषा से भिन्न अटककर चलने वाले अधूरे वाक्यों, शब्दों और बिन्दुओं (...) से निर्मित चित्रभाषा है जो धाराप्रवाह कहानी कहने के बदले दृश्य श्रृंखला निर्मित करती है। अनपढ़ लोगों द्वारा बोली जाने वाली बम्बइया हिन्दी सुसंस्कृत कानों को अटपटी लगने के बावजूद चित्रों

में जान भर देती है। उपन्यासकार नरेटर के रूप में अपनी उपस्थिति का बोध नहीं कराता, वह केवल छोटे–छोटे चित्र निर्मित करता है जो बीच–बीच में अपनी गतिशीलता को स्थगित कर दृश्य में बदल जाते हैं।''[13]

'मुरदाघर' आधुनिकता से सम्बद्ध विकास की प्रक्रिया से उत्पन्न नगरीकरण के साथ जुड़ी हुई बंबई की गंदी बस्तियों में रहने वाली वेश्याओं के जीवन का चित्रण करता है। इस कारण उपन्यास की भाषा में मराठी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है। जैसा कि–

''ए ! भूक लगा मेरे कू.....खाना दे.... ।

–ए ! मेरे कू पिसाब लगा। जाने दे बाहर....नईं तो.... ।

–ए ! गाँडू हवलदार ! तू अपना अउरत का पास सोता कि नईं सोता?

–ए ! एक कप चा तो पिला कम–से–कम... ।

–साला मरदूद!.....

–भड़वी का..... ।[14]

'मधु कांकरिया' के 'सलाम आखिरी' उपन्यास मुख्यतः कलकत्ता के वेश्या जीवन पर आधारित है। इस कारण उपन्यास में लेखिका ने बंगाली मिश्रित हिन्दी भाषा का प्रयोग विशेष रूप से किया है। जैसा कि–

''इनी जानते चान सेई दू टा छेले केनो एच्छ छीलो एक्खाने।''

''जा भाग, तू तो बच्चा तोर एक्खोन कि काज?''

''बस आपनि आमार नाम छापबेन ना.....छवि तुलबेन ना।''[15]

यद्यपि लेखिका ने उपन्यास के अन्तर्गत बंगाली भाषा का प्रयोग किया है किन्तु जहाँ भी बंगाली भाषा का प्रयोग किया है वहाँ कोष्ठक के अंदर उसका हिन्दी में अर्थ भी अवश्य दिया है। जैसा कि–

'बाबा कि कोरेछै.....सच्ची अद्भुत!'

(बाप रे क्या किया चन्द्रिका ने.....सचमुच अद्भुत)

'सब कुछ टाइमली, एकटू देरी होए गले ओके बचाया जेतो ना।'

(सबकुंछ एकदम टाइमली, थोड़ी सी भी देरी हो जाती तो उसको बचाया नहीं जा सकता था।)[16]

'मुरदाघर' के समान 'सलाम आखिरी' उपन्यास में लेखिका ने वेश्या जीवन के दर्द एवं टीस को अभिव्यक्ति देने के लिए पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। इस भाषा में न कहीं बिम्ब है, न प्रतीक, न अलंकार, न वक्रोक्ति और न लाक्षणिकता। इन भाषा शक्तियों को लेखक ने अस्वीकार करते हुए ऐसी भाषा के प्रयोग पर बल दिया है जो गालियों, मुहावरों एवं अधूरे शब्दों द्वारा शोषित वर्ग के आक्रोश एवं बेचैनी को अभिव्यक्त कर सके। उपन्यास की प्रमुख वेश्या पात्र प्रायः सड़कों पर देह बेचने वाली लाइनवालियाँ हैं जिन्हें कम उम्र में इस व्यवसाय को अपनाने के लिए बाध्य किया गया है। इनमें से कईयों की उम्र 14 वर्ष के आस–पास हैं और ज्यादा पढ़ी–लिखी भी नहीं हैं। इस कारण उपन्यास में गाली–गलौच एवं अभद्र भाषा का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है। उदाहरणस्वरूप–

''ये वाली मालकिन तो एकदम बूढ़ों और बच्चों को दफा कर देती है और वह तो ऐसी कमीनी लोभन थी कि बच्चों और बूढ़ों तक को नहीं बख्शाती थी। हरामजादिन चुन–चुनकर सारे मर्द कलन्दरों को छाँट देती अपनी चहेतियों के लिए और सारे बदसूरत, बदबूदार और बूढ़े ग्राहकों को मेरे पास। कीड़े पड़े उसकी देह को, खडुस, माँ का.....!''[17]

इसके अतिरिक्त अन्य विवेच्य सामाजिक उपन्यासों जैसे 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा', 'दो बूँद जल', 'आज बाजार बंद है' में लेखकों द्वारा वेश्या जीवन के यथार्थ को दिखाने के लिए बेबाक भाषा का प्रयोग किया है। लेखकों द्वारा पात्रानुसार सुन्दर भाषा के साथ–साथ साले, हरामी, रंडी, रंडों, छिनाल आदि का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। 'आज बाजार बंद है' का एक उदाहरण इस प्रकार है–

''स्साले तू इसीलिए हिंया आया था। अब इस गंदगी को कौन साफ करेगा। बतला स्साले मैं तेरी बीबी हूँ क्या?''

पार्वती की जली कटी बातें सुन वही शराबी बुदबुदाया था,

''घर में स्साली बीबी सुनाती है और यहाँ रंडी, आखिर आदमी कहाँ जाएं,''

शराबी का अंतिम वाक्य सुनकर पार्वती भड़क उठी थी,

''जहन्नुम में जा स्साले।''[18]

'आज बाजार बंद है' मूलतः दलित वेश्या पार्वती को आधार बनाकर लिखी गई है। इस कारण जहाँ उसे दलित होने का दंश झेलना पड़ता है वहीं दूसरी ओर उसे वेश्या जीवन की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस कारण इस उपन्यास के पात्रों की भाषा में एक प्रकार का आक्रोश देखने को मिलता है। जैसा कि–

थोड़ा मुस्कराते हुए व्यंग्य में कहा था इंस्पेक्टर ने

''औरतें तो पैदाइसी गुलाम होती है।''

तभी आक्रोश से भरा स्वर उभरा था,

''नहीं औरतें पैदाइसी गुलाम नहीं होतीं। गुलाम उसे आदमी बनाता है। रस्म–रिवाज बनाते हैं। वे परंपराएं बनाती हैं, जिन्हें मैंने कभी का छोड़ दिया।''[19]

अन्य उपन्यासों के समान लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा' में भी पात्रों द्वारा अपशब्दों का प्रयोग किया गया है। किन्तु अन्य उपन्यासों की तुलना में इस उपन्यास में गाली–गलौच एवं अपशब्दों का प्रयोग कहीं–कहीं देखने को मिलता है। जैसा कि उपन्यास की पागल बिग्गी नामक वेश्या द्वारा प्रयुक्त अपशब्दों की भाषा का उदाहरण इस प्रकार है–

''बिग्गी के मुँह में जो कुछ भी आ रहा है, वह चिल्लाकर कह रही है–तू नामर्द है रे! चोर है, जालिम है, खूंखार है। मुफ्त में मेरी जवानी लूटेगा। बिना पैसे का मेरा जोबन लेगा। छीः तेरे नमकहराम की! सालों को यह खेल है, तमाशा है। एक जमाने को कत्ल कर बैठे।''[20]

सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों के अन्तर्गत यदि जैनेन्द्र के 'दशार्क' की भाषा पर विचार किया जाए तो यह अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इस उपन्यास में लेखक ने सभ्य एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उपन्यास की प्रमुख वेश्या पात्र रंजना एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं शिक्षित वेश्या है। इस कारण कहीं भी उसकी भाषा में अपशब्दों का प्रयोग नहीं मिलता। यद्यपि वह इस पेशे को आर्थिक कारणों से अपनी इच्छानुसार अपनाती है, इस कारण उसकी भाषा में आक्रोश भी कम देखने को मिलता है। जैसा कि–

''बताइए, मैं आपको खुश कर सकूं तो इसमें क्या अनैतिक है, और क्या अपराध है? खुशी से कोई कुछ अपना लुटा जाता है तो इसमें भी किसी का क्या नुकसान होता है? स्त्री से संतान पाकर कोई पति तुष्ट नहीं रहता, उसे कुछ और भी चाहिए। वह चाहिए कि जिसमें कर्त्तव्य न हो, कुछ वह कि जिसमें निषेध का भी रस हो।''[21]

## (ख) शब्द योजना–

भाषा की समृद्धि के प्रमुख आधारों में शब्द भंडार का प्रमुख स्थान है। अपनी बात कहने के लिए लेखकों ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग उपन्यास के

अन्तर्गत किया है। विवेच्य उपन्यासों के अन्तर्गत उपन्यासकारों द्वारा संस्कृत युक्त शब्दावली के साथ–साथ स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। नगरीय जीवन को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यासों में विशेष रूप से स्थानीय भाषा के शब्दों को सम्मिलित किया गया है। लेखकों ने प्रसंगानुसार शब्दों के प्रयोग पर बल दिया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों 'वैशाली की नगरवधू' एवं 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में लेखकों ने संस्कृतयुक्त शब्दावली के साथ–साथ स्थानीय शब्दों को स्थान दिया है। 'वैशाली की नगरवधू' में लेखक ने संस्कृतयुक्त शब्दों का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया है। जैसा कि– 'स्वर्ण कान्ति', 'तोरण', 'प्रभावोत्पादक', 'आम्रकानन', 'स्वर्णघंटिकाओं', 'प्रांगण', 'शुभ्रकौशेय', 'दर्प', 'अधिष्ठात्री', 'उद्ग्रीव', 'स्त्रैण', 'अवलम्बित', 'पुष्पगुच्छ', 'अर्धमूर्च्छित', 'विरक्ति' एवं 'अप्यायित' आदि। उपन्यास में ऐतिहासिक वर्णन के अन्तर्गत लेखक द्वारा क्लिष्ट एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। जैसा कि–

''अम्बपाली ने शुभ्रकौशेय धारण किया था। उसके जूड़ाग्रथित केशकुन्तल ताजे फूलों से गूंथे गए थे। ऊपरी वक्ष खुला हुआ था। देहयष्टि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखण्ड टुकड़े से यत्नपूर्वक खोदकर गढ़ी थी।.....कटिप्रदेश की हीरे–जड़ी करघनी उसकी क्षीण कटि को पुष्ट नितम्बों से विभाजित–सी कर रही थी।''[22]

इस प्रकार उपन्यास के अन्तर्गत क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से भाषा कहीं–कहीं दुरूह हो गई है। 'सुहाग के नूपुर' 1960 ई0 'अमृतलाल नागर' द्वारा रचित दक्षिण भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर रचा गया है। इस कारण उपन्यास में लेखक द्वारा दक्षिण भारत की संस्कृति को सजीव बनाने हेतु दक्षिण भारतीय शब्दों का प्रयोग कोष्ठक में उनके अर्थ देकर किया गया है। जैसे– कलन्जु (सिक्के), बैत्तिले (पान), पुएल्ला (प्रियतमा), मोदक (सार्थवाह), कासु (पैसा), उघु (नमक), पन्दल (ताड़ की पत्तियों से बनी चटाइयों का मण्डप) आदि शब्द

उपन्यास में आए हुए हैं। नागर जी की भाषा को बहुरंगी बनाने का श्रेय उनके विपुल शब्द भंडार को जाता है। यद्यपि अपने उपन्यासों में उन्होंने सहज सरल भाषा का प्रयोग किया है किन्तु जहाँ उन्होंने गंभीर चिंतन किया है वहाँ उनकी भाषा संस्कृत तत्सम शब्दावलियों से युक्त हो गई है। उपन्यास के अन्तर्गत बहुत सी संस्कृत युक्त तत्सम शब्दावली का प्रयोग मिलता है। जैसे– 'नृत्याचार्य', 'नृत्योत्सव', 'आशीर्वचन', 'शुभ्र', 'क्षमा', प्रकोष्ठ, स्तब्ध, मुखाचार, अलंकृत, समालोचन, न्यायाचित, हर्षातिरेक, निर्लज्ज, विलासवृत्ति, रूपगर्विता, हतयौवना, प्रदक्षिणा, पोष्यपुत्री, तर्जनी, निर्विकार, लिप्सा, निष्क्रिय, नैमित्तिक, असंस्कृत, प्रणयपात्री आदि। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नागर की भाषा शैली और संवादों ने उपन्यास की सौन्दर्य सार्थकता में निश्चित योग दिया है। उसकी अपनी वातावरण–विधायिनी विपुल शब्दराशि कथा की गति त्वरा को सुरक्षित, अतीत को अंकित एवं अभीष्ट को संप्रेषित करने में समर्थ रही है।

सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों के अन्तर्गत 'मुरदाघर' में लेखक ने मुम्बईया भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जैसा कि– नौटाक (शराब का नाप), डुक्कर (सूअर), धाड़ (छापा), तड़ीपार (नगर–निकाला), मेंडी (दस) सुतार (बढ़ई), भरती (समुद्र में ज्वार), भांडी (बरतन), तपकीर (नसवार, सुँघनी), फाटा (पटरा), कड़िया (मिस्त्री), पाटी (टोकरी), लेंगा (लहँगा–पाजामा), गोनी (बोरी), दानचोरी (तस्करी), विहीर (कुआँ), लोखंड (लोहा), आधा कलाक (आधा घंटा), मोटा (बड़ा), काँदा (प्याज), टाका आँत (डालो अंदर), छोटा साहब (सब इंस्पेक्टर), दरिया (सागर) आदि।

इसी प्रकार 'सलाम आखिरी' के अन्तर्गत बंगला मिश्रित हिन्दी एवं अंग्रेजी के शब्दों की बहुलता है क्योंकि उपन्यास की प्रमुख पात्र सुकीर्ति रिपोर्टर है। साथ ही वह शिक्षित एवं सभ्य भी है। इस कारण उपन्यास में आधुनिक जीवन से संबंद्ध अंग्रेजी के शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे– 'प्रोस्टीच्यूट', 'ऑलवेज', 'विजिटर', 'डाइरेक्ट', 'एक्शन', 'ट्यूशन', 'टायर्ड–रिटायर्ड', 'वेरायटी', 'मैनेजर', 'शॉर्टकट', 'लॉइन ऑफ डिफेंस' आदि। इसके अतिरिक्त बंगला शब्दों का

भी प्रयोग उपन्यास में देखने को मिलता है। जैसे– 'तुलबेन', 'छापबेन', 'आमार', 'एक्खोन', 'आपनि', 'भालो', 'बोलून', 'पारबो' आदि। इसी प्रकार जैनेन्द्र के 'दशार्क' की वेश्या पात्र रंजना शिक्षित है। अन्य उपन्यासों की वेश्या पात्रों से उसकी स्थिति भिन्न है। वह अपने ग्राहकों से अत्यन्त विनम्रता के साथ बात करती है। इसके अतिरिक्त उपन्यास के अन्य पात्र भी शिक्षित है। इस कारण दशार्क में मिली–जुली भाषा के साथ–साथ अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग हमें मिलता है। रेवन्यू, लेक्चरर, फर्स्ट, रिकार्ड, यूनिवर्सिटी, मेमसाहब, सोशल सर्विस, सेक्रेटरी, प्राइवेट, डायरेक्ट्री, इंटेलिजेंस, ट्रेडिंग, सेक्स अफेयर्स, प्रोस्टीट्यूशन, पैम्फलेट आदि शब्द उपन्यास में आए हैं। इसी तरह 'आज बाजार बंद है' में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बहुतायत में देखने को मिलता है। जैसा कि– ट्रांसफर, पोस्टिंग, इंस्पेक्टर, प्वाइंट, रिपोर्टर, फोटोग्राफ्स, हाउसफुल आदि। यह उपन्यास मूलतः दलित वेश्याओं को आधार बनाकर लिखा गया है इस कारण उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने अपशब्दों एवं असंस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया है। जैसे–स्साली, रंडी, हरामी, भड़ुवे, लोंडिया, हरामजादी आदि ।

इस प्रकार उपन्यासकारों ने विवेच्य उपन्यास के अन्तर्गत हिन्दी, संस्कृत, बंगला, मुम्बईया, उर्दू, अरबी एवं फारसी के शब्दों के द्वारा भाषा को प्रवाहयुक्त एवं समृद्ध बनाने का प्रयास किया है।

## (ग) शैली–

किसी भी रचना में भाषा के साथ–साथ शैली का भी महत्व होता है। शैली शब्द 'अंग्रेजी' के 'style' से बना है, जिसका हिन्दी में अर्थ 'तकनीक' होता है। 'डॉ0 स्नेहलता शर्मा' ने शैली का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि–

'' अंग्रजी में शैली का अर्थ है स्टाइल। इसकी उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'स्टाइलस' अर्थात् लेखनी से हुई है। किसी भी व्यक्ति के अक्षरों की बुनावट को 'स्टाइल' कहा जाता है, अक्षरों की बनावट चूंकि भाव तथा अनुभूति से जुड़ी होती है इसलिए धीरे–धीरे

'स्टाइल' शब्द भावाभिव्यक्ति से जुड़ गया तथा 'स्टाइल' शब्द को व्यक्तित्व का पर्याय माना जाने लगा।''[23]

प्रत्येक लेखक की शैली उनके व्यक्तित्व के अनुसार अलग–अलग होती है। शैली का प्रभाव लेखक की रचना पर भी अवश्य पड़ता है, वह लेखक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं विचारों से परिचित कराती है। 'डॉ0 मैनेजर पाण्डेय' ने अपनी पुस्तक 'साहित्य और इतिहास दृष्टि' में किसी भी रचना के अन्तर्गत शैली के महत्व को निरूपित करते हुए कहा है कि–

'' साहित्यिक कृति में शैली केवल भाषा का एक पक्ष ही नहीं है, उसमें रचनाकार की यथार्थदृष्टि और रचनादृष्टि की भी अभिव्यक्ति होती है। यही नहीं शैली का संबंध रचनाकार के युग और समाज से भी होता है। साहित्यिक आन्दोलनों के परिवर्तन और विकास के प्रभाव शैली में लक्षित होते हैं।''[24]

शैली वह भाषिक वैशिष्ट्य जो लेखक के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्त करती है। हिन्दी उपन्यासों में कथा कहने की अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं। जैसे– संस्मरण शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, जीवनी शैली, पत्र शैली, विश्लेषणात्मक शैली एवं किस्सागोई शैली। कभी–कभी लेखक अपने उपन्यासों में केवल एक ही शैली का प्रयोग करता है किन्तु कभी–कभी वह एक से अधिक शैलियों का प्रयोग करता है। विवेच्य उपन्यास के अन्तर्गत लेखकों ने अलग–अलग शैलियों का प्रयोग किया है। सर्वप्रथम हम वैशाली के नगरवधू की बात करे तो उपन्यास में लेखक ने वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है। वर्णनात्मक शैली को व्याख्यात्मक या इतिवृत्तात्मक शैली भी कहा जाता है। अधिकांश उपन्यासों में लेखकों द्वारा इस शैली का प्रयोग किया गया है। लेखक के वर्णन कौशल ने पाठकों को हर जगह बांधें रखा है। उदाहरणस्वरूप–

''सरोवर के तट पर एक स्वच्छ मरमर की वेदी पर देवी अम्बपाली विषण्णवदना बैठी सान्ध्याकाश में सुदूर एक क्षीण तारे को एकटक देख रही थी। अनेक प्रकार के विचार

उसके मन में उदय हो रहे थे। वह सोच रही थी, अपना भूत और भविष्य। एक द्वन्द उसके भीतर चल रहा था।''[25]

वर्णनात्मक शैली का एक अन्य उदाहरण शैलेष मटियानी के 'दो बूँद जल' में देखा जा सकता है। उपन्यास में लेखक ने अपनी वर्णनात्मक शैली के माध्यम से रेशमा के मनोभावों का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया है। जैसा कि–

''रेशमा महसूस करती है कि कुतुब रोड जैसी किसी तरह किसी जगह में वह वेश्या और माँ, अपने इन दोनों रूपों में जी सकती थी। मगर कुतुब रोड और नोखेलाल की झोपड़ी से बाहर के समाज में वह सिर्फ एक वेश्या की तरह ही जी सकती है, माँ की तरह नहीं।''[26]

मोहनदास नैमिशराय के उपन्यास 'आज बाजार बंद है' में भी लेखक द्वारा वेश्याओं की पीड़ा की अभिव्यक्ति हेतु वर्णनात्मक शैली का सुंदर प्रयोग हुआ है। जैसा कि–

''पश्चिम में ढलता हुआ सूरज कहता। सज संवर कर तैयार हो। ग्राहक भटकने, फिसलने के लिए आने लगे हैं और शाम होते ही वे छज्जे पर आकर बैठ जातीं। कभी घण्टों–घण्टों लोगों के चेहरों को पढ़ातीं। ग्राहकों के हाव–भाव और व्यवहार से उन्हें पहचानने का प्रयास करतीं। उनके भीतर कुछ तलाश करतीं। वे जोहरी न थीं, वेश्या थीं।''[27]

इसी तरह सलाम आखिरी में लेखिका ने वेश्याओं की यातनापूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति के लिए वर्णनात्मक शैली का प्रयोग अत्यन्त उत्कृष्टता के साथ किया है। जैसा कि–

''यह वेश्याओं की एक रहस्यमय दुनिया है। शताब्दियों का बोझ ढोती हुई। देह के मंदिरों और देह के पुजारियों की यह वह दुनिया है जो वितृष्णा में लिपटी एक अजीब सा सम्मोहन जगाती है। यहाँ जिंदगी का शोर–शराबा है, हर गली के हर कमरे का

अलग–अलग इतिहास.....जहाँ हर रात देह ही नहीं उघड़ती है वरन् आत्माओं का भी चीर–हरण होता रहता है।''[28]

विवेच्य उपन्यासों के अन्तर्गत लेखकों ने फ्लैश बैक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली के द्वारा उपन्यास वर्तमान कथासूत्र को किसी विगत घटना सूत्र से अकस्मात् प्रासंगिक रूप से जोड़ देता है। जिससे कथानक में गतिशलीता आ जाती है। 'आज बाजार बंद है' में लेखक ने पार्वती के वेश्या बनने की त्रासदी की अभिव्यक्ति में फ्लैश बैक पद्धति का प्रयोग किया है। वह रह–रह कर अपने पिछले जीवन को याद करती है जिसमें गाँव के उच्च वर्ण के लोगों द्वारा उसे देवदासी बनने के लिए बाध्य किया जाता है। लेखक ने पार्वती की इस व्यथा को फ्लैश बैक शैली के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है–

''हमें पहले देवदासी बनाया, फिर वेश्या। एक ही जाति की कुआंरी लड़कियों को देवदासी क्यों बनाया जाता है? उसने कई बार जाकर यह सवाल पूछा था। एक व्यक्ति को सजा या उसके परिवार को या फिर उसकी जाति को या उसकी जाति की एक पीढ़ी को।.....जवाब दो, तुम आखिर जवाब क्यों नहीं देते? वह अतीत के सुःखद और दुःखद चित्रों में उलझी थी। और भगवान से सवाल–जवाब कर रही थी।''[29]

इसी प्रकार सलाम आखिरी के अन्तर्गत वेश्याओं की मालकिन मीना के वेश्या बनने की करूण दास्तान को लेखिका फ्लैश बैक शैली के माध्यम से अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है। सुकीर्ति जब वेश्याओं का इंटरव्यू लेने जाती है तब मीना अतीत को याद करते हुए कहती है कि–

''सबको रोते–बिखलते छोड़ मैं उस जनानी के साथ कलकत्ता चली आई। अपने वादे के मुताबिक उस जनानी ने मुझे काम दिलवा दिया।.....उस आदमी ने मुझे अपने साथ उसके कमरे में आने के लिए कहा। मैंने सोचा कि शायद मुझसे कोई भूल हो गई है। मैं पीछे–पीछे उसके साथ उसके कमरे में चली आई। मेरे भीतर घुसते ही उस हरामजादे ने

दरवाजा भीतर से बंद कर लिया तो मैं डरी कि कहीं मुझे पीट न दे फिर भी मैं नहीं समझी कि यह बुलावा मेरी बर्बादी का बुलावा था।''[30]

उपन्यास के अन्तर्गत लेखिका ने फ्लैश बैक शैली के साथ–साथ संस्मरण शैली का भी प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उपन्यासकरों ने विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग उपन्यास को उत्कृष्ट बनाने के लिए किया है।

## (घ) वाक्य विन्यास–

भाषा में प्रत्येक वाक्य बाह्य तथा आंतरिक संरचना के संयोग बनता है। वाक्य में शब्द तथा पदों का क्रम आदि वाक्य की बाह्य संरचना है जबकि अभिव्यंजना एवं अर्थ उसकी आंतरिक संरचना है। उपन्यासकार समाज के यथार्थ को भोगकर उसे अपने अनुभवों के माध्यम से अपनी रचना में अभिव्यक्त करता है। इस कारण सामाजिक यथार्थ एवं मानव मन की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए नवीन वाक्य संरचना का आश्रय लेना पड़ता है। आधुनिक उपन्यासों में कुछ स्थलों को छोड़कर, बड़े एवं जटिल वाक्यों के स्थान पर सरल तथा लघु वाक्यों का प्रचलन, और वाक्य में पदों का क्रम परिवर्तन अधिक बढ़ रहा है। इसके पीछे शायद प्रमुख कारण यह है कि लेखक पाठकों को लंबे–लंबे वाक्यों द्वारा उलझाना नहीं चाहते हैं। विवेच्य उपन्यासों में लेखकों ने ऐसे ही प्रयोग किए हैं। उन्होंने वाक्यों में पदो ंके क्रम में परिवर्तन किया है। 'मुरदाघर' में लेखक ने उपन्यास के मूल मन्तव्य एवं पात्रों के आक्रोश व स्थिति की भयानकता को अभिव्यक्त करने हेतु लेखक ने वाक्य में क्रिया–पद का प्रयोग पहले किया है। जैसा कि–

''चुप रहेगी मैना भी। कुछ बोलेगी.....तो फिर से टपकने लगेंगे आंसू.....टप् टप् टप्। शुरू हो जाएंगी सिसकियां। इसलिए जरूरी है.....वक्त का गुज़र जाना।''[31]

'डॉ0 ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' ने 'मुरदाघर' के वाक्य विन्यास की विशेषता बताते हुए कहा है कि वाक्य संरचना में क्रिया को पहले नम्बर पर रखकर एक 'पैटर्न' बनाया गया है जिसका निर्वाह अन्त तक हुआ है। शब्दों की मितव्ययता अधूरे वाक्य, रिक्त स्थान आदि गति को अनुप्राणित रखते हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास के अन्तर्गत लेखक ने वाक्यों की लयबद्धता का प्रयोग कर सम्पूर्ण स्थिति की जटिलता एवं भयावहता को अत्यन्त विशिष्टता के साथ प्रस्तुत किया है–

''कचरे का पुराना ढेर और एक पागल आदमी घूम–घाम कर ढूंढता रहता है कुछ.....कभी नहीं मिलता।''

''.....एक पागल और एक पागल दुनियां.....चीख रहे हैं दोनों।''[32]

मुरदाघर के समान 'सलाम आखिरी' में मधु कांकरिया ने छोटे–छोटे एवं सरल वाक्यों का अधिक प्रयोग किया है। विवेच्य उपन्यास के अन्तर्गत वाक्यों के क्रम में परिवर्तन भी किया है। जैसा कि–

''तो जाहिर है कौन जाता है वेश्याओं के पास, आज के परिदृश्य में। वे ही जो क्षणिक देह–पीड़ा से पीड़ित हैं। जिन्हें अपने स्नायुतंत्र के कसाव और तड़कती नसों के खिंचाव को सम पर लाने के लिए 'कुछ' चाहिए।''[33]

जैनेन्द्र के उपन्यास 'दशार्क' की वाक्य संरचना में अटपटापन मौजूद है जो जटिल परिवेश एवं पात्रों के आपसी द्वन्द को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरणस्वरूप–

''पति आए, दो मिनट राह देखी फिर बटन दबाने पर सेवक आया तो पूछा,

''मेम साहब कहाँ हैं?''

''पढ़ रही हैं।''

''...क्या बजा है?''

''...उन्हें कहा जाए?''

''नहीं.....जाने दो''

सेवक गया नहीं, खड़ा ही रहा। पर साहब ने आदेश नहीं दिया जिसकी उसे आशा थी।

''चाय आए?''

''...तुम जाओ''

'चाय लाए' की जगह 'चाय आए' जैसा प्रयोग जैनेन्द्र ही कर सकते हैं। जैनेन्द्र हिन्दी के पहले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने अपने कथा–साहित्य में मौन भाषा का प्रयोग किया है। 'दशार्क' के अन्तर्गत लेखक ने इसी मौन का प्रयोग पति–पत्नी के बीच के तनाव की अभिव्यक्ति हेतु किया है। वाक्यों के बीच का मौन पात्रों की तनावपूर्ण मनःस्थिति की जटिलता को व्यक्त करने का सहज माध्यम है। जैसा कि–

''नहीं पिओगे चाय? अब पाँच बज गया है। कहती हूँ माफ करो और बस एक मिनट लगेगाा।''

पति ने उस पर से अपनी दृष्टि नहीं हटाई और चुप रहे।

''जाऊँ?''

चुप।

''माफ नहीं करोगे?''

चुप।

इसके हाथ का एक झटका और ''चाय की प्लेट जोर के झटके से झन्न दूर जाकर पड़ी।''[34]

इस प्रकार चुप्पी एवं झनझनाहट के बीच का अंतराल उनके रिश्तों की असलियत को बिना कुछ कहे अभिव्यक्त कर देता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि उपन्यासकारों ने सरल एवं सहज भाषा में वेश्या जीवन एवं समाज की सच्चाईयों को सामने रखा है। उन्होंने भाषा को अलंकृत एवं चमत्कारयुक्त बनाने के बजाय स्पष्ट रूप से अपनी बात कही है और उसमें वे सफल भी हुए हैं। वेश्या जीवन की बुराईयों का चित्रण करते समय उनकी भाषा में एक प्रकार का आक्रोश देखने को मिलता है। यह आक्रोश उस निष्कृष्ट व्यवस्था के प्रति है जिसने उनको यातनापूर्ण जीवन जीने के लिए मजबूर किया है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची–


1. डॉ0 सुदेश बत्रा, अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2003, पृ0 293।

2. वही, पृ0 293।

3. 'कहानी स्वरूप और संवेदना', 'राजेन्द्र यादव', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण 2007, पृ0 सं0 109।

4. फाउलर, रोजर, लिंग्विस्टिक्स एंड द नावेल, मेथ्यून एण्ड कंपनी लिमिटेड, लंदन, 1977, पृ0 3।

5. डॉ0 भगवतीशरण मिश्र, हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010 पृ0 64।

6. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2016, पृ0 20।

7. वही, पृ0 24।

8. डॉ0 नागेश राम त्रिपाठी, अमृतलाल नागर के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर, प्रथम संस्करण, 1993, पृ0 234।

9. वही, पृ0 238।

10. डॉ0 रामविनोद सिंह, आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास, अनुपम प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 1980, पेज 40।

11. वही, पृ0 40।

12. डॉ0 निर्मलकुमार वार्ष्णेय, प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में प्रगतिशीलता, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1982, पृ0 59–60।

13. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति, पृ0 345।

14. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, पृ0 सं0 2011, पृ0सं0 34।

15. मधु काँकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0 24।

16. वही, पृ0 89।

17. वही, पृ0 23।

18. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृ0 51।

19. वही, पृ0 140।

20. लक्ष्मीनारायण लाल, बड़ी चम्पा छोटी चम्पा, पीताम्बर बुक डिपो, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1973, पृ0 19।

21. जैनेन्द्र, दशार्क, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0 20।

22. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2016, पृ0 13।

23. 'आत्मकथाकार बच्चनः काव्यात्मक मूल्यांकन', 'डॉ स्नेहलता शर्मा', आर्य बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986, पृ0 सं0 151।

24. 'साहित्य और इतिहास दृष्टि', 'डॉ0 मैनेजर पाण्डेय', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2005, पृ0 सं0 67।

25. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2016, पृ0 18।

26. शैलेष मटियानी, दो बूँद जल, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2010, पृ0 141।

27. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृ0 42।

28. मधु काँकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0 13।

29. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृ0 93–94।

30. मधु काँकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0 34–35।

31. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मुरदाघर, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, पृ0 सं0 2011, पृ0सं0 34।

32. वही, पृ0 7।

33. मधु काँकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ0 59।

34. जैनेन्द्र, दशार्क, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0 9।

# वेश्यावृत्ति की समस्या, समाधान एवं साहित्य की भूमिका

वेश्यावृत्ति की समस्या केवल भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में व्याप्त है। यह एक ऐसा असाध्य रोग है जो जब तक समाज में रहेगा उसे लगातार क्षीण करता रहेगा। इस व्यवसाय के अन्तर्गत यौन संबंधों को जो स्त्री पुरूष के प्रेम की चरम परिणति की आधारशिला है और जिस पर विवाह एवं परिवार संस्था टिकी हुई है, वह पैसे एवं व्यवसायिक वृत्ति पर आधारित हो जाती है जो किसी भी समाज के लिए अत्यन्त हानिकारक है। वर्तमान समय में कुछ ही देशों जैसे 'इथोपिया', 'मकाऊ', 'साइप्रस', 'बेल्जियम', 'जापान' में सार्वजनिक स्थानों को छोड़कर वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता प्राप्त है जबकि 'केन्या', 'अल्जीरिया', 'सूडान', 'घाना', 'नार्वे', 'फिजी', 'ईरान', 'इराक', 'सर्बिया', 'गुआना' आदि देशों में वेश्यावृत्ति पूर्णतया गैर कानूनी है। भले ही किसी भी देश में वेश्यावृत्ति कानूनी हो या गैरकानूनी लेकिन वहाँ दो चीजें विशेष रूप से उपस्थित होगीं उनमें से पहला है वेश्या और दूसरा है ग्राहक। इन दोनों में एक भी जहाँ कहीं उपलब्ध होगा वहाँ देह व्यवसाय का फलना–फूलना निश्चित है। धीरे–धीरे सभी देश इस पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश कर रहे हैं। भारत में भी देह व्यापार को पूर्ण रूप से कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं है। यहाँ भी वैवाहिक संबंधों से इतर यौन संबंधों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है लेकिन इसके बावजूद यह समस्या भारतीय समाज में अत्यन्त प्राचीन काल विद्यमान है। 'वेदों', 'वात्सयायन' के 'कामसूत्र' एवं 'कौटिल्य' के 'अर्थशास्त्र' में इनका उल्लेख विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार वेश्यावृत्ति का एक लम्बा भारतीय इतिहास भी उपस्थित है।

वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति एवं वेश्याओं की प्रासंगिकता को लेकर समाज में यह प्रश्न लगातार उठते रहे हैं कि क्या समाज में इसका होना आवश्यक है अथवा अनावश्यक? प्रायः वेश्यावृत्ति को बनाए रखने के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि इससे

समाज में यौन अपराधों पर पाबंदी लगाई जा सकती है। साथ ही इसके पक्ष में यह भी प्रबल धारणा देखने को मिलती है कि बच्चियों से यौन संबंध स्थापित करने पर एड्स की संभावना कम रहती है और उनके साथ संभोग से इसका इलाज संभव है। इसी कारण कम उम्र की लड़कियों की तस्करी काफी बढ़ गई है। इसके अतिरिक्त पुत्र की चाह भी इस समस्या का प्रमुख कारण है। जिसके फलस्वरूप भारत में बाल लिंगानुपात में गिरावट आई है। यह गिरावट केवल भारत में ही नहीं बल्कि अन्य देशों में भी आई है। लगातार कम हो रहे अनुपात के कारण ही लड़कियों एवं बच्चियों की तस्करी एवं व्यापार में काफी वृद्धि हुई है। यहाँ तक कि भारत में भी दक्षिण एवं उत्तर–पूर्व से लड़कियों को बलपूर्वक उत्तर की ओर लाया जा रहा है। भारत के 'हरियाणा' राज्य के 'मेवात' इलाके में सीमा पार से तस्करी करके लाई गई लड़कियों को 'पारो' कहा जाता है।[1] 'गुड़गाँव' के समीप स्थित 'मेवात' क्षेत्र के तीन प्रमुख समुदाय 'जाट', 'अहीर' और 'मेव' में 'पारो' का काफी प्रचलन है। कभी–कभी धोखे से या बलपूर्वक और कभी माता पिता की सहमति से लड़कियों को क्रय कर देश के अंदर अन्य राज्यों या देश के बाहर बेंच दिया जाता है। चीन में लड़कियों की संख्या कम होने के कारण 'कोरिया' से उनकी आपूर्ति की जा रही है। अतः किसी ऐसे व्यवसाय को बनाए रखने की क्या आवश्यकता है जब उसमें किसी एक पक्ष की इच्छा ही शामिल न हो और मजबूरीवश उसे ऐसे अमानवीय पेशे को अपनाना पड़ रहा हो। ये ऐसे प्रश्न हैं जो बार–बार हमारे समक्ष उठते हैं। अनेक बार इन प्रश्नों का हल ढूँढने का प्रयास सरकार एवं न्यायालय द्वारा किया गया है किन्तु समस्या अभी भी अपनी जगह विद्यमान है।

भारत में सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर इस समस्या के समाधान हेतु अनेक प्रयास हुए हैं जिससे इसके दुष्परिणामों को रोका जा सके और वेश्याओं को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार दिया जा सके। भारत में वेश्यावृत्ति उन्मूलन हेतु जो प्रयास एवं कानून बनाए गए हैं उनका वर्णन इस प्रकार है–

## (क) वेश्यावृत्ति के समाधान हेतु किए गए सरकारी प्रयास–

विश्व में वेश्यावृत्ति अत्यन्त प्राचीन काल से विद्यमान है। वेश्यावृत्ति के कारण न सिर्फ इस व्यवसाय को बढ़ावा मिल रहा है बल्कि इससे मानव तरस्करी, अपहरण, धोखाधड़ी, शोषण और हत्या जैसी अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही है। 'यूनिसेफ' के आंकड़ों के अनुसार पूरे विश्व में करीब दस लाख बच्चे देह व्यवसाय में शामिल होते हैं और पिछले तीस सालों में लगभग तीस लाख बच्चों को इस व्यवसाय में ढकेला जा चुका है।[2] वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने के लिए मानव तस्करी बहुत बढ़ गई है। लाखों की संख्या में महिलाओं एवं बच्चों की तरस्करी कर उन्हें एक देश से दूसरे देश की सीमाओं में भेजा जाता है। 'यूनाइटेड स्टेट' के 'स्टेट्स विभाग' के आंकड़ों के अनुसार प्रत्येक वर्ष साठ से अस्सी लाख महिलाएँ और बच्चे मानव व्यापार के इस खेल में शामिल हो रहे हैं। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार जिन ग्यारह देशों में मानव तरस्करी सबसे ज्यादा हो रही है उनमें 'बेलारूस', 'रिपब्लिक ऑफ मॉलदोवा', 'युक्रेन', 'अल्बेनिया', 'बुल्गारिया', 'लिथुआनिया', 'रोमानिया', 'चीन', 'थाईलैण्ड' और 'नाइजीरिया' आदि प्रमुख देश हैं। मानव तरस्करी के बाद जिन देशों में लोगों को सबसे ज्यादा पहुँचाया जाता है उनमें 'जर्मनी', 'ग्रीस', 'जापान', 'नीदरलैण्ड', 'थाईलैण्ड', 'अमेरिका' एवं 'टर्की' आदि प्रमुख देश हैं।[3] 'फिलीपींस' ऐसा देश है जिसकी अर्थव्यवस्था में चौथा बड़ा योगदान देह व्यवसाय का ही माना जाता है। इस कारण 'फिलीपींस' स्वयं को सेक्स पर्यटन के तौर पर विकसित कर रहा है जहाँ जापान से प्रतिवर्ष लगभग तीस हजार की संख्या में लोग पहुँचते हैं।[4] इसके अतिरिक्त कई देशों में कुछ ऐसी जगहें हैं जो देह व्यवसाय के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और लोग इन जगहों पर देह व्यवसाय का आनंद उठाने जाते हैं। इनमें 'बैंकॉक' का 'पैटपोंग', 'मुम्बई' का 'कमाठीपुरा', 'कलकत्ता' का 'सोनागाछी' एवं 'टोक्यो' का 'काबुकिचो' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

देह व्यवसाय एवं मानव तरस्करी ऐसे व्यवसाय हैं जो अन्य व्यवसाय के मुकाबले ज्यादा मुनाफा देते हैं। इस कारण सरकार भी इस पर पूर्णतया प्रतिबंध लगाने से हिचकती है। 'लुइज ब्राउन' ने सरकारी प्रयासों की सच्चाई अभिव्यक्त करते हुए सही कहा है–

''वेश्या बस्तियों की अपनी आचार संहिताएँ हैं और अपनी नैतिकता है, जिन जगहों पर सेक्स उद्योग खासतौर से लाभकारी और व्यापक है, वहाँ सरकार का कानून चलता नहीं क्योंकि सरकार की सत्ता सेक्स उद्योग के वित्त या संगठन का मुकाबला नहीं कर सकती।''[5]

यह सच्चाई समस्त विश्व में व्याप्त देह व्यवसाय की है। एक शोध की रिपोर्ट के अनुसार उत्तरी अमेरिका में किसी लड़की को देह व्यवसाय हेतु सोलह हजार डॉलर में खरीद लिया जाता है जो प्रतिदिन चालीस हजार डॉलर की कमाई करके देती है।[6] इससे यह अंदाजा स्वयं लगाया जा सकता है कि इस व्यवसाय में अन्य व्यवसाय के मुकाबले कितना लाभ मिलता है। लेकिन लाभ कमाने की धुन में कोई यह नहीं जानता कि मुनाफे के इस खेल में सबसे ज्यादा नुक्सान किसको हो रहा है? कमाई का आसान जरिया होने के कारण यह व्यवसाय लगातार बढ़ रहा है। इस कारण लड़कियों की तरस्करी में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है। भारत में भी वेश्यावृत्ति के विस्तार के कारण लड़कियों की तरस्करी अत्यधिक तेजी से बढ़ रही है। जिसके कारण देश में लाखों की संख्या में स्त्रियों का अपहरण एवं तरस्करी की जाती है। भारत के 'झारखंड', 'केरल', 'आन्ध्र प्रदेश', 'महाराष्ट्र' तथा 'पश्चिम बंगाल' में मानव तरस्करी के अनेक मामले प्रकाश में आए हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि 'भारतीय रिकार्ड बुक' से पिछली एक शताब्दी में पाँच करोड़ महिलाओं के विषय में कोई जानकारी नहीं हैं।[7] नोबेल पुरस्कार विजेता 'कैलाश सत्यार्थी' ने भी इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि भारत में लगातार बच्चों के गुम होने की घटनाएँ बढ़ रही है। मानवाधिकार आयोग ने भी गुमशुदा बच्चों को लेकर एक रिपोर्ट पेश की है जिसमें यह बताया गया है कि भारत में हर साल तकरीबन 45 हजार बच्चे गायब होते हैं जिनमें से 11 हजार बच्चों के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

इसके अतिरिक्त आधे बचे हुए बच्चों को देह व्यापार में ढकेल दिया जाता है। 'सुप्रीम कोर्ट' ने भी इस बात का संकेत करते हुए कहा है कि भारत इस समय बाल वेश्यावृत्ति के लिए एशिया की एक बड़ी मंडी के रूप में उभरकर सामने आ रहा है।[8] भारत की 'राष्ट्रीय महिला आयोग' ने भारत में मानव तरस्करी के जो आंकड़े पेश किए हैं उनके मुताबिक देश भर के 378 जिलों के करीब 1794 स्थानों में लड़कियों की तरस्करी की जाती हैं ताकि उन्हें देह व्यवसाय में ढकेला जा सके। इस रिपोर्ट के मुताबिक देश में कुल महिलाओं की कुल जनसंख्या में 15 से 34 वर्ष की 24 प्रतिशत महिलाएँ देह व्यवसाय में संलिप्त हैं। इन व्यवसाय में संलिप्त कुल 28 लाख महिलाओं में से 43 प्रतिशत की उम्र 18 वर्ष से कम है।[9] इनमें से अधिकांश लड़कियाँ शादी या नौकरी के लालच में दलाल के चंगुल में फँसकर मानव तरस्करी का शिकार हुई हैं। तस्करी करके लाई गई लड़कियों के साथ अत्यन्त अमानवीय व्यवहार किया जाता है। उन्हें देह व्यवसाय अपनाने के लिए तरह–तरह की शारीरिक यातनाएँ दी जाती हैं जैसे भूखा रखा जाता है, उनके साथ मार–पीट की जाती है, जबरन मादक पदार्थ एवं शराब का सेवन कराया जाता है और यहाँ तक कि सामूहिक बालात्कार भी किया जाता है ताकि वे इस व्यवसाय को अपना सके। लगातार दी जाने वाली इन यातनाओं के बाद अंत में वह हिम्मत हार जाती हैं और इस पेशे को अपनाने के लिए मजबूर हो जाती हैं। जबरन इस पेशे में ढकेली गई लड़कियों की मदद न तो पुलिस स्वयं करती है और न ही लड़कियाँ इनके पास सहायता के लिए जाती हैं। उनको यह ज्ञात है कि पुलिस भी उनके साथ वहीं व्यवहार करेगी जो ग्राहक उनके साथ करते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें जेल में कैद हो जाने का भी अंदेशा रहता है इसलिए वह स्वयं भी उनके पास नहीं जाती हैं। यही हाल विदेशों में ले जाई गई लड़कियों का भी होता है। अत्यधिक शिक्षित न होने के कारण उन्हें न तो वहाँ के भाषा की समझ होती है और न ही वहाँ के कानून की जानकारी होती है। इसके अतिरिक्त वैध वीजा न होने के कारण उन्हें अपराधी घोषित किए जाने का भी डर रहता है।

तस्करी की शिकार लड़कियों में अधिकतर बहुत ही कम उम्र की होती हैं। भारत जैसे देशों में देह व्यापार की आयु 16 वर्ष है लेकिन तस्करी करके लाए जाने वाली लड़कियों की वास्तविक उम्र 16 से कम वर्ष की ही होती है।[10] इसका प्रमुख कारण यह है कि कोठों एवं ग्राहकों के बीच कुँवारी एवं कम उम्र की लड़कियों की मांग सर्वाधिक होती है। 'लुइज ब्राउन' के अनुसार–

''वेश्यालय कम उम्र लड़कियाँ और औरतें खरीदने की जगह हैं। यद्यपि कुछ सुंदर और माहिर औरतें तीस की उम्र तक वेश्यालयों में धंधा जारी रख लेती हैं लेकिन अधिकतर वेश्यालय जवानी पर ही जोर देते हैं, सस्ती जवानी पर।''[11]

ग्राहक कुँवारी लड़कियों के अधिक पैसे अदा करते हैं इसलिए अक्सर ऐसा भी होता है कि एक ही लड़की को कई ग्राहकों के पास भेजा जाता है जिससे वह कई यौन संक्रमित बीमारियों से ग्रस्त हो जाती हैं और उनकी औसत आयु मात्र तीस वर्ष की रह जाती है। कुँवारी लड़कियों की तस्करी एवं देह व्यवसाय को अपनाने का प्रमुख कारण कुछ स्थानों में प्रचलित अंधविश्वास भी प्रमुख भूमिका निभाते हैं। जैसे 'नेपाल' के पहाड़ी इलाकों में यह मान्यता है कि यदि कोई कुँवारी लड़की एड्स या किसी यौन संक्रमित बीमारी से ग्रसित व्यक्ति से संसर्ग करती है तो उस व्यक्ति की बीमारी दूर हो जाती है। इस प्रकार एक लड़की को वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए हर तरीके से मजबूर किया जाता है। अंततः अनेक अत्याचार सहने के पश्चात् उसे यह व्यवसाय अपनाने के लिए मजबूर होना ही पड़ता है। मजबूरीवश अपनाए गए इस पेशे के कष्ट एवं दुख से उबरने के लिए वेश्याएँ नशाखोरी का सहारा लेने लगती हैं। जो उनके स्वास्थ्य के लिए तो हानिकर होता है किन्तु इनके व्यवसाय के लिए अत्यन्त लाभप्रद होता है। कई बार वेश्यालय की मालकिन भी उनको नशा करने के लिए प्रेरित करती है जिससे वह सही ढंग से ग्राहक की सेवा कर सके एवं उनको खुश कर सके। क्योंकि नई लड़कियों को इस पेशे को अपनाने में समय लगता है और वह इसके लिए तैयार भी नहीं होती हैं। अतः उन्हें जबरन नशा करने के लिए मजबूर किया जाता है।

वेश्यावृत्ति के कारण जहाँ एक ओर समाज में अनेक प्रकार की बुराईयाँ एवं अपराध में लगातार वृद्धि हो रही है वहीं दूसरी ओर इस पेशे में लिप्त स्त्रियों की दशा भी अत्यन्त शोचनीय हैं। इस बुराई को समाप्त करने हेतु सरकार द्वारा अनेक कानून बनाए गए हैं जो परोक्ष रूप से नहीं किन्तु अपरोक्ष रूप से वेश्यावृत्ति पर प्रतिबंध लगाते हैं। वेश्यावृत्ति एवं लड़कियों की तरस्करी पर रोक लगाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई संधियाँ एवं प्रस्ताव पारित किए गए हैं। इनमें मानवाधिकारों पर 1948 का सार्वभौमिक घोषणा पत्र में ऐसे कई अनुच्छेद हैं जो दासता एवं बुरे व्यवहार का निषेध करता है।[12] इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भी मानव तरस्करी एवं वेश्यावृत्ति पर रोक लगाने के लिए 1949 में एक संधि की गई जो ज्यादा प्रभावी ढंग से कार्य न कर सकी। इसी तरह की एक संधि 'कन्वेंशन ऑन द एलिमिनेशन ऑफ ऑल फार्म्स ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अगेंस्ट वुमेन' अर्थात् 'सीडाव' 1981 में की गई जो महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव एवं बुरे बर्ताव से संरक्षण प्रदान करती है।[13] इस संधि को कई देशों ने अपनाया है और वेश्यावृत्ति एवं मानव तरस्करी पर रोक लगाने का प्रयास किया है। वेश्यावृत्ति एवं महिलाओं के साथ होने वाले दुर्व्यवहार को रोकने के लिए आगे भी कई प्रयास किए गए हैं जिनमें 1995 में 'बीजिंग महिला सम्मेलन' में वेश्यावृत्ति को समाप्त करने का संकल्प लिया गया और इसे स्त्रियों के प्रति गंभीर हिंसा बताया गया। महिलाओं के अतिरिक्त बाल वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई प्रयास और सम्मेलन हुए हैं जिनमें 1996 में 'स्टॉकहोम' में बच्चों के यौन शोषण को लेकर विस्तृत चर्चा हुई थी।[14] इस तरह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी वेश्यावृत्ति को समाप्त करने एवं महिला तरस्करी पर रोक लगाने हेतु अनेक प्रयास किए गए हैं। किन्तु ये प्रयास ज्यादा सफल नहीं हो पाए हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि नियम और संधियों को बनाने के साथ–साथ उसके क्रियान्वयन पर भी बल दिया जाए। जब तक इनका सही ढंग से क्रियान्वयन नहीं होगा तब तक यक समस्याएँ समाज में बनी रहेगी।

भारत में भी न केवल स्वतंत्र भारत में बल्कि परतंत्र भारत में इस संबंध में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा वेश्यावृत्ति के उन्मूलन हेतु कुछ कानून बनाए थे। स्वतंत्र भारत में

केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा बनाए गए अधिनियम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वेश्यावृत्ति की समस्या के समाधान हेतु केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने 24 सितम्बर 1955 को सामाजिक एवं नैतिक स्वास्थ्य विज्ञान समिति की स्थापना की गई जिसका प्रमुख कार्य स्त्रियों एवं बच्चों के अनैतिक व्यापार के संबंध में जांच कर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना था। इस कमेटी के द्वारा अपनी रिपोर्ट सितम्बर 1955 में प्रकाशित की गई। इसी की सिफारिशों को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने 1956 में *'Suppression of immoral traffic in women and girls act, 1956'* पारित किया। इसे 1 मई 1957 से सम्पूर्ण देश में एक साथ लागू किया गया।[15] यह अधिनियम पूरे देश में एक साथ लागू हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत वेश्यालय चलाने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों को 1 से 15 साल तक की कैद तथा 2000रू0 तक का जुर्माना किया जा सकता है। इस अधिनियम में वेश्या एवं वेश्यावृत्ति को परिभाषित किया गया। इसके अनुसार कोई भी स्त्री जो धन या वस्तु के बदले में अवैध यौन–संबंध के लिए अपने शरीर को अर्पण करती है, वह वेश्या है और अपने शरीर को इस प्रकार यौन–संबंध के लिए अर्पण करना 'वेश्यावृत्ति' है।[16] इस अधिनियम के अर्न्तगत 21 वर्ष की कम आयु की सभी स्त्रियों को लड़की माना गया है। जिसके परिणामस्वरूप इस अधिनियम के लागू होते ही अनेक वेश्यालयों पर छापे मारे गए और 21 वर्ष तथा उससे कम की अनेक लड़कियों को छुड़ाया गया और उन्हें सुरक्षा गृहों में भेजा गया। इसके अतिरिक्त किसी वेश्या के अपने लड़की या लड़के को छोड़कर अगर कोई 18 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति पूर्णतः या अंशतः उसकी आय पर निर्भर करता है तो उसे दो वर्ष की सजा या एक हजार रू0 तक के जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इसके साथ–साथ वेश्याओं के साथ रहना, उन पर नियंत्रण करना, किसी कार्य के लिए बाध्य करना या लड़कियों को वेश्यावृत्ति हेतु बाध्य करना या उन्हें किसी एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेश्यावृत्ति हेतु ले जाने पर कैद एवं जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम में वेश्यावृत्ति में लिप्त वेश्याओं के पुनर्वास हेतु उपबंध भी किए गए हैं। उनके सुधार हेतु सुरक्षा गृहों की स्थापना का प्रावधान हैं।[17]

इस प्रकार 'सीटा एक्ट' के तहत स्त्रियों की दशा में सुधार हेतु विभिन्न प्रावधान किए गए हैं किन्तु क्या इन प्रावधानों से वेश्याओं की स्थिति वास्तव में सुधर गई है या और ज्यादा खराब हो गई है? क्योंकि कानून तो बना दिए गए हैं लेकिन इन कानूनों के अनुसार गलती हमेशा महिलाओं की ही होती है। समाज या कानून कभी यह देखने का प्रयास नहीं करता है कि देह बेंचने वालो के साथ–साथ उसको खरीदने वाला भी सजा का भागीदार है इसलिए उसे भी कड़ी सजा मिलनी चाहिए। लेकिन हमारे यहाँ या किसी भी देश ऐसा नहीं होता है। सजा हमेशा वेश्याओं को मिलती है और उपभोग करने वाला हमेशा बचकर निकल जाता है। 'लुइज़ ब्राउन' ने अपनी पुस्तक 'एशिया का सेक्स बाजार' में वेश्यावृत्ति संबंघी कानूनों के सही ढंग से कार्यान्वयन न होने का समर्थन करते हुए कहा है कि–

''वास्तव में, कानून की किताबों में जो लिखा है और कानूनों को जिस तरह लागू किया जाता है उसमें कोई साम्य नहीं है। वेश्यावृत्ति के कानून जब लागू किए जाते हैं तब भी उनका इस तरह विश्लेषण किया जाता है कि औरतों को खलनायिका बनाया जाता है। मर्दों को व्यभिचारिणी औरतों का शिकार बताया जाता है। ग्राहक, वेश्यालयों की मालकिनें और कानून लागू करने के लिए जिम्मेदार माने जाने वाले लोग कानूनों की अकसर अनदेखी करते हैं या उन्हें तोड़ते–मरोड़ते हैं।''[18]

यद्यपि सरकार द्वारा इन्हें लागू तो कर दिया गया है किन्तु सही ढंग से कार्यरूप में परिणत करना अभी भी शेष है। आगे चलकर 1956 के 'वेश्यावृत्ति उन्मूलन विषयक अधिनियम सीटा' को संशोधित किया गया। जिसे 1987 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर लागू किया गया। इस संशोधित अधिनियम के अनुसार किसी भी महिला को जबरन वेश्यावृत्ति कराने पर कैद का प्रावधान किया गया है। बच्चों से वेश्यावृत्ति कराने पर कम से कम 7 साल की सजा का प्रावधान किया गया है। इस संशोधित अधिनियम को 'वेश्यावृत्ति (निरोधक) अधिनियम 1986' नाम दिया गया है। इसे सरकार द्वारा अनुमति अगस्त 1986 में मिली और 26 जनवरी 1987 को इसे पूरे देश में लागू किया गया।[19] इस संशोधित अधिनियम में कुछ परिवर्तन किए गए जो इस प्रकार है– संशोधित

अधिनियम में बच्चों, महिलाओं एवं कम उम्र की लड़कियों के लिए प्रावधान और सख्त कर दिए गए हैं। इसमें वेश्यावृत्ति हेतु सख्त सजा का प्रावधान किया गया है। इस नए अधिनियम में वेश्यावृत्ति एवं देह व्यवसाय की परिभाषा में परिवर्तन किया गया है जिससे युवा, महिलाओं एवं बच्चों के शोषण को रोका जा सके। पहले इस परिभाषा के अन्तर्गत पहली बार पुरूषों को भी शामिल किया गया जबकि इससे पहले सिर्फ महिलाओं एवं एवं बालिकाओं को इसके अन्तर्गत रखा गया था। इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था भी की गई कि छापे के दौरान यदि कोई वेश्या पकड़ी जाती है तो उससे पूछताछ केवल महिला पुलिस अधिकारी द्वारा ही की जाएगी। यदि कोई महिला अधिकारी उपलब्ध न हो तो किसी रजिस्टर्ड कल्याण संस्था की महिला सदस्य की मौजूदगी में कोई पुलिस अधिकारी पूछताछ करेगा। वेश्याओं की तलाशी लेने के दौरान विशेष पुलिस अधिकारी के साथ कम से कम दो महिला पुलिस अधिकारी का जाना अनिवार्य होगा। इसके अतिरिक्त एक विशेष पुलिस अधिकारी के नियुक्ति की व्यवस्था भी की गई जो अंतर्राज्यीय अपराधों की जांच करेगा। इन्हें एक से अधिक राज्यों में जाकर जांच करने का अधिकार होगा। इस प्रकार की व्यवस्था पहले नहीं थी। एक से अधिक राज्यों में होने वाले अपराधों के मामले के तेजी से निबटारे के लिए केन्द्र सकार प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट की कुछ अदालतों का निर्माण करेगी।

संशोधित अधिनियम में विभिन्न आयु समूह की लड़कियों को अलग–अलग श्रेणी में रखा गया। सोलह साल से कम उम्र के बच्चे एवं बच्चियों को एक अलग श्रेणी एवं 16 साल से अधिक उम्र के बच्चों एवं बच्चियों को अलग श्रेणी में रखा गया है। 18 साल से कम उम्र के बच्चे एवं बच्चियाँ नाबालिग की श्रेणी में रखे गए हैं। 21 साल से बड़ी को महिला माना गया है।[20] इस प्रकार अलग–अलग श्रेणियों में विभाजित करके उनकी आयु के अनुसार ही सजा का प्रावधान किया गया है। इस वैधानिक कार्यवाही के साथ–साथ देश में 80 रक्षा गृह और 330 रक्षा शरणालय की स्थापना की गई हैं। उत्तर प्रदेश में तृतीय पंचवर्षीय योजना के तहत पाँच नए रक्षागृह खोले गए हैं। इसके अतिरिक्त देश में वेश्यावृत्ति के निरोध हेतु अनेक संस्थाएँ स्थापित की गई हैं जिनमें

'महिला अनाथालय', वाराणसी, 'स्त्री सदन' चेन्नई, 'श्रद्धानन्द अनाथ महिला आश्रम', मुम्बई, 'खुशालबाग मिशन आर्फेनेज', गोरखपुर, 'दी गुड शेफर्ड होम', चेन्नई, 'दी फ्यूडल होम', बंगाल, 'दी सालवेशन आर्मी होम', बंगाल, 'क्रिस्पिन्स होम', पूना आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[21]

केन्द्र सरकार के अतिरिक्त राज्य द्वारा भी अनेक अधिनियम बनाए गए हैं जिसके माध्यम से वेश्यावृत्ति उन्मूलन हेतु अनेक प्रयास किए गए। 'उत्तर प्रदेश सरकार' ने 'उत्तर प्रदेश नायक कन्या सुरक्षा अधिनियम' पारित किया है जिसमें किसी भी स्त्री को वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य करने पर छः माह का दण्ड या जुर्माना या दोनों दिए जाने का प्रावधान है।[22] इसके अतिरिक्त सन् 1929 में 'उत्तर प्रदेश अल्पव्यस्क कन्या सुरक्षा अधिनियम 1929' पारित किया गया। जिसके अनुसार अल्पव्यस्क कन्याओं को सुदूर क्षेत्रों में बेंचने और जबरन उनसे वेश्यावृत्ति कराने वालो को सजा दिए जाने का प्रावधान इसमें किया गया है।[23]

उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त मुम्बई में भी 1923 में वेश्यावृत्ति निषेध अधिनियम पारित किया गया। इसके अतिरिक्त 1930 में मद्रास में, 1933 में बंगाल में, 1933 में उत्तर प्रदेश में, 1935 में पंजाब में, 1948 में बिहार में तथा 1953 में मध्य प्रदेश में वेश्यावृत्ति उन्मूलन हेतु अनेक अधिनियम पारित किए गए।[24] किन्तु इतने अधिनियम बनाने के बावजूद कोई संतोषजनक परिणाम नहीं आया है। जिसका प्रमुख कारण यह है कि सभी राज्यों में इन अधिनियमों को सही ढंग से लागू नहीं किया गया है और जहाँ लागू भी किया वहाँ ये कानून इतने लचर रहे जिसका विशेष लाभ नहीं मिल सका है। इसके साथ–साथ सुप्रीम कोर्ट ने भी 2 मई, 1990 को आदेश दिया कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें मिलकर एक सलाहकार समिति का गठन करेंगे जो कि बाल–वेश्यावृत्ति को समाप्त करने के लिए समय–समय पर प्रभावी कदम उठाएगें। बाल–वेश्याओं के पुनर्वास हेतु इस 'केन्द्रीय सलाहकार समिति' ने 30 मार्च 1994 को एक 'प्लान ऑफ एक्शन' बनाया है।[25]

इसके अतिरिक्त मानव तरस्करी, जो स्वयं में एक अपराधिक कार्य है, के द्वारा भी वेश्यावृत्ति को अत्यन्त बढ़ावा मिल रहा है। अतः मानव तरस्करी के माध्यम से वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए भी कानून बनाए गए हैं जिनमें 'अनैतिक तरस्करी रोकथाम कानून 1956' (आईटीपीए) अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस कानून के अन्तर्गत कई धाराएँ हैं जिसके अन्तर्गत वेश्यावृत्ति पर रोक लगाई गई। संसद द्वारा इस कानून में 1978 एवं 1986 में दो बार संशोधन भी किए जा चुके हैं। आईटीपीए की धारा 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो विशेष रूप से वेश्यावृत्ति एवं इसके कारण बढ़ती हुई वेश्यावृत्ति को रोकने हेतु बनाई गई है।[26] आईटीपीए की धारा 3 के अनुसार वेश्यालय चलाना या इसको चलाने में सहायता करना या वेश्यावृत्ति हेतु किसी स्थान या वाहन का प्रयोग करना अपराध की श्रेणी में आएगा। इसी के साथ आईटीपीए की धारा 4 के अनुसार देह व्यवसाय की कमाई पर निर्भर रहना एवं इस पर निर्भर रहने वाले वाले दण्ड के भागीदार होगें। धारा 5 के अनुसार वेश्यावृत्ति के लिए स्त्री या पुरूष की तरस्करी करना दण्डनीय अपराध है। धारा 6 के अनुसार वेश्यालयों या ऐसी जगहों पर जहाँ देह व्यवसाय होता है वहाँ पर किसी को रोक कर रखना भी अपराध की श्रेणी में आएगा। धारा 7 के अनुसार किसी सार्वजनिक स्थान पर वेश्यावृत्ति करना या इसमें शामिल व्यक्ति दण्ड के भागी होंगे और इसी धारा की उपधारा 7ए के अन्तर्गत यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि किसी नाबालिग के साथ वेश्यावृत्ति की जाती है तो उस व्यक्ति को 7 साल की सजा दी जाएगी। पीड़ित के नाबालिग होने पर एवं उसकी अनुमति के विपरीत देह संबंध स्थापित किया जाता है तो उस व्यक्ति के खिलाफ आईपीसी की धारा 376 लगाई जाएगी। धारा 8 के अनुसार किसी सार्वजनिक जगह या अन्य किसी स्थान पर स्त्री या पुरूष को वेश्यावृत्ति हेतु लालच देना दण्डनीय अपराध है। इसके अतिरिक्त धारा 9 में यह भी प्रावधान है कि अगर कोई व्यक्ति हिरासत में किसी स्त्री या पुरूष को वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य करता है तो वह भी संगीन जुर्म माना जाएगा।[27]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सरकार द्वारा वेश्यावृत्ति के उन्मूलन हेतु सरकार द्वारा अनेक प्रयास किए गए किन्तु सही ढंग से उनको लागू नहीं किए जाने के

कारण उनका प्रभाव ज्यादा व्यापक नहीं रहा। वास्तव में नियम एवं कानून बनाने से ज्यादा जरूरी उन वास्तविक समस्याओं को जानना एवं उसका समाधान करना अत्यन्त आवश्यक है। जिससे इसको बढ़ने से और इससे होने वाले दुष्परिणामों को रोका जा सके।

## (ख) वेश्यावृत्ति की समस्या को दूर करने हेतु उपाय–

वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति एवं वेश्याओं की संख्या इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि उनको रोकना या पूरी तरह से समाप्त करना अत्यन्त कठिन है। आज गली मोहल्ले, चकलाघरों से लेकर बड़े–बड़े होटलों तक देह व्यापार फैला हुआ है और यहाँ तक कि कई शहरों एवं गांवों की अर्थव्यवस्था भी इस पर टिकी हुई है। अतः इस पर पूर्णतया प्रतिबंध लगाना अत्यन्त दुष्कर हो गया है। इसके अतिरिक्त यह भी देखने में आता है कि जो स्त्री वेश्यावृत्ति में लिप्त रहती हैं, समाज उसको आसानी से अपनाना नहीं चाहता है। जिसके कारण ऐसी औरते 'स्टॉक होम सिंड्रोम' का शिकार होने लगती हैं। इस बीमारी से पीडित व्यक्ति यह मानने लगता है कि उत्पीड़क बुरा नहीं था। इसके साथ ही वह हीनता की भावना से ग्रस्त होने लगती हैं और यह मानने लगती हैं कि वे इसके अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं कर सकती हैं। ऐसी स्थिति उन स्त्रियों में विशेष रूप से देखने में मिलती हैं जो बचपन में यौन उत्पीड़न की शिकार होती हैं या ऐसे समुदाय से आती हैं जहाँ देह व्यवसाय पारंपरिक रूप से विद्यमान हैं। इन गंभीर परिस्थितियों से निपटना अत्यन्त कठिन हैं फिर भी कुछ ऐसे उपाय हैं जिनके माध्यम से एक तरफ वेश्याओं के पुनर्वास की व्यवस्था की जा सकती हैं वहीं दूसरी तरफ वेश्यावृत्ति के उन्मूलन हेतु प्रयास भी किया जा सकता है।

वेश्यावृत्ति की समस्या के समाधान हेतु सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों स्तर पर प्रयास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। 'सामाजिक एवं नैतिक स्वास्थ्य समिति' ने भी अपने निष्कर्ष में वेश्यावृत्ति की समस्या के समाधान हेतु गैर शासकीय एवं शासकीय दोनों

स्तर पर प्रयास करने को आवश्यक बताया है।[28] सरकारी स्तर इसके समाधान हेतु यह आवश्यक है कि सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों को अत्यन्त सख्ती से लागू किया जाए। अधिनियमों को सही ढंग से लागू नहीं किए जाने का ही परिणाम है कि इसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सका है। इसके अतिरिक्त लोगों को यौन शिक्षा के विषय में जानकारी दी जानी चाहिए जिससे वे जागरूक हो। यौन शिक्षा को पाठ्यक्रम में लागू किया जाना चाहिए। साथ ही माता–पिता एवं अध्यापक की समिति भी बनाई जानी चाहिए। जिससे माता–पिता एवं अध्यापक मिलकर सप्ताह या महीने में एक बार साथ में बैठकर बच्चों की समस्या सुने एवं उसका सही ढंग से निदान करे। इससे बच्चों को गलत कार्य करने से रोका जा सकता है और उनका सही मार्गदर्शन भी किया जा सकता है। इसके साथ–साथ माता–पिता को भी अपने बच्चों को इसके विषय में जानकारी देनी चाहिए। अक्सर भारत में यह देखा जाता है कि बच्चे अपने माता–पिता से यौन विषयों पर बात करने या पूछने से कतराते हैं। साथ ही माता पिता द्वारा भी बच्चों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का सही उत्तर नहीं मिल पाने के कारण ही व अन्य साधनों की ओर अपने प्रश्नों के उत्तर के लिए उन्मुख होते हैं जो स्वयं उनके लिए, परिवार के लिए और समाज के लिए अत्यन्त घातक है। इसके अतिरिक्त निर्धनता एवं अशिक्षा भी वेश्यावृत्ति का प्रमुख कारण है जिसे दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रायः यह देखने में आता है कि अन्य के मुकाबले समाज की ऐसी स्त्री एवं बच्चे इस पेशे का शिकार होता है जो या तो घर से भागे हुए होते हैं या शहरों में रोजगार की तलाश में आए होते हैं या अत्यन्त गरीब होते हैं। बहुत सी स्त्रियाँ मात्र इस कारण से इस पेशे को अपनाती हैं क्योंकि वे अशिक्षित एवं निर्धन होती हैं। जिसके कारण अन्य क्षेत्रों में नौकरी करना उनके लिए असंभव हो जाता है। अगर वह शिक्षित होगी तो अन्य व्यवसायों को अपनाने में समर्थ होगीं। साथ ही वह बुरे लोगों के बहकावे में आने से भी बचेंगी क्योंकि शिक्षा ही वह माध्यम है जो स्त्रियों को सही–गलत सोचने की समझ विकसित करता है। प्राचीन काल में शास्त्रों में वेश्याओं की स्थिति के सुधार हेतु सांस्कृतिक एवं कलात्मक स्थिति को ऊपर उठाने की बात की गई है। 'वात्स्यायन' ने भी यह जान लिया था कि वेश्याओं का

निर्मूलन करना आसान नहीं है अतः इनका सांस्कृतिक एवं कलात्मक स्तर ऊँचा उठाना अत्यन्त आवश्यक है। सरकार ने अपनी तरफ से निरक्षर एवं निराश्रित स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए कदम उठाए हैं। 'समाज कल्याण बोर्ड' ने निर्धन एवं निराश्रित स्त्रियों व विधवाओं के लिए शिक्षा के एक संक्षिप्त पाठ्यक्रम की योजना बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत ऐसी स्त्रियों को न्यूनतम बुनियादी शिक्षा प्रदान की जाती है जिससे वे शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् प्राथमिक स्कूल शिक्षिकाओं, सहायक नर्स, मिडवाईफ ग्राम सेविका और बाल सेविका आदि का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। 'केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड' की सामाजिक–आर्थिक योजना के अन्तर्गत स्त्रियों को इस तरह का प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे प्रशिक्षण के दौरान भी काम सीखने के साथ–साथ आय भी कमा सके और आत्मनिर्भर बन सकें।[29]

भारत में पश्चिमी देशों की तर्ज पर 'बाल निर्देशन चिकित्सालय' की स्थापना द्वारा वेश्यावृत्ति की समस्या का समाधान किया जा सकता है। 'सामाजिक एवं नैतिक स्वास्थ्य समिति' ने यह सुझाव दिया है कि इन चिकित्सालयों में योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों को रखा जाना चाहिए। ऐसे जगहों पर उन बच्चों की देखभाल की जा सकती है जो गलत रास्तों पर चल चुके हैं। साथ ही ऐसे बच्चों को तनाव से भी दूर किया जा सकता है। इन चिकित्सालयों में बाल मनोवैज्ञानिक को नियुक्त किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त सरकार को उन वेश्याओं की देखभाल के लिए चिकित्सकों को नियुक्त किया जाना चाहिए जिन्हें कोई गंभीर बीमारी है। क्योंकि इनके संसर्ग से बीमारियों के बढ़ने की आशंका रहती है, जो एक स्वस्थ समाज के लिए अत्यन्त हानिकारक है। वेश्याओं के संसर्ग से हाने वाली बीमारियों में एड्स सबसे खतरनाक बीमारी है जिसका इलाज अभी तक संभव नहीं हो सका है। अतः इन एड्स जैसी बीमारियों को रोकने के लिए प्रशिक्षित चिकित्सकों को नियुक्त किया जाना चाहिए। साथ ही इनके उपचार का प्रबंध भी किया जाना चाहिए। चिकित्सकों के साथ–साथ सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति भी की जानी चाहिए। जिससे वे समाज में जागरूकता फैला सके। सरकार को परिवार नियोजन के कार्यक्रमों का सही ढंग से प्रचार प्रसार करना

चाहिए जिससे कम बच्चे होने से आर्थिक तंगी से बचा जा सके और उनका पालन–पोषण अच्छे से किया जा सके।

वेश्यावृत्ति के समाधान हेतु सरकारी स्तर के साथ–साथ गैर सरकारी स्तर पर प्रयास किया जाना आवश्यक है। गैर सरकारी स्तर पर कल्याणकारी समिति बनाई जानी आवश्यक है। क्योंकि सरकारी स्तर पर कानून बनाकर सभी कुरीतियों को समाप्त नहीं किया जा सकता है। इसलिए गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से यह कार्य संभव है। ये समितियाँ समाज में फैले धार्मिक एवं सामाजिक अंधविश्वासों को दूर कर सकती हैं। इस संस्थाओं एवं समितियों को वेश्यामुक्ति के लिए आन्दोलन चलाने के साथ–साथ स्त्री व्यापार पर रोक के लिए आन्दोलन चलाया जाना चाहिए। साथ ही ये समाज में चेतना फैलाकर लोगों को जाग्रत कर सकती हैं। वर्तमान समय में ऐसी बहुत से गैर सरकारी संगठन व समाजसेवी संस्थाएँ हैं जिन्होंने अपने प्रयासों द्वारा वेश्याओं के जीवन में सुधार किया है। इन संगठनों एवं संस्थाओं ने उनके बच्चों को, जिन्हें समाज अपनाने से कतराता है, उनको भी शिक्षित किया ताकि वह भविष्य में उन्हें वेश्यावृत्ति या दलाली के दलदल में न जाना पड़े। इन संस्थाओं का आज भी यह प्रयास लगातार जारी है।

'अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति' द्वारा देवदासी के उद्धार का काम किया गया है। इसके साथ 'डॉ0 आनन्द वास्कर', 'डॉ0 सदाविजय आर्य', 'डॉ0 बाबा आढाव' आदि ने महाराष्ट्र वेश्याओं के उद्धार के लिए लगातार प्रयास कर रहे हैं। वेश्याओं की स्थिति में सुधार हेतु 'श्री गो0 रा0 खैरनार' ने 'सुरक्षा' नामक संस्था की स्थापना की और उसके माध्यम से 'दिल्ली', 'जयपुर', 'पुणे' तथा 'मुम्बई' जैसे शहरों में अभियान छेड़ा है।[30] 'संलाप' नामक संस्था ने भी वेश्यावृत्ति एवं स्त्री व्यापार को रोकने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस संस्था ने ईसीपीएटी, एटीएसईसी, एनएडब्ल्यूओ और मैत्री के साथ मिलकर वेश्याओं के उद्धार हेतु सराहनीय प्रयास किया है। इस गैर सरकारी संस्था नें अनेक संगोष्ठियों एवं कार्यशलाओं का आयोजन कर वेश्यावृत्ति उन्मूलन हेतु प्रयास किया है। साथ ही 'मुर्शिदाबाद', 'नादिया', 'जलपाईगुड़ी', 'कूंच बिहार' और 'चौबीस परगना' जैसे क्षेत्रों में विशेष रूप से कार्य किया है जहाँ यह व्यवसाय अधिक विस्तृत क्षेत्रों में

फैला हुआ है और सड़क एवं जल मार्ग द्वारा बच्चियों एवं लड़कियों की 'बांग्लादेश' व 'नेपाल' जैसे देशों में की जाती है।[31] 'बापू' नामक संस्था ने भी स्त्री व्यापार एवं वेश्यावृत्ति के संबंध में उल्लेखनीय कार्य किया है।[32] इसके अतिरिक्त समाज को स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन करना होगा है। लोगों को समझना होगा कि स्त्री मात्र उपभोग की वस्तु नहीं है। समाज में उसका भी वहीं स्थान है जो पुरूषों का है। वह भी उन कार्यों को़ करने में सक्षम है जो एक पुरूष कर सकता है।

## (ग) हिन्दी साहित्य में वेश्याओं के प्रति दृष्टिकोण एवं हिन्दी साहित्य की भूमिका–

समाज में एक तरफ वेश्यावृत्ति के उन्मूलन हेतु जहाँ अनेक प्रयास किए जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर लगातार उनकी संख्या में बढ़ोत्तरी देखने को मिल रही है। साथ ही उनके स्वरूप में भी लगातार परिवर्तन होता जा रहा है। और यह समस्या केवल भारत की ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में व्याप्त है। साहित्य में भी वेश्या जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत हिन्दी उपन्यासों में भी वेश्या जीवन के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं। जैसे–जैसे वेश्यावृत्ति एवं उसके स्वरूप में परिवर्तन होता गया है वैसे–वैसे हिन्दी उपन्यासों में भी यह परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी उपन्यासों से लेकर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों वेश्याजीवन और उनके दृष्टिकोण के प्रति जो अंतर देखने को मिलता है उसका वर्णन इस प्रकार है–

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी उपन्यासों की समय सीमा 1877 से 1947ई0 तक निर्धारित की जा सकती है। यह वह समय था जब देश लगातार अंग्रेजों के बंधन से मुक्त होने का प्रयास कर रहा था। देश में अनेक सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन हो रहे

थे। आधुनिक शिक्षा का प्रभाव धीरे–धीरे समाज को परिवर्तन के लिए प्रेरित कर रहा था। किन्तु वहीं पुरातन परंपरा एवं धार्मिक संस्कार समाज को बंधन में जकड़े हुए था। भारतीय समाज इन्हीं परिवर्तनों के बीच आगे बढ़ रहा था। हिन्दी उपन्यासों में भी यह प्रभाव देखने को मिलता है। वेश्या जीवन को लेकर स्वतंत्रतापूर्व जो हिन्दी में जो उपन्यास लिखे गए हैं उनमें आरंभिक उपन्यासों में वेश्या जीवन के प्रति अलग दृष्टिकोण देखने को मिलता है जबकि प्रेमचन्दयुगीन एवं उसके बाद के कालों में वेश्या जीवन के प्रति दृष्टिकोण में अंतर देखने को मिलता है। हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों का मूलतः उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना था। किन्तु इसके बावजूद उस काल में अनेक सामाजिक उपन्यास भी लिखे गए। उस समय के लेखकों का दृष्टिकोण आदर्शवादी अधिक था। उस काल में स्त्रियों के लिए अनेक बंधन थे। साथ ही विवाह के पूर्व तथा पश्चात् पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के साथ संबंध स्थापित करना अनैतिक माना जाता था। उस काल में स्त्रियों के पतिव्रता रूप को अधिक महत्व दिया जाता था। इस कारण उनके उपन्यासों में वेश्याओं को बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखा गया है। वेश्याओं के विषय में लेखकों ने परम्परागत दृष्टिकोण ही अपनाया है। इन उपन्यासों में वेश्याओं को समाज के लिए आवश्यक बताया गया है क्योंकि उनके अनुसार समाज में वेश्याएँ नहीं होगी तो समाज में बहू बेटियों की इज्जत खतरे में पड़ सकती है।

इस काल के उपन्यासों में वेश्याओं के जीवन में सुधार या उनसे जुड़ी समस्याओं के विषय में समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया। जैसा कि किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने उपन्यास 'स्वर्गीय कुसुम' में 'देवदासी प्रथा' का चित्रण अवश्य किया है। साथ ही देवदासी 'कुसुम' का विवाह वसन्त से अवश्य कराते हैं लेकिन उनके पात्र कहीं भी देवदासी प्रथा का विरोध करते नहीं आते। यह बात तब सिद्ध हो जाती है जब 'कुसुम' स्वयं 'वसन्त' से विवाह करने के बावजूद लोकलाज के कारण अपनी छोटी बहन 'गुलाब' से करा देती है। जिससे उसके कारण 'वसन्त' समाज में पतित न माना जाए और बिना संतान के उसके पुरखों के पिण्ड पानी का लोप न हो जाए। इस प्रकार लेखक द्वारा वेश्या 'कुसुम' को वेश्या जीवन से मुक्त तो कराया जाता है किन्तु उसके विवाह को

सामाजिक मान्यता नहीं दिला पाते। स्वयं उनके पात्रों में भी विद्रोही भावना का अभाव है। 'डॉ0 शारदा अग्रवाल' के अनुसार–

''उसे यह भलीभांति विदित था कि एक वेश्यापुत्री को न तो समाज में कोई सम्मानित स्थान प्राप्त हो सकता है और उसकी दृष्टि में उसकी पाक साफ नियत एवं आदर्श उच्च चरित्र का कुछ भी महत्व हो सकता है।''[33]

इस प्रकार 'स्वर्गीय कुसुम' की वेश्या पात्र 'कुसुम' न तो देवदासी प्रथा का विरोध करती है और न ही समाज का विद्रोह करके पूर्ण रूप से 'वसन्त' को अंगीकृत कर पाती है। 'पंडित गिरिजानन्दन तिवारी' जी के 'विद्याधरी' नामक उपन्यास में भी वेश्याओं के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण ही देखने को मिलता है। लेखक ने उपन्यास की नायिका 'चम्पा' जो आगे चलकर वेश्यावृत्ति को अपना लेती है, की कहानी को प्रस्तुत किया है। पति के वेश्यागमन होने के कारण वह अपने पड़ोसी के साथ भागकर वेश्या 'वेद्याधरी' बन जाती है। लेखक ने अपने उपन्यास में वेश्या जीवन का घृणित रूप प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार किसी पतिव्रता स्त्री द्वारा वेश्या जीवन अपनाने से ज्यादा घृणित कुछ और नहीं हो सकता है। गौर से देखा जाए तो यह सत्य भी है कि किसी स्त्री के लिए सबसे बुरी बात और क्या हो सकती है कि उसका स्वयं का पुत्र उसका ग्राहक बनकर आए। किन्तु यहाँ लेखक को नायिका 'चम्पा' को धिक्कारने से पहले यह सोचना चाहिए कि चम्पा के वेश्या 'विद्याधरी' बनने के पीछे प्रमुख कारण क्या है? क्या गलती सिर्फ 'चम्पा' की है। उसके पति का वेश्यान्मुख होना क्या गलत नहीं है। लेखक ने यहाँ सिर्फ 'विद्याधरी' को ही पाप का भागी मानने का अर्थ है कि लेखक ने सिर्फ एकांगी दृष्टिकोण से ही विचार किया है।

प्रेमचन्दपूर्व लेखकों में 'लज्जाराम मेहता' जी का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने 'आदर्श हिन्दू' नामक उपन्यास में वेश्या जीवन के प्रति पारंपरिक दृष्टिकोण अपनाया है। उपन्यास में लेखक ने वेश्याओं को सिर्फ समाज की गंदगी साफ करने के

रूप में देखा है। उनके अनुसार यदि समाज से इनको हटा दिया जाए तो घर की बहू बेटियाँ पर बुरा प्रभाव पड़ेगा जिससे वह कोई गलत कदम भी उठा सकती हैं।

'चन्द्रशेखर पाठक' ने भी अपने उपन्यास 'वारांगना रहस्य' में वेश्याओं के पतित रूप को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार वेश्यावृत्ति के परिणाम अत्यन्त खराब होते हैं। इसके कारण समाज में अनेक तरह की बुराईयाँ एवं रोग फैलते हैं जो समाज के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। इस प्रकार यहाँ भी लेखक ने वेश्याओं को रोग फैलाने का कारक मानकर उनको समाज से हटाने की बात की है किन्तु स्वयं कोई उपाय नहीं बताया है। 'देवकीनन्दन खत्री' ने भी अपने उपन्यास 'काजर की कोठरी' में वेश्या जीवन के मनोरंजनकारी रूप को प्रस्तुत किया है। उन्होंने उपन्यास की वेश्या पात्र 'बाँदी' के माध्यम से वेश्याओं की चालाकी एवं जमींदारों की धूर्तता का अत्यन्त मनोरंजक चित्रण किया है।

इस प्रकार प्रेमचन्दपूर्वयुगीन लेखकों में वेश्याओं एवं वेश्यावृत्ति के प्रति घृणित दृष्टिकोण देखने को मिलता है। उन्होंने वेश्यावृत्ति को खत्म करने तथा वेश्याओं के जीवन में सुधार हेतु कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है। यहाँ तक कि वह इसका समर्थन करते हैं जिससे घर की बहू बेटियों को व्यभिचार में लिप्त होने से रोका जा सके। उन्होंने समाज की गंदगी को साफ करने के लिए वेश्याओं को आवश्यक माना है। जबकि उन्होंने यह नहीं सोचा कि आखिर वेश्या भी किसी की बेटी, बहन और बहू होती है। वह किसी के मनोरंजन की वस्तु नहीं है। वह भी एक इंसान है।

अतः उर्पयुक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भले ही प्रेमचन्दपूर्वयुगीन लेखकों ने वेश्या जीवन का चित्रण घृणित रूप में किया हो किन्तु उन्होंने वेश्या जीवन को अपने उपन्यासों का विषय बनाया और पाठकों का ध्यान इस ओर केन्द्रित किया, यह अत्यन्त प्रशंसा के योग्य है।

वेश्याओं के प्रति दृष्टिकोण सही मायने में 'प्रेमचन्द युग' में आकर परिवर्तित होना शुरू होता है। इस युग के लेखकों ने वेश्याओं को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा है। इस युग के लेखकों ने न केवल वेश्याओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है बल्कि उनकी स्थिति में सुधार हेतु सुझाव भी दिए हैं। लेखकों की इस कड़ी में सबसे पहले नाम 'प्रेमचन्द' का आता है। जिन्होंने अपने 'सेवासदन' उपन्यास के 'सुमन' नामक पात्र के माध्यम से वेश्या जीवन को नैतिक स्तर पर उठाने का प्रयास किया है। उन्होंने वेश्याओं को पतित कहने के बजाय उन लोगों को पतित माना है जो वेश्यागामी हैं। 'प्रेमचन्द' ने वेश्या की जगह वेश्याजीवन की आलोचना की और वेश्याओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। साथ ही वेश्या सुमन के पात्र में एक प्रकार के आत्मसम्मान की भावना भी है। वह वेश्या होकर भी स्वयं को कभी कलुषित नहीं होने देती है। इतना ही नहीं उन्होंने वेश्याओं के पुर्नवास हेतु सुझाव भी दिए। प्रेमचन्दयुगीन लेखक 'जयशंकर प्रसाद' ने 'कंकाल' नामक उपन्यास के माध्यम से वेश्या जीवन एवं स्त्री के अधिकारों की बात की है। साथ सदियों से चली आ रही उस परंपरा का विरोध भी किया है जो मनुष्य को बंधनों में जकड़े रहती हैं। उपन्यास में प्रसाद जी ने वेश्या 'तारा' के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण अपनाया है।

'पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने भी 'शराबी' उपन्यास में 'जावहर' नामक वेश्या पात्र के माध्यम से आदर्श स्थापित करने का कार्य किया है। 'जवाहर' के प्रति लेखक ने सम्मानजनक दृष्टिकोण अपनाया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'जवाहर' को वेश्यावृत्ति से निकालकर कुलवधू का सम्मानित पद भी दिलाया जो अपने कार्यो एवं स्वाभाव से अपने सास–ससुर का दिल जीत लेती है और अपने पति 'मानिक' को भी सुधार देती है। 'भगवती प्रसाद वाजपेयी' ने भी 'पतिता की साधना' नामक उपन्यास के माध्यम से वेश्याओं के प्रति सम्मानपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। यहाँ लेखक ने वेश्या 'नंदा' नामक पात्र को अत्यन्त आदर्शवादी रूप में प्रस्तुत किया है कि विधवा विवाह का विरोध करने वाली 'हरि की माँ' अंत में वेश्या को बहू के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हो

जाती है। यहाँ उपन्यासकार द्वारा उठाए गए इस कदम के कारण ही उन्हें क्रान्तिकारी रचनाकार कहा जाता है।

प्रेमचन्दयुगीन लेखकों में 'ऋषभचरण जैन' का प्रमुख स्थान है। उन्होंने वेश्या जीवन को आधार बनाकर 'वेश्यापुत्र' और 'चम्पाकली' नामक उपन्यास लिखे हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने वेश्याओं के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाया है। 'वेश्यापुत्र' में नायिका 'कमलो' जो एक आदर्श गृहिणी रहती है अपनी पति की मृत्यु एवं गुण्डों द्वारा बालात्कार किए जाने के कारण वेश्यावृत्ति को अपना लेती है। किन्तु आगे चलकर जब वह 'सनतकुमार' के संपर्क में आती है तो वेश्यावृत्ति को छोड़कर उसके साथ गृहस्थी बसाती है और वेश्यावृत्ति से कमाए गए धन का वेश्याओं के आश्रम में दान कर देती है। 'चम्पाकली' की नायिका वेश्या 'चम्पाकली' प्रेम को महत्व देने वाली स्त्री है जो अपने ग्राहक रामदयाल से अथाह प्रेम करती है बावजूद इसके कि वह उसे मात्र एक रंडी के रूप में देखता है। किन्तु वह इसकी परवाह किए बिना उससे सच्चा प्रेम करती है। यहाँ तक कि वह उसके पैसों को भी अस्वीकार कर देती हुई कहती है कि–

''हाँ मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। मैं जानती हूँ, मुझे किसी को प्यार करने का अधिकार नहीं। मेरा यह अधिकार छिन चुका है। कोई मेरी बात पर यकीन नहीं कर सकता....लेकिन सच मैं रण्डी बनकर तुम्हारे साथ नहीं सोई, मेरे प्यारे, मैं तुम्हारी बनकर यहाँ रही हूँ और मुझे इसके एवज में धन दौलत की ख्वाहिश सर्वथा नहीं है।''[34]

इस प्रकार यह देखने में आता है कि आरंभिक युग के उपन्यासों की अपेक्षा प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में वेश्या जीवन के प्रति एक अलग दृष्टिकोण देखने को मिलता है। इस काल में प्रेमचन्द के उपन्यास सेवासदन के साथ ही इस काल के लेखकों में वेश्याओं के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आता है। इस कारण इस युग के लेखन में वेश्याओं के प्रति उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण उभरकर सामने आता है। इस युग की वेश्या वेश्या होकर भी मन से पवित्र हैं और एक आदर्श गृहिणी की तरह अपने प्रियतम के प्रति समर्पित भी हैं।

प्रेमचन्दोत्तर या स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में हमारे समक्ष वेश्याओं का एक अलग रूप उभरकर सामने आता है। यह वह युग था जब देश आजादी की लड़ाई लड़ रहा था। जिसके फलस्वरूप समाज में अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे थे। प्रेमचन्दोत्तर युग में 'प्रेत और छाया', 'पतिता की साधना', 'जीवन की मुस्कान', 'घरौंदा', 'सुहाग के नुपूर', 'वैशाली की नगरवधू', 'दिव्या', 'इसीलिए', 'दो बूँद जल', 'बावन नदियों का संगम', 'उतरते ज्वार की सीपियाँ', 'दशार्क', 'मुरदाघर', 'सलाम आखिरी', 'आज बाजार बंद है', 'क्या खरीदोगे मुझे' आदि उपन्यसों में वेश्याओं के प्रति भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं। इस युग में लेखकों के साथ वेश्याओं के स्वरूप एवं उनकी सोच में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। हलांकि अभी भी वेश्याओं द्वारा इस व्यवसाय को अपनाए जाने का प्रमुख कारण आर्थिक ही रहा है किन्तु अब ये अपने अधिकारों को लेकर सचेत हो गई हैं। अब वे इस व्यवसाय को करते हुए अपने अधिकारों की मांग करती हैं। चाहे वो 'प्रेत और छाया' की नंदिनी हो, 'इसीलिए' की मीनाक्षी दलाल हो, 'आज बाजार बंद है' कि पार्वती हो या 'सुहाग के नुपूर' की 'माधवी' अब सिर्फ वेश्याएँ नहीं हैं जो बाजारों में खड़े होकर या किसी की रखैल बनकर समाज में कहीं खो जाती हैं बल्कि अब वे भी इस समाज का हिस्सा बनना चाहती हैं। इसी कारण वे अपने अधिकारों की मांग करती हैं किन्तु पित्तृसत्तात्मक मानसिकता इस सत्य को आसानी से स्वीकार नहीं कर पाती। इसी कारण वे इनकी मांगों को नजरअंदाज करती हुई नजर आती हैं। जैसा कि 'सुहाग के नुपूर' में 'पगली' महाकवि से कहती है–

''पुरूष जाति के स्वार्थ और दम्भ–भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग–नारी जाति पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरूष न तो स्त्री को सती बनाकर सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर।... .....नारी के रूप में न्याय हो रहा है, महाकवि! डसके आँसुओं में अग्निप्रलय भी समाई है और जलप्रलय भी!''[35]

स्वतंत्रता से पूर्व नारी के रूप में जो न्याय रो रहा था वह आज अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए तत्पर है। 'रांगेय राघव' के उपन्यास 'घरौंदा' में 'नादानी' समाज का विरोध करते हुए 'कामेश्वर' से कहती है कि–

''मुझमें और विवाहित स्त्री में अधिक फर्क नहीं है। बताओ कामेश्वर। एक बार की चोरी उसे सदा के लिए जेल में रख देती है, मुझे बार–बार नई चोरी करनी पड़ती है।''[36]

इस तरह स्वातंत्र्योत्तर युग में आकर वेश्याओं में चेतना का विकास होने लगा है। अब वे भी अपने अधिकारों को लेकर जागरूक हो गई हैं। इसके साथ इस युग में आकर एक बदलाव यह भी देखने में आता है कि इस युग की जो पढ़ी–लिखी वेश्याएँ हैं वे अब विवाह करने के बजाय बिना विवाह के सन्तानोत्पति करना चाहती हैं जिससे यही कारण है कि पेशे से वेश्या होते हुए वह अपनी सन्तान को एक सम्मानित जीवन देना चाहती है जो उसकी माँ को सपना था। 'इसीलिए' की नायिका 'मिनाक्षी दलाल' समाज में सिर्फ वेश्या के रूप में अपनी पहचान नहीं चाहती बल्कि वह माँ भी बनना चाहती है ताकि वह अपने माँ के सपने को पूरा कर सके। जैसा कि–

''माँ अपनी सन्तान को एक साफ, सम्मानित जिन्दगी देना चाहती थी। लेकिन उसकी यह चाह पूरी नहीं हुई। मैं अब अपनी सन्तान को वही जिन्दगी दूँगी जो माँ मुझे देना चाहती थी। लेकिन इसके लिए पैसे की जरूरत होती है.....और मैं कहूँ कि मैं इस तरह अपनी सन्तान के लिए पैसा जोड़ रही हूँ।''[37]

इस तरह इस उपन्यास में जहाँ एक तरफ वेश्यावृत्ति के बदलते स्वरूप पर प्रकाश डाला है वहीं दूसरी ओर वेश्याओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते प्रस्तुत किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् वेश्याएँ अब कॉल गर्ल के रूप में हमारे सामने आती है और किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित न रहकर अब उसकी पहुँच बड़े–बड़े होटलों एवं नेताओं के आवास तक हो गई है। यहाँ तक कि उनके ग्राहक शराबी, मजदूर और रिक्शेवाले की जगह राजनेता, व्यवसायी और अफसर हो गए हैं। इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात् वेश्याओं का भी वर्गीकरण हो गया है। जहाँ एक ओर सड़क के किनारे खड़ी

अनेकों लाइनवालियाँ मिल जाएगीं वहीं दूसरी ओर बड़े–बड़े होटलों में अमीर वेश्याएँ देह परोसती नजर आएगी। यहाँ तक कि जिस प्रकार की उनकी आमदनी है उसी प्रकार का रहन सहन एवं ग्राहक भी। 'शैलेष मटियानी' ने अपने उपन्यास 'बावन नदियों के संगम' में इस अंतर को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ 'बुंदू' के माध्यम से इस प्रकार किया है–

''नीली ही साड़ी, नील ही ब्लाउज–पेटीकोट, नीली ही जूती और नीले ही जड़ाऊ नगों से भरे चमचमाते जेवर! थे हम भौचक, मगर जैसे ही खालिद भाई से पहले वो मुसकराई और हमारी 'नमस्ते' का जबाव दिया है, एक मिनट में हम चौचक जान गए कि बुंदू बेटे, ये देखो कि पैसे का खेला, कितनी जबरदस्त चीज है! पेशे वाली और परी के बीच का फर्क खत्म किए देता है।''[38]

आगे जब 'गुलाबबाई' उससे गरीब वेश्याओं के बारे में पूछा तो उनके दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए वह बताता है कि–

''धंधे की क्या पूछो, गुलाब! खोमचा लगाई हो रही है। अब कहाँ वो पुरानीवाली जी• बी• रोड रह गई! टंग्रजों के वक्त में अजमेरी गेट की चौहद्दी से लाल कुआँ–लहौरी गेट तक का इलाका धंधे में आता था। अब बहुत सख्ती हो गई। बहते पानी में के झाड़–झंखाड़ की तरह शहर के दूर–दूर, किनारे–किनारे की बस्तियों में जा लगी हैं धंधेवालियाँ। ऐन शहर की जो आमद थी, वो जाती रही।''[39]

इस प्रकार उपन्यास लेखन के प्रत्येक काल में वेश्या जीवन एवं उनकी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है और हर काल में इनके प्रति अलग–अलग दृष्टिकोण भी देखने को मिलते हैं। यद्यपि किसी भी उपन्यास में वेश्यावृत्ति के पूर्णतया उन्मूलन की बात नहीं की गई है क्योंकि वेश्यावृत्ति केवल भारत की ही नहीं बल्कि पूरे विश्व की समस्या है। अतः इसे एक झटके में समाप्त कर देना आसान नहीं है। साथ ही समाज भी अभी इनको अपनाने से हिचकता है। इस कारण लेखकों ने उन्मूलन की बजाय वेश्याओं के पुर्नवास एवं उनकी स्थिति में सुधार हेतु उपाय बताए हैं जिससे उनकी दशा में सुधार हो सके। हिन्दी उपन्यास में वेश्याओं के लिए समाधान प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' के माध्यम से

सुझाया है। उनके अनुसार वेश्याओं की बस्ती यदि सार्वजनिक जगहों से दूर स्थापित की जाए तो समस्या का हल निकल सकता है क्योंकि बस्ती से दूर रखे जाने वहाँ जाने का साहस कम ही लोग कर सकेगें और जो करेगें वे अत्यन्त बेहया किस्म के लोग होगें। साथ ही वेश्याओं के नाच कराने पर भी भारी टैक्स लगाना चाहिए और शहर के मुख्य स्थानों एवं पार्क के आस–पास भी उनके प्रवेश का निषेध किया जाए। इसके अतिरिक्त वह एक ऐसे आश्रम की स्थापना पर बल देते है जहाँ वेश्याओं के बच्चों को शिक्षा दी जा सके जिससे वे सम्मानित जीवन जी सके। इसलिए उपन्यास के अंत में वे सुमन के माध्यम से सेवासदन नामक आश्रम की स्थापना करते हैं। लेकिन 'प्रेमचंद' खुद इस समाधान के संबंध में सशंकित नजर आते हैं क्योंकि वेश्याओं को सार्वजनिक स्थानों से दूर बसाने क्या वेश्यावृत्ति रूक जाएगी? वेश्याओं को बस्ती से दूर करने पर भी क्या वेश्यागामी अपने को वहाँ जाने से रोक सेकेगें? इन प्रश्नों के अतिरिक्त एक यह भी महत्वपूर्ण सवाल है कि क्या आश्रम में रह रही वेश्याओं के बच्चों को समाज अपनाएगा क्योंकि अगर समाज उन्हें अभी भी घृणा की दृष्टि से देखेगा और अपने से दूर रखेगा तब वेश्याओं के वेश्यावृत्ति छोड़ने का भी कोई लाभ नहीं होगा। 'प्रेमचंद' द्वारा सुझाए गए समाधानों के अतिरिक्त हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों ने भी वेश्याओं के जीवन के सुधार हेतु कुछ समाधान बताए हैं जिनमें से अधिकांश लेखक विवाह को महत्वपूर्ण मानते हैं।

'भगवीप्रसाद वाजपेयी' ने 'पतिता की साधना' में हरि और नन्दा का विवाह कराकर समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है। 'पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'' के उपन्यास 'शराबी' का नायक 'मानिक' किसी की परवाह न करते हुए 'जवाहर' को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता है। इसी प्रकार इलाचन्द जोशी ने 'प्रेत और छाया' नामक उपन्यास में 'पारसनाथ' का विवाह 'हीरा' से कराकर समस्त वेश्या पात्रों को देश सेवा के कार्य में लगाते हैं।

उपन्यासकारों का यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है किन्तु वास्तविकता से अत्यन्त दूर है। वर्तमान समय में वेश्याओं से विवाह के लिए जो व्यक्ति तैयार होते हैं वे समाज के असमाजिक तत्व ही होते हैं जिनका मुख्य ध्येय वेश्या ये शादी करके उनसे वेश्यावृत्ति

कराना है और उनकी आजीविका पर निर्भर रहना है। यद्यपि आज कुछ गैर सरकारी संस्थाओं की मदद से वेश्याओं का सही व्यक्ति से विवाह कराने का प्रयत्न किया जा रहा है लेकिन यह प्रयास भी पर्याप्त नहीं हैं। 'सलाम आखिरी' उपन्यास की लेखिका 'मधु कांकरिया' का यह मानना है कि वेश्याओं से जुड़ी समस्याओं को दूर करने का सबसे अच्छा माध्यम वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिया जाना है। उन्होंने अपने उपन्यास में इस विषय पर ज्यादा चर्चा नहीं की है किन्तु उनका मानना है कि कानूनी मान्यता मिलने से इनको काफी हद तक सहूलियत मिल सकती हैं और वे गरिमापूर्ण जीवन जी सकती हैं। अगर गौर से देखा जाए तो यह उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि जिन औरतों ने इस धंधे में टिके रहने का निर्णय लिया है, उन्हें उनका हक अवश्य मिलना चाहिए। आज वेश्याएँ स्वयं देह व्यवसाय को कानूनी मान्यता दिए जाने की मांग कर रही हैं। लेकिन अभी भी उन्हें कानूनी मान्यता नहीं मिल पाई है। इसके साथ सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या कानूनी मान्यता देने से वेश्याओं के जीवन में सुधार आ जाएगा? अधिकांश समाजवैज्ञानिकों का यह मानना है कि कानूनी मान्यता देने भर से ही वेश्यावृत्ति में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हो जाएगी, जिसके फलस्वरूप लड़कियों की तस्करी में भी तीव्र वृद्धि हो जाएगी। गीता श्री ने अपनी पुस्तक 'औरत की बोली' में वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने के संदर्भ में कहा है कि–

''आज सेक्स वर्कर हमेशा पकड़े जाने, शोषण, मारपीट और इस्तेमाल किए जाने से भयभीत होती हैं। अगर उनका काम वैध होगा तो यह स्थिति बदलेगी। उनके काम को वैध ठहराने का अर्थ होगा, उन्हें वे सभी सुरक्षाएँ, जैसे मेडिकल सुविधा, बच्चों की सुरक्षा, सम्मान आदि देना जो किसी अन्य सेवा क्षेत्र के व्यक्ति को प्राप्त होती हैं। उन्हें पकड़े जाने पर दंडित और अपमानित होने का भय भी नहीं होगा।''[40]

आज आवश्यकता इस बात की है कि सरकार को ऐसे प्रयास करने चाहिए जिससे रोजगार में वृद्धि हो साथ ही शिक्षा का प्रसार भी हो जिससे लोगों शिक्षित होकर किसी सम्मानित पेशे को अपना सके।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यासों समय–समय पर वेश्याओं को आधार पर उपन्यास रचना की गई जिसके फलस्वरूप वेश्या जीवन के विविध स्वरूप उभरकर हमारे सामने आते हैं। लेखक ने अपने युग के अनुकूल वेश्या चरित्रों को हमारे सामने रखा है जिसमें समयानुसार अंतर आता गया है। लेखकों ने वेश्या जीवन के वर्णन के साथ उनके जीवन से जुड़ समस्याओं का हल सुझाने का प्रयास भी किया है जो हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

## (घ) क्या वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दी जानी चाहिए–

वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने की मांग समय–समय पर उठती रही है। कुछ लोग इसे कानूनी मान्यता दिए जाने के पक्ष में हैं और कुछ इसके विपक्ष में। हाल ही में 'हरियाणा' 'महिला आयोग' की उपाध्यक्ष 'सुमन दहिया' ने वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने के पक्ष में अपनी राय देते हुए प्रधानमंत्री कार्यालय को एक पत्र लिखा था।[41] जिसके फलस्वरूप इसे कानूनी मान्यता दिए जाने के संबंध में बहस फिर से तेज हो गई है। भारत में अभी भी वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता प्रदान नहीं की गई है और न ही इसे रोकने के लिए प्रत्यक्ष रूप से कोई कानून बना है। भारत में वेश्यावृत्ति के नियमन हेतु कानून को *'The Immoral Traffic Supression Act, 1956'* कहा जाता है। बाद में इसे 1986 में संशोधित कर *'The Immoral Traffic (Prevention) Act'* नाम दिया गया। यह कानून वेश्यावृत्ति को सीधे तौर पर प्रतिबंधित करने के बजाय सार्वजनिक स्थानों पर ग्राहक आकर्षित करने, ग्राहकों हेतु मध्यस्थ का कार्य करने, आम क्षेत्रों में वेश्यावृत्ति में लिप्त होने या होने के लिए स्थान उपलब्ध कराने एवं वेश्यावृत्ति से होने वाली आय का किसी भी अन्य व्यक्ति द्वारा उपयोग करने को अपराधिक कृत्य घोषित करता है। 'मृणाल पाण्डे' इस कानून की आलोचना करते हुए कहती हैं कि–

''मूलतः यह कानून वेश्यावृत्ति को मिटाने का प्रयास नहीं करता, बल्कि सिर्फ चकलाघर चलाने या उसके लिए घर किराये पर देने अथवा वेश्या के लिए दलाली करने को जुर्म

की संज्ञा दे देता है। फलस्वरूप, न तो यह स्वेच्छा से या अकेले वेश्यावृत्ति करने पर कोई पाबंदी लगा पाता था और न ही इस व्यापार की जड़ यानी खरीददार पर।''[42]

यद्यपि सरकार द्वारा कानून तो पारित कर दिया गया किन्तु इस कानून ने वेश्यावृत्ति को पूर्णतया गुप्त एवं अवैध कारोबार में बदल दिया। जिसके फलस्वरूप एक तरफ जहाँ वेश्याओं का भारी शोषण एवं मानवाधिकारों का हनन प्रारंभ हो गया वहीं दूसरी ओर अनेक दलालों एवं माफियाओं को फलने फूलने का अवसर मिला। यही कारण है कि वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने की मांग लगातार की जा रही है जिससे इनके शोषण पर प्रतिबंध लगाया जा सके और गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार भी मिले। कुछ वर्ष पूर्व 'कलकत्ता' के 'सोनागाछी' रेड लाइट एरिया एवं अन्य इलाकों की वेश्याओं ने वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने के पक्ष में प्रदर्शन किया। इसके अतिरिक्त आज यह भी देखने को मिलता है कि बहुत सी लड़कियाँ अपनी इच्छा से इस पेशे में आती हैं ताकि अपने शौक पूरे कर सके। इनमें से तो कुछ पढ़ी लिखी और अच्छे घरों की भी लड़कियाँ होती हैं जो सबकुछ जानते हुए भी इस पेशे को अपनाने के लिए तैयार होती हैं।

भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी यह स्थिति देखने को मिलती है। 'जापान' में ऐसे व्यवसाय को 'एंडो कोसा'[43] के नाम से जाना जाता है। अतः चारों ओर फैले इस गैरकानूनी व्यवसाय तक पुलिस हर जगह पहुँच नहीं सकती है और न ही इन पर रोक लगा सकती है। साथ ही अपनी इच्छानुसार पेशे को अपनाना संविधान के अनु0 19 के प्रतिकूल है। इसीलिए इन सब कारणों को समझते हुए वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने के पक्ष में मांग उठने लगी है। लेकिन मान्यता प्रदान करने के साथ इस बात पर भी गौर करना होगा कि कहीं इससे स्त्री देह के शोषण को खुली छूट तो नहीं प्रदान की जा रही। वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने के पक्ष एवं विपक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं उनका वर्णन इस प्रकार है। पक्ष एवं विपक्ष के तर्को के अध्ययन में हम सबसे पहले पक्ष की तरफ ध्यान केन्द्रित करेगें–

## 1.1 पक्ष–

जो बुद्धजीवी वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता प्रदान करने की बात करते हैं उनमें नीरा देसाई एवं मैत्रेयी कृष्णराज विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिन्होंने वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने का समर्थन किया। उनका मानना है कि बिना कानूनी मान्यता के भी वेश्यावृत्ति पर्दे के पीछे लगातार जारी है। जिसके फलस्वरूप स्वास्थ्य संकट, शोषण एवं मानवाधिकार के उल्लंघन जैसे अनेक संकट उत्पन्न हो रहे हैं।[44] साथ ही हमेशा पुलिस के छापे एवं पकड़े जाने का डर भी बना रहता है। इसके साथ यह भी कहा जाता है कि वेश्यावृत्ति पर रोक सामाजिक अंकुश की आड़ में व्यक्ति के अपने शरीर पर अधिकार का प्रतिकार करती है। यदि व्यक्ति को अपने मानसिक एवं शारीरिक श्रम के आधार पर आजीविका कमाने का अधिकार है यदि वह किसी अन्य के अधिकारों का उल्लंघन न करता हो, तो दो व्यक्ति के बीच आम सहमति से यदि कोई संबंध जीविकोपार्जन के उद्देश्य से बनता है तो उसे सिर्फ इस आधार पर कि वह अनैतिक है, गैर कानूनी घोषित नहीं किया जा सकता है। क्योंकि बिना कानूनी मान्यता के भी यह समस्या समाज में बनी हुई है और वर्तमान समय में तो कहीं–कहीं इसे कुछ जगहों पर वैध करार दिया गया है जिससे समाज में बालात्कार जैसी घटनाओं को रोका जा सके। अतः जब कुछ इलाकों में इसे छूट मिली हुई है तो क्यों न इसे पूर्णतया वैध घोषित कर दिया जाए। कानूनी मान्यता मिलने से बच्चों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच आसान हो जाएगी और पुर्नवास संबंधी समस्या का भी समाधान हो जाएगा। 'गीताश्री' ने इस विषय में अपना समर्थन प्रकट करते हुए कहा है कि–

''सेक्स वर्कर और यौन शोषण दोनों अलग–अलग बातें हैं। हो सकता है कि कई औरतें शोषण की वजह से इस धंधे में आई हों। लेकिन जिन औरतों ने इस धंधे में टिके रहने का फैसला किया हो, उन्हें उनका हक तो मिलना चाहिए।''[45]

संविधान में अनुच्छेद 21 के तहत गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार दिया गया है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को समाज में सम्मान के साथ जीने का अधिकार है।

जबकि सीटा और पीटा एक्ट वेश्याओं को अपराधी के रूप में देखता है। अगर इसे कानूनी मान्यता मिल जाए तो वेश्याओं को भी सम्मान के साथ जीवन जीने एवं आजीविका कमाने का आधार मिल जाएगा। 'अमेरिका' का 'नेवादा' राज्य इस विषय में सबसे अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है जहाँ सेक्स श्रमिकों को यौन श्रम को बेंचने का अधिकार है और वे उन्हें वहाँ सभी प्रकार के कानूनी अधिकार भी प्राप्त हैं।[46] इस तरह वह निडर होकर इस पेशे को अपना सकती हैं और जरूरत पड़ने पर अपने अधिकारों का प्रयोग भी कर सकती हैं। वेश्याओं पर काम करने वाली महत्वपूर्ण लेखिका 'गीताश्री' का भी यह मानना है कि वेश्याओं को कानूनी दर्जा मिलना चाहिए। उनका कहना है कि यदि मनुष्य को श्रम बेंचने का अधिकार है तो शरीर बेंचने का क्यों नहीं? उनके अनुसार–

''अगर सेक्स बेचना अनैतिक है तो खरीदना उससे बड़ा अपराध, फिर सीना ठोक कर खरीददार क्यों नहीं खड़ा होता कि हां, हमने खरीदा या हम हैं खरीददार, पकड़े जाने पर चेहरे पर मफलर लपेट कर कैसे बच निकलते हैं?.....कालगर्ल की बात छोड़ दे ंतो आप किसी भी सेक्स वर्कर से बात करें, उनमें अपने काम को लेकर कोई शरम नहीं, क्योंकि जिंदगी इस शरम से बहुत आगे की चीज है, इसलिए जरूरी है कि अगर मंडी में देह की कीमत लगती है तो देह का कानून भी लगे।''[47]

देह व्यवसाय को वैधता मिलने का एक लाभ यह भी है कि वेश्याओं को उन मध्यस्थों एवं दलालों से छुट्टी मिलेगी जो उनकी कमाई पर निर्भर रहते हैं। वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति के गैर कानूनी होने के कारण उन्हें मध्यस्थों पर निर्भर रहना पड़ता है। जिसके फलस्वरूप ये मध्यस्थ वेश्याओं का बहुत बुरी तरह से शोषण करते हैं। मध्यस्थों के अलावा पुलिस भी इसमें पीछे नहीं रहती है। मौका मिलने पर फीस के रूप में वेश्याओं से सेवा कराने में ये बिल्कुल पीछे नहीं रहते हैं। इनमें दलाल, पुलिस, कोठे के मालिक आदि वेश्याओं की कमाई में प्रमुख हिस्सा रखते हैं। वर्तमान समय में देह व्यापार का स्वरूप भी बदला है। आज तवायफों के कोठों से निकल कर यह व्यवसाय हाई प्रोफाईल सेक्स व्यापार में परिवर्तित हो गया है। जहाँ सेक्स वर्करों की ऑनलाइन

बुकिंग की जाती है और कैश ऑन डिलवरी के समान जिस तरह किसी वस्तु की सप्लाई निर्धारित स्थान पर होती है उसी प्रकार कॉलगर्ल की आपूर्ति निर्धारित समय एवं स्थान पर नगद लेने के पश्चात् ग्राहकों को की जाती है। बड़े–बड़े होटलों में एस्कार्टस के द्वारा ग्राहकों से मोटी रकम वसूल की जाती है। एस्कार्टस आजकल वेश्याओं का ही आधुनिक रूप हैं जो बड़े–बड़े होटलों एवं क्लबों के माध्यम से देह व्यवसाय चलाती हैं। साथ ही कोठों एवं रेड लाइट एरिया से निकलकर देह व्यवसाय पार्लरों एवं स्पॉ तक पहुँच गया है जहाँ यह व्यवसाय अत्यन्त तेजी से फलफूल रहा है। डांस बार को भी वेश्यावृत्ति के प्रमुख अड्डों के रूप में जाना जाता है। डांस बार में प्रायः नृत्य के माध्यम से ग्राहकों का मनोरंजन किया जाता है जिसमें नाचने वाली महिलाओं को बार के मालिक के द्वारा पारिश्रमिक दिया जाता है। साथ ही उन्हें ग्राहक अपनी इच्छानुसार टिप भी देते हैं। यह धंधा सबसे ज्यादा महाराष्ट्र में प्रचलित है। लेकिन धीरे–धीरे इसका प्रचलन भारत के अन्य राज्यों में भी बढ़ा है।

2005 में महाराष्ट्र सरकार ने डांस बार में बढ़ती अपराधिक गतिविधयों एवं वेश्यावृत्ति के कारण 'महाराष्ट्र पुलिस (संशोधन) अधिनियम 2005' पारित कर इसको पूर्णतया प्रतिबंधित कर दिया जिसे उच्चतम न्यायालय ने रद्द कर दिया था। 2014 में महाराष्ट्र सरकार ने पुनः डांस बार पूर्णतया प्रतिबंध लगाने हेतु एक विधेयक सर्वसम्मति से पारित किया था। इस नए कानून को बार के समर्थकों द्वारा चुनौती दी गई। डांस बार के समर्थकों ने उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर अपना पक्ष रखते हुए यह कहा है कि सरकार बड़े होटलों, क्लबों एवं जिमखानों में होने वाले नृत्य पर जब पाबंदी नहीं लगाती है तब डांस बारों पर प्रतिबंध कहाँ तक उचित है। इसके अतिरिक्त जब फिल्मों में भी अश्लील नृत्य पर रोक नहीं लगाई जा रही तो बार में काम करने वाली लगभग 75000 बार डांसरों से उनका रोजगार छीनना सही नहीं है। इसी कारण सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को यह आदेश दिया है कि डांस बारों एवं डांसरों पर प्रतिबंध लगाना अनुचित है और यह संविधान के अनुच्छेद 19 के विरूद्ध है जिसके अन्तर्गत नागरिकों को स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय के अनुसार नृत्य

भारतीय परंपरा का अभिन्न अंग रहा है और इस पर प्रतिबंध लगाया जाना कदापि उचित नहीं है। न्यायालय ने 26 नवंबर 2015 को एक अंतरिम आदेश पारित कर डांस बारों को पुनः खुलवाने हेतु लाइसेंस जारी करने का आदेश दिया है। यद्यपि बार समर्थकों का मानना है कि यहाँ पर सिर्फ नृत्य ही होते हैं और नृत्य पर प्रतिबंध लगाना पूर्णतया अनुचित है। किन्तु एक सत्य यह भी है कि महाराष्ट्र के लगभग 700 डांस बारों में से अधिकांश में वेश्यावृत्ति का व्यवसाय होता है। इस पर पूरी तरह से रोक लगाने से अधिकांश स्त्रियों के समक्ष वेश्यावृत्ति को अपनाने के बजाय कोई दूसरा रास्ता नहीं रह जाता है और वह पूरी तरह से इस व्यवसाय में लिप्त हो जाएगी। डांस बारों में स्त्रियाँ नृत्य करने की स्थिति में नहीं रह जाती हैं तो वह ग्राहकों को पेयपदार्थ परोसने का भी कार्य करती हैं। जबकि वेश्यावृत्ति में एक उम्र के पश्चात् वह किसी काम की नहीं रह जाती हैं। अतः बार बालाओं से उनका रोजगार छीनना पूर्णतया अनुचित हैं।

वेश्यावृत्ति में स्वास्थ्य संकट भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। लाखों वेश्याएँ एच0 आई0 वी0 पॉजिटिव एवं अन्य संक्रामक रोगों से ग्रस्त हैं। भारत में सर्वप्रथम चेन्नई में 1982 ई0 में एच0 आई0 वी0 पॉजिटिव का मामला सामने आया था। बहुत सारी वेश्याएँ ऐसी हैं जो वेश्या होने के डर से स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को डॉक्टर के पास ले जाने से डरती हैं। इस कारण उनके रोगों का ठीक से इलाज नहीं हो पाता है। इस प्रकार वह बुनियादी सुविधाओं के साथ–साथ समाज की मुख्यधारा से भी दूर होती जाती हैं। एड्स जैसी बीमारियों को दूर करने के लिए उन्हें समाज से जोड़ने एवं बुनियादी आवश्यकताओं के लिए इसे कानूनी मान्यता देना अत्यन्त आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त यह भी मान्यता है कि इस व्यवसाय में तीस लाख से ज्यादा लोग जुड़े हुए हैं। यह आंकड़ें तो सिर्फ गैर सरकारी संगठनों द्वारा इकट्ठे किए गए हैं। अगर इसे कानूनी मान्यता प्रदान कर दी जाए तो इनके विषय में सही आंकड़े इकट्ठे किए जा सकेगें जिससे सामाजिक सुरक्षा का लाभ भी इन्हें पहुँचाया जा सके। साथ ही इसके नियमन से अवैध व्यापार एवं मानव तरस्करी को रोका जा सकेगा। साथ ही कानूनी मान्यता मिल जाने से सेक्स वर्कर्स भी श्रम कानूनों के अन्तर्गत आ सकेगें और

किसी भी श्रमिक की तरह संगठित हो सकेगें। साथ ही उन्हें अपनी आगे आने वाली पीढ़ी का भविष्य सुधारने  एवं शोषण के विरूद्ध लड़ने का मौका मिलेगा।

इस प्रकार वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता मिलने से जहाँ वेश्याओं को अनेक लाभ होंगे वहीं सरकार को भी मानव तरस्करी पर लगाम लगाने के लिए तैयार रहना होगा क्योंकि जैसे ही वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता प्राप्त होगी वैसे ही मानव तरस्करी एवं अवैध व्यापार की घटनाएँ भी बढ़ जाएगीं। साथ ही भारत में वेश्यावृत्ति में लिप्त विशाल जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए व्यापक स्तर पर संरचनात्मक एवं मानव संसाधन की आवश्यकता होगी। इसके लिए हॉलैण्ड जैसे देशों की तरह उनकी आय पर कर का प्रावधान किया जा सकता है जिससे सरकार के आय के स्त्रोतों में वृद्धि भी संभव हो सकेगी।

## 1.2 विपक्ष–

वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने का जो लोग विरोध करते हैं उनका मानना है कि भारतीय संस्कृति में नारी को सदैव सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। उनका मानना है कि जब दास व्यवस्था और सती प्रथा जैसी कुप्रथाएँ समाप्त की जा सकती हैं तो वेश्यावृत्ति क्यों नहीं? आखिर क्या कारण है ऐसी व्यवस्था के बने रहने का? वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता देने से पूर्व सेक्स वर्कर्स फोरम, केरल नामक संगठन ने यह प्रश्न उठाया है कि जब भारत में हजारों की संख्या में काम करने वाले कृषि श्रमिकों, मजदूरों एवं हस्तशिल्प कामगारों को कोई लाइसेंस नहीं दिया जाता तो फिर वेश्याओं को क्यों दिया जाए?[48] ऐसे कानून को जो किसी के आत्मसम्मान पर रोज प्रहार करता हो, जो हर पल शोषण के दंश को झेलने के लिए मजबूर करे, कभी मान्यता प्रदान नहीं की जानी चाहिए। साथ ही यह तर्क भी दिया जाता है कि इस पेशे में कोई अपनी इच्छा से नहीं आता है। लेकिन इस पेशे को कानूनी मान्यता दे दी जाए तो वह संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार गरिमापूर्ण जीवन जी सकेगीं। 'अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' का भी यह मानना है कि इस पेशे को अधिकांश स्त्रियाँ मजबूरी में अपनाती हैं। क्योंकि जब उनके पास

अर्थोपार्जन का कोई साधन नहीं बचता तब वह इस पेशे को अपनाने के लिए मजबूर होती हैं। यह ऐसा पेशा है जिसमें एक स्त्री को अपनी आत्मा और आत्मसम्मान के साथ समझौता करना पड़ता है। ऐसे लोगों को यदि गरिमापूर्ण जीवन दिलाना है तो इसे कानूनी मान्यता देने के बजाय उनके लिए वैकल्पिक आय और रोजगार की व्यवस्था करनी चाहिए। सरकार द्वारा इनके लिए रोजगार प्रशिक्षण का प्रबंध करना चाहिए जिससे ये राष्ट्र के संसाधन के रूप में उभर सके। इसके अतिरिक्त यह भी देखने में आता है कि जो लोग वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता देने की बात करते हैं उन्हें 'जर्मनी' की तरफ ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जहाँ 2002 से वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दे दी गई है किन्तु इसके बावजूद वेश्याओं की दशा में ज्यादा सुधार देखने को नहीं मिलता है। यद्यपि सरकार की मंशा इनकी सामाजिक, आर्थिक एवं संवैधानिक स्थिति में सुधार करने की थी। किन्तु कानूनी मान्यता के बावजूद यह प्रयास सफल नहीं हो सका।[49] इसका प्रमुख कारण यह है कि आज भी वहाँ वेश्याओं को औरत के रूप में नहीं बल्कि वेश्या के रूप में ही देखा जाता है और समाज के लिए कलंक माना जाता है। इसी कारण कई वेश्याओं सरकारी रिकार्ड में अपना नाम पंजीकृत नहीं कराती जिससे लोगों के सामने उनकी पहचान छुपी रहे। इस समस्या को बढ़ाने की बजाय इसे जड़ से समाप्त करना चाहिए। किसी भी देश के लिए इससे ज्यादा शर्म की और क्या बात हो सकती है कि उसकी तीस लाख आबादी दो वक्त की रोटी के लिए अपना शरीर बेंचने के लिए मजबूर हों। वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने के पक्ष में एक तर्क यह भी दिया जाता है कि यह विश्व का सबसे पुराना धंधा है। अतः इसे बन्द कराना अत्यन्त कठिन है। किन्तु इसका समर्थन करने वालों को थाईलैंड एवं पश्चिम के देशों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जहाँ इसको कानूनी मान्यता देने के कारण वेश्यावृत्ति में काफी तेजी से वृद्धि हुई है। जबकि चीन, क्यूबा एवं सोवियत संघ जैसे देशों में दलालों पर लगाम लगाए जाने के फलस्वरूप इसमें कमी आई है।[50] इस कारण इसको कानूनी मान्यता देने के बजाए रोकने का प्रयास किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त एक सवाल यह भी उठता है कि क्या इसे कानूनी मान्यता दे देने से सामाजिक स्वीकार्यता मिल जाएगी? क्या लोग वेश्या एवं वेश्यावृत्ति को आसानी से स्वीकार कर लेगें और उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखेगें। वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता मिलने के साथ ही मानव व्यापार एवं अपहरण की घटनाएँ और बढ़ जाएगीं। अभी तो सीटा एवं पीटा एक्ट एवं भारतीय दंड सहिता की धारा 372 एवं 373 के तहत सार्वजनिक जगहों पर वेश्यावृत्ति पर प्रतिबंध लगाता है और इसके लिए स्थान आदि उपलब्ध कराने को अपराधिक कृत्य घोषित करता है। यदि इन कानूनों को समाप्त कर दिया जाएगा तो अभी तक जो कार्य पर्दे के पीछे चल रहा था अब वह खुलेआम होने लगेगा और हर गली मोहल्ले में वेश्यावृत्ति आरंभ होने लगेगी जिससे समाज पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसके साथ ही परिवार रूपी संस्था भी संकट में आ जाएगी। साथ ही अव्यस्क युवा मन पर भी इसका खराब प्रभाव पड़ेगा। साथ ही वेश्या व्यवसाय को खुली छूट मिलने पर माफियाओं द्वारा कई जगहों वेश्यालय खोले जाएगें जिससे महिलाओं एवं कम उम्र के लड़कियों की तरस्करी बढ़ जाएगी। जिसका सबसे ज्यादा बुरा प्रभाव युवाओं पर पड़ेगा। साथ ही ऐसे व्यवसाय में विदेशी ताकतें भी हमारे देश के युवा शक्ति को क्षीण करने के लिए निवेश कर सकती हैं। जिससे समाज और देश की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता दिए जाने के पक्ष में यह भी कहा जाता है कि इससे वेश्याओं के स्वास्थ्य में सुधार होगा तथा उससे होने वाले यौन रोगों के प्रसार को भी रोका जा सकेगा। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या यौन रोग का प्रमुख स्रोत वेश्याएँ ही हैं या वे लोग भी जो वेश्यागामी होते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है उन वेश्यागामी ग्राहकों की जाँच कड़ाई से जाँच की जाए जिनकी वजह से यह रोग फैलते हैं और उनकी कड़ाई जाँच की जाए। सिर्फ वेश्याओं को जिम्मेदार ठहराने एवं उनके स्वास्थ्य में सुधार लाने से काम नहीं चलने वाला है। मृणाल पाण्डे भी इस बात का समर्थन करते हुए कहा है कि–

''क्या यह भी एक अजीब भ्रांति नहीं कि हर बार जब हम यौन–रोगों की रोकथाम की बात करते हैं, वेश्या को ही उसका इकलौता स्रोत मान कर बहुस्त्रीगामी पुरूष के दायित्व को एकदम नजरअंदाज करते हैं? क्या दवादारू से ठीक होकर भी वेश्या को ऐसे ग्राहकों से पुनः छूत लगने का खतरा नहीं बना रहेगा।''[51]

कुछ लोगों के अनुसार यह व्यवसाय एक तरह से सुरक्षा वाल्व की तरह हैं जिससे उद्दण्ड प्रकृति के लोग समाज के साधारण व्यक्तियों को दूषित नहीं करेगें और बालात्कार जैसी घटनाओं को रोका जा सकता है। किन्तु जहाँ एक तरफ बालात्कार जैसी घटनाओं को रोकने का प्रयास किया जा रहा है वहीं दूसरी तरफ एक वेश्या के साथ रोज न जाने कितनी बार बालात्कार किया जाता है। यद्यपि वह धन कमाने के उद्देश्य से होता है लेकिन उसमें किसी भी स्त्री की इच्छा शामिल नहीं होती है। अगर उसके पास धन कमाने का कोई अन्य साधन हो तो वह कभी इस पेशे को नहीं अपनाएगी। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या सरकारी मान्यता देने से समस्या का समाधान हो जाएगा? अनेक रिर्पोट एवं अध्ययन के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि जहाँ भी वेश्यावृत्ति पर रोक लगाई गई है वहाँ कभी भी बलात्कार की संख्या में वृद्धि नहीं हुई। यहाँ तक कि जहाँ वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता प्राप्त है वहाँ भी बलात्कार जैसी घटनाएँ होती रहती हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध यौनशास्त्री किंसी का यह मानना है कि पुरूषों की उग्र कामुकता प्राकृतिक न होकर समाज द्वारा सिखाई गई होती है। इसके साथ अश्लील सिनेमा एवं साहित्य भी कामवासना को हिंसा से जोड़कर प्रस्तुत करते हैं जिसके फलस्वरूप पुरूषों के मन में आदर्श प्रेम की छवि वासना एवं उत्पीड़न के रूप में उभरती है जो किसी भी सभ्य समाज के लिए सही नहीं है। 19 जुलाई 2012 में उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर और ज्ञानसुधा मिश्रा की खंडपीठ ने वेश्याओं के संदर्भ में यह निर्णय दिया कि–

''सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित समिति सेक्स वर्कर्स, जो सम्मानपूर्वक इस कार्य को जारी रखना चाहती हैं, के लिए अनुकूल स्थितियों के निर्माण पर सुझाव मांगा गया।''[52]

किन्तु 26 जुलाई को तत्कालीन एडिशनल सॉलिसिटर जनरल के आवेदन पर माननीय न्यायालय ने शब्दों को परिवर्तित कर 'जो इस कार्य को जारी रखना चाहती हैं' भाग को हटा दिया गया। अब परिवर्तित पंक्ति इस प्रकार है–

''संविधान के अनुच्छेद 21 के प्रावधानों के अनुरूप सम्मानित जीवन जीने के अधिकार को सुनिश्चित करने हेतु सेक्स वर्कर्स के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण।''[53]

न्यायमूर्ति ज्ञानसुधा मिश्र ने जो इस खंडपीठ की सदस्या थी, ने अपनी टिप्पणी में स्पष्ट कहा है कि हमने यह सुनावाई उन लोगों के जीवन में सुधार एवं बेहतर विकल्प के लिए की है जो किसी दबाववश इस व्यवसाय में आई हैं न कि उन लोगों के लिए जो इस पेशे को जारी रखना चाहती हैं। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय भी इसे बढ़ावा देने के पक्ष में नहीं है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हमारे समाज में वेश्यावृत्ति का इतिहास यद्यपि बहुत पुराना है किन्तु ऐसा नहीं है कि इसको समाप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि कोई भी कार्य असंभव नहीं है। जब दास प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह की समस्या को सुलझाया जा सकता है तो वेश्यावृत्ति के लिए समाधान क्यों असंभव है। भारत के संविधान में भी सभी नागरिक को ससम्मान जीवन जीने का अधिकार दिया गया है लेकिन वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता देकर इस समस्या का हल बिल्कुल नहीं है बल्कि यह समस्या को और बढ़ावा देने के समान है। आज आवश्यकता इस बात की है जो तीस लाख लोग इस व्यवसाय में लिप्त हैं उन्हें इस व्यवसाय से निकाला जाए और उनके जीविकोपार्जन के लिए वैकल्पिक व्यवसाय एवं प्रशिक्षण मुहैया कराया जाना चाहिए जिससे वे जीविका हेतु अन्य साधनों को अपना सके। इसके अतिरिक्त रेड लाइट एरिया में स्वास्थ्य की सुरक्षा हेतु मुफ्त चिकित्सा सुविधा भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए। साथ ही वेश्याओं के बच्चों की शिक्षा के लिए सरकार को गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर कार्य करना चाहिए और भविष्य को अंधकार के गर्त में डूबने से बचाना चाहिए जिससे वे देश के निर्माण अग्रसर हो सके।

# संदर्भ ग्रंथ सूची–


1. गीताश्री, सपनों की मंडी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ0 सं0 98।

2. वही, पृ0 सं019।

3. वही, पृ0 सं0 19।

4. वही, पृ0 सं0 20।

5. लुइज ब्राउन, अनुवाद कल्पना शर्मा, यौन दासियाँ एशिया का सेक्स बाज़ार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2008, पृ0 सं0 161।

6. गीताश्री, सपनों की मंडी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ0 सं0 20।

7. वही, पृ0 सं0 21।

8. दैनिक जागरण, लेख–भारत में मानव तरस्करी, 25 अक्टूबर 2015।

9. गीताश्री, सपनों की मंडी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ0 सं0 21।

10. लुइज ब्राउन, अनुवाद कल्पना शर्मा, यौन दासियाँ एशिया का सेक्स बाज़ार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2008, पृ0 सं0 164।

11. वही, पृ0 सं0 182।

12. वही, पृ0 सं0 162।

13. वही, पृ0 सं0 162।

14. वही, पृ0 सं0 162।

15. डॉ0 सोती शिवेन्द्र चन्द्र, भारत में सामाजिक समस्याएँ, कनिष्का प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2002, पृ0 सं0 285।

16. डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2004, पृ0 सं0 375।

17. वही, पृ0 सं0 376।

18. लुइज ब्राउन, अनुवाद कल्पना शर्मा, यौन दासियाँ एशिया का सेक्स बाज़ार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2008, पृ0 सं0 161।

19. डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2004, पृ0 सं0 376।

20. वही, पृ0 सं0 377।

21. डॉ0 सोती शिवेन्द्र चन्द्र, भारत में सामाजिक समस्याएँ, कनिष्का प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2002, पृ0 सं0 285।

22. वही, पृ0 सं0 284।

23. वही, पृ0 सं0 284।

24. डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2004, पृ0 सं0 374।

25. वही, पृ0 सं0 377।

26. गीताश्री, सपनों की मंडी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ0 सं0 46।

27. वही, पृ0 सं0 47।

28. *'Report of the Advisory committee on social and moral hygiene'*, दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2004, पृ0 सं0 344।

29. दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2004, पृ0 सं0 369।

30. अरूण टिकेकर, लोकसत्ता पुणे, 25 मार्च 1997, अंक 28, पृ0 2।

31. दृष्टव्य है, डॉ0 गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, नगरीय समाजशास्त्र, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2004, पृ0 सं0 369।

32. वही, पृ0 सं0 370।

33. डॉ0 शारदा अग्रवाल, द्विवेदी युगीन हिन्दी उपन्यास, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम सं0, 1967, पृ0 सं0 108–109।

34. ऋषभचरण जैन, चम्पाकली, ऋषभचरण जैन एवं सन्तति नई दिल्ली 2, चौथा सं0 1984, पृ0 सं0 30–31।

35. अमृतलाल नागर, सुहाग के नुपूर, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, छठां सं0 2011, पृ0 सं0 192।

36. डॉ0 रांगेय राघव, घरौंदा, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट दिल्ली–6, प्रथम सं0, 1967, पृ0 सं0 256।

37. देवेश ठाकुर, इसीलिए, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ0 सं0 58।

38. शैलेष मटियानी, बावन नदियों का संगम, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली 2010, पृ0 सं0 11।

39. वही, पृ0 सं0 11।

40. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 44।

41. लेख– क्या वेश्यावृत्ति को भारत में कानूनी मान्यता दी जानी चाहिए?, दृष्टि द विजन, विकास दिव्यकीर्ति, अंक 3 सिंतबर 2015, पृ0 सं0 252।

42. मृणाल पाण्डे, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 1987, पृ091।

43. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 39।

44. *Neera Desai and Maitreyi Krishnaraj, among the first generation of modern feminist scholars in India, express their dilemma in accepting licensing and legalization as a solution. They feel that though it is hard to treat legalization and licensing as a solution, by not doing anything we wuld be condenmning millions of women to a life of hell. They point out that when feminists talk of licensing or collectivization, they are concerned with protecting the women from dire exploitation like excessive hours of work, bad working conditions, ill treatment and the like.*

K. Sudha, Prostitution Laws, An Enigma and Some Dilemmas, Bibliophile South Asia, New Delhi, 2015, page 140.

45. वही, पृ0 सं0 45।

46. लुइज ब्राउन, अनुवाद कल्पना शर्मा, यौन दासियाँ एशिया का सेक्स बाज़ार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2008, पृ0 सं0 165।

47. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 46।

48. *'There are mllions of africultural labourers, construction workers, and handicraft workers in India and none is licenced to work. So why should sex workers?''*

Sex Work, edited by Prabha Kotiswaran, women unlimited an associate of kali for women, New Delhi, first edition, 2011, page 269.

49. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 2011, पृ0 सं0 73।

50. मृणाल पाण्डे, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0 1987, पृ0 92।

51. वही, पृ0 सं0 92।

52. दैनिक जागरण, उत्तर प्रदेश, संपादक संजय गुप्ता, 23 अक्टूबर 2015, पृ0 8।

53. वही, पृ0 8।

# उपसंहार

वेश्या जीवन की समस्या को लेकर अनेक लेखकों एवं समाजशास्त्रियों ने काम किया है। साहित्य का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। हिन्दी साहित्य में 'प्रेमचंद' ने वेश्या जीवन की समस्या को मुखर रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि प्रेमचंद के पूर्व के लेखकों ने अपने उपन्यासों में वेश्या जीवन का वर्णन किया है किन्तु वेश्याओं को उन्होंने अत्यन्त हीन दृष्टि से देखा है। साथ ही वेश्यावृत्ति के मूल कारणों की उपेक्षा की है। इन लेखकों ने सामाजिक पतन को रोकने के लिए वेश्याओं के होने को अत्यन्त आवश्यक बताया है। उनके अनुसार समाज से अगर वेश्यावृत्ति खत्म हो जाएगी तो हिन्दू नारियों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी और आगे चलकर वे इस काम को करने लगेगीं। किन्तु यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि अपनी सुरक्षा एवं सम्मान के लिए किसी अन्य स्त्री को अनैतिक कार्य करने एवं नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करना क्या उचित है? जिन असंयमी व्यक्तियों के कामसुख या यौनाचार के लिए वेश्यावृत्ति का समर्थन किया जाता है क्या वह यह जानते हैं कि आगे चलकर उसका जीवन किस प्रकार व्यतीत होता है? साथ ही वेश्यावृत्ति को अपनाने वाली स्त्रियों में अधिकांश निम्न जातियों से आती है, आखिर ऐसा क्यों है? जो स्त्रियाँ अपनी इच्छा या शौक से पेशे को अपनाती है, उनको यह व्यवसाय करने से रोकना कठिन है। शायद उन पर लगाम लगाई भी नहीं जा सकती है। किन्तु जिन स्त्रियों एवं नाबालिग लड़कियों को मानव तस्करी करके इस पेशे में लाया जा रहा है, उनके लिए प्रभावी कानून बनाने की आवश्यकता है। साथ ही उन कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू भी किया जाए जिससे हम उन स्त्रियों एवं बच्चों को इस पेशे में जाने से रोक सके जो उन्हें गरिमापूर्ण जीवन जीने से भी वंचित कर देता है।

वेश्यावृत्ति का चलन हमारे समाज में प्राचीन काल से ही रहा है। उस काल में वेश्याओं को 'गणिका', 'नगरवधू' तथा 'वारवधू' जैसे नामों से जाना जाता था। साथ ही

वेश्यावृत्ति को राज्य का संरक्षण भी प्राप्त था। ऐतिहासिक उपन्यासों में हमें यह देखने को मिलता है कि प्राचीन काल में वेश्या जीवन के कारण तथा उनकी समस्याएँ आज के वेश्याओं से कुछ भिन्न थी। 'आचार्य चतुरसेन शास्त्री' ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' और 'अमृतलाल नागर' ने 'सुहाग के नूपुर' में नगरवधुओं की समस्याओं को सामने रखा है। 'वैशाली की नगर वधू' प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें नायिका 'अम्बपाली' के माध्यम से तत्कालीन वेश्या जीवन का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि वेश्यावृत्ति को समाज के साथ–साथ राज्य का संरक्षण भी प्राप्त था। इस उपन्यास में लेखक ने 'अम्बपाली' के चरित्र द्वारा बौद्धकालीन सामंती व्यवस्था में स्त्री की दशा को अभिव्यक्त किया है। 'अमृतलाल नागर' ने अपने उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' के माध्यम से वेश्या जीवन एवं उसके यथार्थ को सामने रखा है। 1960 में प्रकाशित 'सुहाग के नूपुर' ईसा की प्रथम शताब्दी में महाकवि 'इलंगोवन' रचित तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' की कथावस्तु पर आधारित है। इसमें लेखक ने प्रेम त्रिकोण को दिखाते हुए यह स्पष्ट किया है कि पुरूष पत्नी को न तो कभी देवी का दर्जा दे सकता है न वेश्या को पत्नी का।

वेश्यावृत्ति की समस्या के समाधान के लिए सरकार द्वारा कई बार यह प्रयत्न किया गया कि वेश्याओं को उनकी जगहों से विस्थापित कर कहीं और बसाया जाए। यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि क्या वेश्याओं के विस्थापन से वेश्यावृत्ति की समस्या सुलझ जाएगी? इसी प्रश्न को आधार बनाकर 1961 में 'लक्ष्मीनारायण लाल' ने 'छोटी चम्पा बड़ी चम्पा' नामक सामाजिक यथार्थपरक उपन्यास लिखा। यह उपन्यास वेश्याओं के विस्थापन की समस्या से जुड़ा हुआ है। इस उपन्यास में लेखक ने यह दिखाया है कि सरकारी आदेश के अनुसार वेश्याओं को अपनी जगह छोड़ने के लिए मजबूर किया जाता है किन्तु अपनी जगह से विस्थापित होकर आखिर वे कहाँ जाए, कैसे अपना जीवन निर्वाह करे इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं रहता है। इसी प्रकार शैलेष

मटियानी ने अपने उपन्यास 'दो बूँद जल' में रेशमा नामक वेश्या पात्र के माध्यम से एक वेश्या माँ की व्यथा को प्रस्तुत किया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन के स्वरूप में धीरे–धीरे कुछ परिवर्तन भी दिखाई देता है। प्राचीन काल में वेश्याओं का यह रूप देवदासियों, गणिकाओं व नाच–गाना अर्थात् मुजरा करने वाली के रूप में हमारे सामने आता है। किन्तु वर्तमान समय में वेश्यावृत्ति का रूप बदलने लगा है।

वर्तमान समय में अर्थव्यवस्था के तेजी से विस्तार एवं बेरोजगारी के कारण गांव से शहर की ओर विस्थापन की प्रक्रिया लगातार जारी है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप महानगरों में गन्दी बस्तियों तथा झुग्गी–झोपड़ियों का विस्तार अत्यन्त तीव्रता से हो रहा है। वेश्यावृत्ति और अपराध–कर्म का विकास यहाँ विशेष रूप से हुआ है। 'दिल्ली' का जी• बी• रोड, कलकत्ता' का 'सोनागाछी रेड लाइट एरिया' एवं मुम्बई का 'कामाठीपुरा' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में महानगरीय जीवन के अन्तर्गत वेश्या जीवन के यथार्थ को पूरी सजीवता के साथ पाठकों के समक्ष रखा गया है जो कि 'इंडिया शाइनिंग' की सच्चाई को बयान करते हैं। 'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित' का उपन्यास 'मुरदा घर' में गंदी बस्तियों एवं झुग्गी–झोपड़ियों में रहने वाली वेश्याओं की दीन स्थिति का वर्णन किया गया है। लेखक ने अपने उपन्यास में दिखाया है कि किस प्रकार 'मुम्बई' जैसे बड़े महानगर में वेश्याएँ पशुओं के समान जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। इस उपन्यास में 'शांति', 'मैनाबाई', 'नूरन', 'बशीरन',' चंद्री' जैसी अनेक वेश्या पात्र हैं जो आर्थिक तंगी के चलते वेश्यावृत्ति को अपनाने व पुलिस के अत्याचार सहने के लिए मजबूर हैं। 'जैनेन्द्र' के उपन्यास 'दशार्क' की पात्र 'रंजना' घर की आर्थिक स्थिति खराब हो जाने के कारण वेश्यावृत्ति को अपना पेशा बनाती है। 'रंजना' में अपने पेशे को लेकर व्यावसायिक ईमानदारी है। वह अपने हर ग्राहक को सन्तुष्ट करना अपना धर्म समझती है। 'मोहनदास नैमिशराय' के उपन्यास 'आज बाजार बंद है' में दलित वेश्या के संघर्ष को

प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उन पर सवर्णों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों तथा उन्हें बलपूर्वक देवदासी बनाने का भी वर्णन किया गया है। उपन्यास में लेखक ने समाज की स्थितियों का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि वेश्यावृत्ति को बनाए रखने के पीछे कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य रहा है, इसी कारण वेश्यावृत्ति का उन्मूलन अभी तक संभव नहीं हो सका है।

इस उपन्यास की प्रमुख पात्र 'पार्वती' एक दलित वेश्या है जिसे देवदासी बनने के लिए मजबूर किया जाता है और आगे चलकर उसे एक दलाल द्वारा शहर में बेच दिया जाता है। जहाँ पर उसे देह व्यापार करने के लिए मजबूर किया जाता है। उपन्यास के अंत में 'सुमीत' नामक पात्र की सहायता से वह वेश्यावृत्ति को छोड़ने में सफल होती है तथा अन्य वेश्याओं को इससे मुक्ति दिलाने का प्रयास करती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यासों समय–समय पर वेश्याओं को आधार पर उपन्यास रचना की गई जिसके फलस्वरूप वेश्या जीवन के विविध स्वरूप उभरकर हमारे सामने आते हैं। उपन्यासकारों ने वेश्या के करूण संदर्भों को समूची संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने इस बात पर बल भी दिया है कि सबसे पहले हमें उन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारणों की पड़ताल करनी चाहिए जो किसी भी स्त्री को देह व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य करते हैं। साथ ही साथ हमें उन समस्याओं को दूर करने का प्रयास भी करना चाहिए। उपर्युक्त उपन्यास इस अर्थ में महत्वपूर्ण हैं कि ये न केवल वेश्या जीवन के यथार्थ को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं बल्कि वेश्याओं को वेश्याओं की तरह नहीं बल्कि एक मनुष्य के रूप में देखे जाने और उनके साथ वैसा व्यवहार किए जाने की मांग भी करते हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि आगे चलकर सरकारी एवं व्यक्तिगत रूप से ऐसे प्रयास किए जाएगें जिसके फलस्वरूप हम उन बहनों को इस व्यवसाय में जाने से बचा सकेगें।

# आधार ग्रंथ–


1. मधु कांकरिया — सलाम आखिरी, राजकमल पेपरबैक्स, पहला संस्करण, दिल्ली, 2007
2. अमृतलाल नागर — सुहाग के नुपूर, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, छठा संस्करण, 2011
3. जैनेन्द्र — दशार्क, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991
4. लक्ष्मीनारायण लाल — बड़ी चम्पा छोटी चंपा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968
5. शैलेष मटियानी — दो बूँद जल, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2010
6. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित — मुरदा घर, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पहली आवृत्ति,दिल्ली, 2011
7. चतुरसेन शास्त्री — . वैशाली की नगरवधू
8. मोहनदास नैमिशराय — आज बाजार बंद है, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 2006

**संदर्भ ग्रथ–**


1. किशोरी लाल गोस्वामी — कुसुम कुमारी, सुदर्शन प्रेस, वृन्दसवन,सं.1889।
2. प्रेमचंद — सेवासदन, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009।
3. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' — शराबी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली 6, 1930।
4. ऋषभचरण जैन — चम्पाकली, ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली 2, चतुर्थ संस्करण 1984।
5. गीताश्री — सपनों की मंडी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012।
6. गीताश्री — औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011।
7. लुइस ब्राउन — एशिया का सेक्स बाजार, अनुवादक कल्पना वर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,

द्वितीय संस्करण 2008।

8. प्रियदर्शिनी विजयश्री — देवदासी या धार्मिक वेश्या एक पुनर्विचार, अनुवादक विजय कुमार झा वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010।

9. रवीन्द्र कुमार जैन — उपन्यास का सिद्धान्त और संरचना नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, प्रथम संस्करण 1972।

10. संपादक राजकिशोर — आज के प्रश्न–स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति 2010।

11. मन्मथनाथ गुप्त — स्त्री पुरूष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005।

12. जॉन स्टुअर्ट मिल — अनुवादक प्रगति सक्सेना स्त्रियो ं की पराधीनता, राजकमल विश्व क्लासिक, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति 2009।

13. रजनी तिलक — कविता संग्रह– हवा सी बेचैन युवतियाँ स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,

2014

14. उत्तम कांबले — अनुवादक–किशार कांबले
देवदासी, संवाद प्रकाशन
मेरठ, प्रथम संस्करण 2008

15. डॉ0 सोती शिवेन्द्र चन्द्र — भारत मे ं सामाजिक समस्याएँ
कनिष्का प्रकाशन
नई दिल्ली, प्रथम सं0 2002

16. रामविनोद सिंह — आठवें दशक के हिन्दी
उपन्यास
अनुपम प्रकाशन
प्रथम संस्करण 1980

17. डॉ0 गणेश पाण्डेय
अरूणा पाण्डेय — नगरीय समाजशास्त्र
ाधा प्रकाशनए
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,
2004

18. क्षमा गोस्वामी — नगरीकरण और हिन्दी
उपन्यास
जयश्री प्रकाशन
दिल्ली, प्रथम सं0 1981

19. ओम प्रकाश शर्मा — प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में
नाटकीय तत्व
विक्रम प्रकाशन
दिल्ली, 1987

20. डॉ0 शिवकुमार शर्मा, — हिन्दी साहित्यः युग और

प्रवृत्तियाँ
अशोक प्रकाशन
दिल्ली, छठा संस्करण, 1973

21. डॉ0 शारदा अग्रवाल, द्विवेदी युगीन हिन्दी उपन्यास
विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन
लखनऊ, प्रथम सं0, 1967

22. डॉ0 रांगेय राघव घरौंदा
राजपाल एण्ड सन्स
कश्मीरी गेट दिल्ली–6, प्रथम
सं0,1967

23. शैलेष मटियानी बावन नदियों का संगम
सत्साहित्य प्रकाशन
दिल्ली 2010

24. मृणाल पाण्डे स्त्री देह की राजनीति से देश
की राजनीति तक
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली, प्रथम सं0 1987

25. डॉ0 डी0 एस0 बघेल नगरीय समाजशास्त्र
मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ
अकादमी
भोपाल, 1988

26. रामचन्द्र तिवारी हिन्दी का गद्य साहित्य,
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी, छठां संस्करण 2007

27. डॉ0 रत्नाकर पाण्डेय उग्र और उनका साहित्य

नागिरी प्रचारिणी सभा
वाराणसी, प्रथम संस्करण सं0
2026 वि0

28. डॉ0 सुरेश बत्रा अमृतलाल नागर — व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त
पंचशील प्रकाशन
जयपुर, प्रथम संस्करण 1979।

29. यशपाल — दिव्या
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, संस्करण 2005

30. भगवतीचरण वर्मा — तीन वर्ष
भारती भण्डार, लीडर प्रेस
इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण,
सं0 2006

31. इलाचन्द्र जोशी — पर्दे की रानी,
भारती भण्डार
लीडर प्रेस, प्रयाग, तृतीय
संस्करण, सं0 2008

32. उषादेवी मित्रा — जीवन की मुस्कान
सरस्वती प्रेस बनारस, चतुर्थ
संस्करण, 1948

33. भगवती प्रसाद वाजपेयी — पतिता की साधना
छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग, चतुर्थ
संस्काण, 1956

34. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला — अप्सरा

गंगा पुस्तक माला प्रकाशन
लखनऊ, आठवाँ संस्करण,
1962

35. जयशंकर प्रसाद — कंकाल
भारती भण्डार, लीडर प्रेस
इलाहाबाद, नवाँ संस्करण,
2016 वि0

36. चन्द्रशेखर पाठक — वारांगना रहस्य, प्रथम भाग
पाठक एण्ड कम्पनी
कलकत्ता, द्वितीय संस्करण,
1916

37. लज्जाशर्मा मेहता — आदर्श हिन्दू भाग–3
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग, 1928

38. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — आधुनिक हिन्दी साहित्य
हिन्दी परिषद
इलाहाबाद, तृतीय संस्करण,
अप्रैल 1954

39. डॉ0 बालकृष्ण गुप्त — हिन्दी उपन्यास सामाजिक
सन्दर्भ
अभिलाषा प्रकाशन
कानपुर, प्रथम संस्करण, 1978

40. अमृतलाल नागर — ये कोठेवालियाँ,
लोकभारती पेपरबैक्स,
इलाहाबाद, 2008

41. सरला मुद्गल — आज की आम्रपाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993

42. डॉ0 देवी प्रसाद मिश्र — जैन पुराणो ं का सांस्कृतिक अध्ययन हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1988

43. विजयनाथ — द पौराणिक वर्ल्ड मनोहर प्रकाशन नई दिल्ली, 2009

44. डॉ0 उदयनारायण राय — प्राचीन भारत मे ं नगर तथा नगर–जीवन हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1965

45. शिवनारायण टण्डन — स्त्रियों और बच्चियों का व्यापार शारदा सदन प्रयाग, 1934

46. सुमन आप्टे — सामाजिक समस्या विद्या प्रकाशन नागपुर, प्रथम आवृत्ति, 1991

47. यादव राजेन्द्र — कहानी स्वरूप और संवेदना

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,
छठा संस्करण 2007

## पत्र एवं पत्रिकाएँ–

1 समयांतर, प्रकाशक पंकज बिष्ट, अंक जून 2012, दिल्ली।
2. वर्तमान साहित्य, संपादक नमिता सिंह, अंक मार्च 2013, दिल्ली।
3. दृष्टि द विजन, विकास दिव्यकीर्ति, अंक 3 सिंतबर 2015।
4. दैनिक जागरण, लेख–भारत मे ं मानव तरस्करी, 25 अक्टूबर 2015।

## संस्कृत–

1.कौटिल्य, अर्थशास्त्र, संपादक आर शामाशास्त्री मैसूर तृतीय संस्करण 1929। अनुवादक उदयवीर शास्त्री।
2. ब्रह्मपुराण, संपादक क्षेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, 1906।
3. मनुस्मृति, कुल्लूक भटट कृत टीका सहित निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1946।
4. महाभारत, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1834 39, नीलकंठ की टीकासहित 1929 1933।
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, अपरादित्य टीका सहित, आनंदआश्रम, संस्कृत सीरीज पूना, 1903 04, संपादक नारायण शास्त्री, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
6. कामसूत्र ( वात्सयायन कृत ), जय मंगला टीका सहित, संपादक डी एल गोस्वामी, वाराणसी 1929।
7. मृच्छकटिक, ( शूद्रक कृत ), टीकाकार तथा अनुवादक श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, चतुर्थ संस्करण, 1980।

**English books-**

1. Promilla Kapur, The life and world of call girls in india, vikas publishing house pvt. Ltd., 1987

2. Ganga Prasad upadhyaya, Marriage and married life, arya samaj chowk, Allahabad, 1942.

3. Dennis E. Poplin, social problems, scott foresman and company, 1978.

4. Sex Work, edited by Prabha Kotiswaran, women unlimited an associate of kali for women, New Delhi, first edition, 2011.

5. Ellis Hovelock, Sex in Relation to Society, The Classics publication, United State, 2013.

6. William Adrian Bonger, Translated by Henry P Horton, Criminality And Economic Conditions, Kessinger Publishing, United State, 2010.

7. Marshall B. Clinard, Robert F. Meier, Sociology of Deviant Behaviour, Wadsworth Publishing, 13th Edition, 2010.

8. K.Sudha, Prostitution Laws, An Enigma and Some Dilemmas, Bibliophile South Asia, New Delhi, 2015**.**

**कोश–**

1. हिन्दी साहित्य कोश', भाग–1, लेखक–अजित कुमार, ज्ञानमंडल लि0, वाराणसी 2020 सं0।

2. साहित्यिक पारिभाषिक शब्दकोश, प्रो0 महेन्द्र चतुर्वेदी, प्रो0 तारक नाथ बाली, बुक्स एण्ड बुक्स–77, टैगोर पार्क–दिल्ली, संस्करण–1992।

3. वृहद हिन्दी शब्दकोश, संपादक– 'कलिका प्रसाद', ज्ञानमंडल लिमिटेड बनारस, 1969।

4. 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी', वाल्यूम–एक।

5. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका', वॉल्यूम–2।

6. कैज़ल्स इनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर', 'एस0 एच0 स्टेनस्पर्ग', वाल्यूम–1, 1953।

**डॉक्यूमेन्ट्री फिल्म–**

1. *Born into Brothels: Calcutta's Red Light Kids,* Zana Briski and Ross Kauffman, 2004.